प्रकाशक : शांति देवी
मातेश्वरी प्रकाशन,
गंगापुर (भीलवाड़ा)

लेखक : रामवल्लभ सोमानी

मुद्रक : भांडिया प्रिंटिंग प्रेस जयपुर एवं
इनके लिए मातृभूमि प्रेस, जयपुर

मूल्य : १२=५०

एकमात्र चम्पालाल रांका एण्ड कं०
वितरक : चौड़ा रास्ता, जयपुर – ३

वर्ष : १९६९

महाराणा साहब श्री भगवतसिंह जी को
सादर समर्पित
जिन्होंने मेवाड़ के इतिहास के विशेष
अध्ययन के लिए लेखक को प्रोत्साहित किया ।

दो शब्द

चित्तौड़ भारत का गौरवस्थल है। इसके राजनैतिक और सांस्कृतिक महत्व पर प्रकाश डालने वाली हिन्दी में कोई अच्छी पुस्तक उपलब्ध नहीं है। कर्नल टॉड कविराज श्यामलदास और ओझा जी ने यहां की अप्रकाशित सामग्री को संग्रहित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया था। डा० दशरथ शर्मा के यहां के आदिकालीन इतिहास पर कई लेख प्रकाशित हो चुके हैं। श्री अगरचन्द नाहटा और डा० गोपीनाथ शर्मा ने यहां के सांस्कृतिक महत्व पर कई महत्वपूर्ण लेख लिखे हैं। इसी प्रकार श्री रतनचन्द्र अग्रवाल ने भी यहां के मन्दिरों और शिलालेखों से सम्बन्धित कुछ लेख प्रकाशित कराये हैं। किन्तु फिर भी बहुत अप्रकाशित सामग्री अब तक प्रकाश में नहीं आई थी। "महाराणा कुम्भा" पर पुस्तक लिखते समय मुझे कई दिनों तक चित्तौड़ रहना पड़ा था। तब ही मैंने यह निश्चय कर लिया था कि मैं एक छोटी सी पुस्तक तैयार करूं जिसमें यहां के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के साथ-२ साधन सामग्री का विस्तार से विवेचन हो।

इसको मैंने ७ अध्यायों में विभक्त किया है। प्रथम तीन अध्याय राजनैतिक इतिहास से सम्बन्धित है जो चित्तौड़ के राजनैतिक घटनाक्रम के अनुसार रखे गये हैं। चौथा और पांचवा अध्याय साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियों से सम्बन्धित है। इनमें कुछ कवियों का विस्तृत परिचय प्रथम बार ही दिया गया है। छठा अध्याय शिल्प कला से सम्बन्धित है। ७ वां अध्याय साधन सामग्री से सम्बन्धित है। इसमें प्रथम बार कई अप्रकाशित शिलालेखों का विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

पुस्तक में जहां तक हो सका है मैंने समसामयिक एवं प्रामाणिक सामग्री का ही उपयोग किया है।

इसके मुद्रण में कई बाधायें आई जिसके फलस्वरूप लगभग १॥ वर्ष में जाकर यह पूर्ण हो सकी। इसी कारण चित्तौड़ के सारे शिलालेखों के मूलपाठ इसके साथ नहीं दिये जा सके। केवल कुछ अप्रकाशित लेखों के मूलपाठ ही दिये जारहे हैं।

इसे लिखने के लिये कई विद्वानों से परामर्श सामग्री और सहायता ली है। इनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं। यथा— सर्वश्री पुज्य मुनि जिनविजयजी डा० मथुरालाल शर्मा डा०दशरथ शर्मा, डा. गोपीनाथ शर्मा, श्री अगरचन्द नाहटा, पं० चेनसुखदासजी न्यायतीर्थ डा० सत्य प्रकाश रावत सारस्वत डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल रतनचन्द्र अग्रवाल, महावीरसिंह गेहलोत, सुखवीरसिंह गेहलोत, दुर्गालाल माथुर, डा० निगम, डा० के० एस० गुप्ता, डा० जावलिया, प्रकाश वाफना, कृष्णचन्द्र शास्त्री, ओमप्रकाश शर्मा मांगीलाल व्यास 'मयंक', सवाईसिंह धमोरा आदि। मेरे लघु भ्राता श्री अशोककुमार पुष्पराज और बद्रीलाल ने पांडुलिपि तैयार करने में बड़ी सहायता दी। टाईपिंग श्री ओंकारप्रसाद भार्गव ने किया। प्रूफ रीडिंग श्री ओमप्रकाश वर्मा और श्री कैलाशशरण गुप्ता ने किया। चित्तौड़ में सभी स्थानों को दिखाने में श्री फतहचन्द महात्मा ने बडी सहायता की। यहां के आसपास के स्थानों के बारे में जानकारी संग्रहित करने में सर्व श्री रामपाल उपाध्याय रूपलाल जी काखाणी एवं रामस्वरूप अजमेरा ने बड़ी सहायता की मैं इन सब का बड़ा आभारी हूं।

आशा है कि यह पुस्तक उपयोगी साबित होगी।

रामवल्लभ सोमानी

गंगापुर (भीलवाड़ा)
दीपावली दिनाङ्क २१-१०-६८

भूमिका

भारतीय बलिदान की वेदियों में चित्तौड़ का प्रमुख स्थान है। यहां का इतिहास कार्यशील ऐतिहासिक प्रक्रियाओं का परिणाम है। उस गौरवशाली इतिहास को समझने के लिये कुछ आधारभूत तत्वों का ज्ञान होना आवश्यक है। मेरे योग्यतम शिष्य श्री सोमानीजी ने चित्तौड़ के स्वरूप को वैज्ञानिक उपकरणों से इस प्रकार संजोया है कि समूचे मेवाड़ के राजनैतिक जीवन तथा सांस्कृतिक व्यक्तित्व का ढांचा स्पष्ट हो जाता है। इन दोनों प्रवृत्तियों का सामञ्जस्य स्थापित कर लेखक ने राष्ट्रीय आत्मसम्मान को बढ़ावा देने में सफलता प्राप्त की है। समाज स्थापत्य तथा साहित्य की प्रगति के वर्णन से पुस्तक का स्तर विशेष प्रशंसनीय हो गया है। लेखक ने जिन आधारों पर अपनी कई मान्यताएं स्थापित की है वे प्रामाणिक हैं। यह पुस्तक केवलमात्र चित्तौड़ का चित्रण ही उपस्थित नहीं करती है वरन् हमें उसके सम्बन्ध में नई दिशा में सोचने के लिये प्रेरित करती है। लेखक का सम्मल प्रयास सर्वथा स्तुत्य है।

—डा० गोपीनाथ शर्मा

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
दिनाङ्क २५-१२-६८

सम्मति

श्री रामवल्लभ सोमानी ने अपने नवीन ग्रन्थ 'वीरभूमि चित्तौड़' के २७४ पृष्ठों में पुनः मेवाड़ का यशोगान किया है। पुस्तक सात अध्यायों में विभक्त है। पहले अध्याय में प्रागैतिहासिक काल से आरम्भ कर चित्तौड़ का खल्जी विजय तक का इतिहास अच्छे ढंग से प्रस्तुत है। प्रसंगतः पद्मिनी की ऐतिहासिकता का भी अनुमोदन श्री सोमानी ने सुपुष्ट तर्कों से किया है। द्वितीय अध्याय में हम्मीर से रत्नसिंह तक का इतिहास है। इसके कुछ प्रसंगों का विशेष विस्तार श्री सोमानी के महाराणा कुम्भा में द्रष्टव्य है। तीसरा अध्याय विक्रमादित्य से आरम्भ होकर महाराणा भगवंतसिंह तक आया है। इस तरह ग्रंथ के १०६ पृष्ठों में चितौड़ का राजनैतिक इतिहास प्रस्तुत है। चौथे अध्याय में चित्तौड़ में लिखित हमारे उत्कृष्ट साहित्य की झांकी प्रस्तुत है। साहित्य के इतिहास में रुचि रखने वाले विद्वान् इसे अवश्य पढ़ें। श्री सोमानी ने मीरा की जन्मतिथि को निर्णित करने का अच्छा प्रयत्न किया है। पांचवें अध्याय में मेवाड़ में प्रचलित वैष्णव, शैव शाक्त जैन आदि सम्प्रदायों का और कुछ प्रख्यात जैन परिवारों का वर्णन है। छठे अध्याय में सिक्कों मूर्तियों और भवनों का विवेचन है। अध्याय के अन्त में चित्तौड़ के उल्लेखनीय स्थपतियों का वर्णन है जो पठनीय है। सातवें अध्याय में विद्वान् लेखक ने चित्तौड़ के शिलालेखों का और इस क्षेत्र में उपलब्ध प्रशस्तियों का विवेचन किया है। कई अभिलेखों के पुनः विवेचन और कुछ के अभिनव संग्रह के कारण यह अध्याय इतिहास की दृष्टि से इस ग्रंथ का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है। परिशिष्ट रूप में कुछ जैन प्रशास्तियों के मूल पाठ प्रकाशित हैं।

इस अत्यन्त सामयिक और उपयोगी प्रकाशन के लिये लेखक और प्रकाशक दोनों ही अभिनन्दीय हैं।

डॉ० दशरथ शर्मा

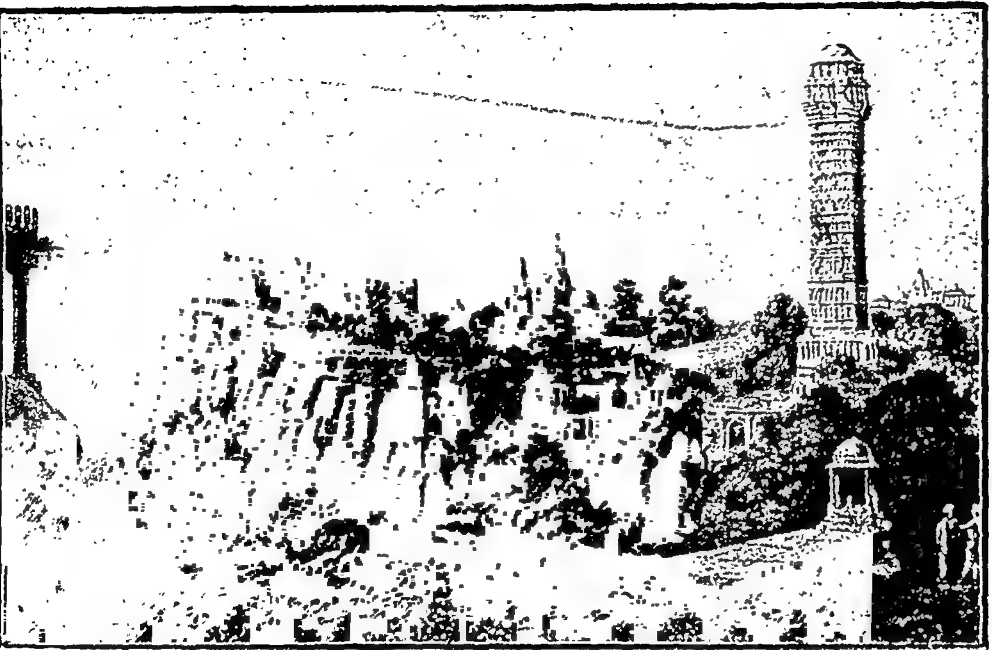
जोधपुर विश्वविद्यालय

२६-१-६६

विषय सूची

सांकेत सूची

आ० स० रि० इ०	आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट आफ इण्डिया
इ० ए०	इण्डियन एन्टेक्वेरी
उ० इ०	ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास
ए० इ०	एपिग्राफिआ इण्डिका
कु० प्र०	कुम्भलगढ़ प्रशस्ति
की० प्र०	कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति
मे० मु०	मेवाड़ एण्ड मुगलएम्परर्स
वी० वि०	वीर विनोद
हि० गु०	लोकल डाइनेस्टिज आफ गुजरात



चित्तौडगढ़

।। श्री चित्रकूटवर्णनम् ।।

श्रीमेदपाटैप्रकटप्रभावे भावेन भव्ये भुवनप्रसिद्धे
श्री चित्रकूटो मुकुटोपमानो विराजमानोऽस्ति समस्त लक्ष्म्या ।।१।।
अस्त्यद्भुतः क्षितिधरः किल चित्रकूट
स्तेनावनीमघवता परियाल्यमानः
श्रीमेदपाटधरणीतरुणीललाट
पटटे स्फुटं मुकुटतामुपटीकते यः ।।२।।
उच्चस्फाटिकहर्म्यभितिविलसत्सत् पद्मरागांशुभिः
सिन्दूरप्रकरैरिवातिविततैर्नित्ये वसन्तोत्सवे ।
चञ्चदहेमघटावतंसविलसन्नानानिलिम्पालयै--
रिन्द्रस्येतिपुरी विभाति सततं श्रीचित्रकूटालयः ।।३।।
विशालसालक्षितिलोचनाभो रम्यो नृणाँ लोचनचित्रकारी ।
विचित्रकूटो गिरीचित्रकूटो लोकस्तु यत्राखिलकूटमुक्तः ।।४।।
स्वच्छांभोभिः सरोभिर्दिशिदिशि धवलागारमालामहेंद्र-
प्रासादैरुद्ध तारागणपतिभिरिव प्रस्रवत्कंदरोधैः ।
नानापण्योपकीर्णै विपणिषु मणिभिर्दुर्गवर्येतिरम्ये
यस्मिन्पौरोजनोऽभीर्बहुवसति सुखं मन्यते स्वर्गवासात् ।।५।।
भुक्तिर्गोत्रभिदः सदा सुरगृहं गम्यं सुरद्वेषिणां
पातालं च ततं द्विजिह्वनिवहैरतोऽच्चिषोद्गारिभिः ।
संचित्यातिविनिर्मितो भुवि सुरैर्वासाय दुर्गाधिपः
स्पर्धानंदकरस्त्वनंतमहिमा श्री चित्रकूटो गिरिः ।।६।।

अध्याय १

मेवाड़ और यहां का राजवंश इतिहास में बड़ा प्रसिद्ध रहा है। "मेवाड़" शब्द संभवतः मेर अथवा मेव लोगों के यहां दीर्घकाल से निवास करने के कारण पड़ा है। संस्कृत में इसके लिये मेदपाट शब्द प्रयुक्त हुआ है। दोनों शब्द १०वीं शताब्दी से बराबर मिलते हैं[1]। अतएव इस शब्द का प्रचलन काफी प्राचीन रहा हो तो कोई आश्चर्य नहीं। चित्तोड़ और इसके आसपास का क्षेत्र बहुत प्राचीन है। माध्यमिक नगरी जो महाभारत काल से लेकर पहली शताब्दी तक बड़ी प्रसिद्ध थी यहां से केवल ७ मील दूर है। इस क्षेत्र का इतिहास बहुत ही महत्वपूर्ण रहा है। जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:-

प्रागैतिहासिक काल

चित्तौड़ और इसके आसपास के क्षेत्र की प्राचीनता सिद्ध करने के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हो गई है। हाल ही में इस क्षेत्र में पुरातत्त्व विभाग ने उत्खनन कराया था। यहां प्रस्तरयुगीन आयुध प्राप्त हुए हैं। डा० सत्यप्रकाश जी और श्री विजयकुमार के लेखों में इस पर पर्याप्त प्रकाश

१—वि०सं० १०४४ में लिखी "धम्म परिक्खा" में यह शब्द इस प्रकार प्रयुक्त हो रहा है :-

इय मेवाड़देसिजणसकुंल सिरिउजपुरनिग्गयधक्कडकुलि
पावकरिंद कुंभदारण हरि, जाउ कुलाहि कुसलाणमें हरि ॥११।४॥

विस० १०५३ के हठुंडी के लेख में मेदपाट शब्द प्रयुक्त हुआ है :-

भंक्त्वा घाटमघटाभिः प्रकटमिवमिदं मेटपाटे मटानां
जन्ये राजन्य जन्ये जनयति जनताजं (?) रणेमुंजराजे।
श्री – माणे प्रणष्टे हरिण इवभिया गुर्जरेशनिनष्टे
तसैन्यानां स (श) रण्यो हरिरिव शरणे यः सुराणां बभूव ॥१०॥
ए० इ० भाग १०॥

डाला गया है [2]। इनकी मान्यता है कि नगरी या माध्यमिका नगरी में एक लाख वर्ष पूर्व पत्थरों के हथियारों का कारखाना था। सर्वेक्षण करते समय १२३ प्राचीन प्रस्तर कालीन उपकरण प्राप्त हुए हैं।

१–फ्लेक (Flakes)	–	४२
२–कोर (Cores)	–	१५
३–हेंडएक्स (Handaxes)	–	३०
४–क्लीवर (Cleavers)	–	२१
५–स्क्रेपर्स (Scrapers)	–	१५
		१२३

ये पाषाण उपकरण नगरी में इतने अधिक प्राप्त हुए हैं कि देश के अन्य भागों से कहीं इतने अधिक प्राप्त नहीं होते हैं। अन्य भागों से प्राप्त उपकरणों से इनकी तुलना करने पर इनमें अत्यधिक समानता पाते हैं। इनका उपयोग आदिमानव काटने खुरचने आदि के लिये करता प्रतीत होता हैं। शिकार और भोजन प्राप्त करना ही उस समय मुख्य व्यवसाय था। राजस्थान मे हिंगलाजगढ, बैराट, मोरी सीताखेडी, आदि स्थान भी इसी प्रकार प्रस्तर युगीन सभ्यता के केन्द थे। वहां से आदि मानव के शिला कुटीर भी मिले हैं किन्तु ये चित्तोड़ से प्राप्त नहीं हुए हैं। श्री के०एन० दीक्षित का [3] कहना है कि राजस्थान में आदि प्रस्तरयुगीन सभ्यता के केन्द्र अजमेर, अलवर, भीलवाड़ा, चित्तोड, जयपुर, झालावाड़, जोधपुर, पाली और टोंक जिलों के कुछ ग्राम हैं। इनमें सबसे अधिक उपकरण चित्तोड़ से

२—रिसर्चर भाग २ पृ० २६, वही भाग ३ और पृ० ६१–६३ शोधपत्रिका वर्ष १६ अङ्क १ पृ० १६।

३—के० एन० दीक्षित— राजस्थान अरली कलचर्स (रिसर्चर भाग ५ और ६ पृ०५१) इडियन आर्कियोलोजी एरिव्यु १९६२–६३ पृ० ९

प्राप्त हुए हैं। इस स्थान से जो उपकरण प्राप्त हुए हैं वे पंजाब और मद्रास से प्राप्त उपकरणों का संयुक्त रूप प्रतीत होता है। संभवतः यहां दोनों का समिश्रण होता है नगरी से नवपाषाण युग, के कोई चिन्ह प्राप्त नहीं हुए हैं।

चित्तोड जिले के हरिपुरा, खोर, नगर सिंगोली आदि स्थान आदि प्रस्तरयुगीन सभ्यता के केन्द्र थे। बलुखेडा, बामनी चित्तोड़गढ, हिरोनजी का खेडा, जवानपुरा, खोर, पुरानी मरमी बिरोली उंडाला आदि स्थान नव पाषाण युग के केन्द्र माने जा सकते हैं।

इसके पश्चात् कई शताब्दियों तक इस क्षेत्र का इतिहास अंधकार मय रहा है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है महाभारत काल में नगरी गांव बड़ा श्री सम्पन्न था। महाभारत काल के पश्चात् सबसे उल्लेखनीय घटनाऐं शिबि और मालवगणों का आक्रमण है।

शिबिगण

शिबियों का मूल निवास स्थान पंजाब में था। सिकन्दर के आक्रमण के समय यह जाति पंजाब में रहती थी। युनानियों के अनुसार इनके पास [4] ४०,००० पैदल सैनिक और ३,००० घोडे थे ये खालों से बने कवच पहने हुए थे। इनका आक्रमण इतना भयानक था कि शत्रु को संघर्ष की घड़ियां याद आती थी। उन्होने हंसते २ अपने पुत्र; पुत्रियों और स्त्रियों को आग में डाल कर जोहर किया और शत्रु से अन्तिम समय तक लड़े।

पंजाब में इनकी राजधानी संभवतः शिवघोपा [5] थी। ऐतरेय

---

४ कर्टियस भाग ९, ८, जे०डब्ल्यू० मेक्रिंडल दी इनविजन आफ इंडिया बाइ ऐलेगजेंडर। मजूमदार दी एज आफ इम्पीरियल यूनिटी पृ० १६० फुट नोट ४।

५ भारत का वृहद इतिहास भाग २ पृ० १७८

ब्राह्मण के अनुसार शिवियों का नेता शुष्मिण था जिसने जानंतप को मारा था[6]। सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् इनको मौर्यो का भी सामना करना पड़ा था। किन्हीं करणों से विवश होकर ये लोग पंजाब से राजस्थान की ओर बड़े। नगरी में सबसे पहले इनके गण राज्य का पता चलता है। यहां से प्राप्त मुद्राओं में "मझमिकाय शिवि जनपदस" विरुद मिलता है[7]। इनके गण राज्य को मालवों ने समाप्त किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि इनका कुछ समूह कावेरी नदी के तट[8] पर भी बसा हुआ था। व्याकरण कारों को इनके देश की जानकारी थी। कई जगह उदाहरण प्रस्तुत करते समय इनके देश का उल्लेख किया है।

मालवगण

मालवों का भी मूल निवास स्थान पंजाब में था[9]। महाभारत के कर्ण पर्व में इनको द्राविडों मद्रको योधेयो क्षुद्रकों आदि के साथ वर्णित किया है। सभा पर्व में मालवों को शिवियों त्रिगतों योधेयों राजन्यों एवं मद्रों के साथ वर्णित किया है जब कि उक्त पर्व के ३२ वे अध्याय में इन्हें दर्शाणों शिवियों और माध्यमिकयों के साथ वर्णित किया है। माध्यमिकयों का सम्बन्ध निसंदेह चित्तोड़ के नगरी गांव से है। अतएव प्रतीत होता हैं कि यह वर्णन बाद का है। सिकन्दर के आक्रमण के समय युनानी लेखकों के अनुसार ये लोग हिडेस्पेसस के तट पर रहते थे जो चिनाव मिलने के बाद झेलम नदी का भाग था।

---

६ ऐतरेय ब्राह्मण ४०।२३

७ एलन–एनसियट कोइन्स आफ़ इंडिया पृ० CXXIV आ० स० इ० भाग ६ पृ० १८१–८२

८ मजूमदार–एज आफ इम्पिरियल युनिटी पृ० १६० फुट ४

९ महाभारत कर्णपर्व २/५०। बृहत्संहिता १४/२७

युनानी आक्रमण के समय मालवगण को क्षुद्रकों और शिवियों के पास बतलाया है। क्षुद्रक व मालवों की सम्मलित सेना का उल्लेख मिलता हैं। कर्टियस लिखता है कि जब इस सेना का सामना करने का अवसर आया तो सबके छक्के छूट गये[10]। इन लोगों को आकस्मिक भय ने आ दबाया और राजा की निन्दा करने लगे। एरियन लिखता हैं कि ये लोग संख्या में बहुत ही अधिक थे और भारतीय जातियों में सबसे अधिक योद्धा थे। सिकन्दर स्वयं इनके हाथ से मरता मरता बचा था[11]। कर्टियस के अनुसार क्षुद्रक व मालवों की सम्मलित सेना का सरदार क्षुद्रक जाति का था। युद्ध की समाप्ति पर दोनों गणों की ओर से १०० प्रतिष्ठित सरदार संधि के लिये आये इनका सिकंदर ने बड़ा सम्मान किया। इनके बैठने के लिये सोने की चौकियां रक्खी। बढ़ियां २ पर्दे टांके। शराब की नदियां बहा दी[12]। इस प्रकार विदेशी आक्रान्ताओं ने भी इनकी बडी प्रशंसा की थी। सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् मौर्यो ने पंजाब जीत लिया था। आयुध जीवी गणराज्यों की सूची में कौटिल्य ने इनका नाम नहीं दिया है इससे प्रतीत होता है कि उस समय ये स्वाधीनता खो चुके थे[13]।

मौर्य काल में ये लोग पंजाब से राजस्थान की ओर आये प्रतीत होते हैं। जनरल कनिंघम का विश्वास है कि मालव लोग पंजाब स मरु या मारवाड़ के मार्ग से आये थे। नरूजय और मर्गों जय वाले इनके सिक्के इनकी मरु

---

१० युनानियों ने मालवों को मल्लोई (Malloi) और क्षुद्रकों को आक्सिड्रेकाइ (Oxydrakai) लिखा है कर्टियस भाग ९/४,, डायडोरस १७।२९

११ एरियन ६।६

१२ कर्टियस ९।७–८

१३ कंभोजसुराष्ट्रक्षत्रिया–श्रेण्यादयों वार्त्ताशास्त्रोपंजीविनः अर्थशास्त्र ११–१–६६०

प्रदेश की विजय के सूचक प्रतीत होते हैं[14]। नगरी से प्राप्त सिक्कों में मालवों के भी सिक्के मिले हैं। विद्वान वर्ग इनका काल निर्धारण अगल २ करते हैं। नगरी पर तो निसंदेह शिबियों का राज्य था। शिबियों के पश्चात् संभवतः मालवों का राज्य हो गया हो। यवन आक्रमण के कारण भी शिवि लोगों के गण राज्य में बड़ा संकट आ उपस्थित हुआ होगा।

यवन आक्रमण

सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् से ही भारत की ओर यवन शासकों का ध्यान बराबर आकृष्ट हो रहा था। यूथेडिमस (Eutheydemus) नामक यूनानी शासक ने वेक्ट्रिया से अपना शासन वढाकर अफगानिस्तान के दक्षिण और भारत के पश्चिम तक कर लिया था। इसके सिक्के वड़ी मात्रा में मिलते हैं और भिन्न २ किस्मों के मिलते हैं जिनसे इसका राज्य काफी लम्वे समय तक और बड़े प्रदेश पर रहा प्रतीत होता है। इसकी मृत्यु १६० बी० सी० में हुई। इसका पुत्र डिमेट्रियस (Demetrius) था। यह वहुत प्रतिभा सम्पन्न था। इसके पिता के और सम्राट एन्टीओकश (Antiochus) III के मध्य युद्धों में इसने बड़ा सक्रिय भाग लिया था। अन्त में यह संधि के लिये भी गया था। सम्राट एन्टीओकश की पुत्री की शादी भी इसके साथ करदी गई थी। इस प्रकार से ही यह प्रतिभा सम्पन्न राजा था,जो अपने राज्य को वढाने वाला वर्णित किया गया है। स्ट्रेवो ने डिमेट्रियस और मेनेन्डर को वड़ा प्रतापी बतलाया है।

भारत में इस यवन आक्रमण का उल्लेख कई ग्रंथों में मिलता है। अनद्यतने लङ् ३–२–११ की वार्तिका में पंतजलि ने स्पष्टतः लिखा[15] है कि यवनों ने माध्यमिका और साकेत को घेरा। कालीदास के मालविकाग्निमित्र नाटक में काली सिन्धु नदी के दक्षिणी तट पर यवनों से युद्ध करने का उल्लेख

---

१४ आ० स० इ० भाग ६ पृ १८१–८२

१५ अरूणद्यवनो माध्यमिकाम्। ३–२–११

किया है [16] । गर्गसंहिता के अनुसार धर्ममीत नामक यवन राजा ने मध्य देश पर अधिकार कर लिया था [17] । यह घटना मौर्य राजा वृहस्पति मित्र के शासन काल के पश्चात् हुई वर्णित की गई है । पतंजलि निसंदेह पुष्यमित्र शुंग का समसामयिक था उसने स्पष्टतः महाभाष्य में "इह पुष्यमित्र–याजयाम" लिखा है जिससे स्पष्ट होता है नि वह पुष्यमित्र के शासनकाल में जीवित था पुष्यमित्र का शासन काल विद्वान लोग १८७–१५१ बी० सी० मानते हैं । एवं दिमित या डेमेट्रियस का समय भी १६५ बी० सी० तक मानते हैं । अतएव यह घटना १८७ से १६५ बी०सी० के मध्य सम्पन्न हुई प्रतीत होती हैं । चित्तोड़ क्षेत्र में यह आक्रमण उल्लेखनीय रहा था ।

जैनेन्द्र महावृत्ति (अभय नन्दी की) के सूत्र २–२–९२ पर भी "लङ्" के प्रयोग के सम्बन्ध में उदाहरण दिया हुआ है । इसमें स्पष्टतः महेन्द्र नामक यवन राजा का उल्लेख है । महेन्द्र मिनिन्डर का नाम प्रतीत होता है । यह दूसरी शाखा का था । ऐसा विश्वास किया जाता है कि दिमित के लम्बे समय

---

१६ विदितमस्तु योऽसौ राजसूययज्ञदीक्षितेन मया राजपुत्रशतपरिवृतं वसुमित्रं गोप्तारमादिश्यं संवत्सरोपावर्तनीयो निरर्गलस्तुरगो विसृष्टः स सिन्धोर्दक्षिणरोधसि चरन्नश्वादीकेन यवनानां प्रार्थित ॥ मालविकाग्निमित्र अंक ५

१७ धर्ममीत तमावृद्धाजनं भोक्ष्यन्ति निर्भया:
यवना क्षापयिश्यंति (नश्येरन) च पार्थिवाः ॥
मध्यदेशेन स्थापन्ति यवना युद्ध दुर्मदा ।
(कोशोत्सव स्मारक संग्रह में प्रकाशित)

कंलिग चक्रवर्ती खारवेल के लेख में दिमित और वृहस्तपति मित्र को हराने का उल्लेख है ।

१८ परोक्षे लोकविज्ञाने प्रयोक्तुः शम्यदर्शनत्वेन दर्शनविषये लङ् वक्तव्यः । अरूणंमहन्द्रो मथुराम् । अरूणद्यवनः साकेतन् ॥ जैनेन्द्रे व्याकरण पर अभयनन्दी की महावृत्ति

तक भारत उप महाद्वीप में रहने के कारण विक्ट्रिया में इसकी स्थिति कमजोर हो गई और युक्रेटिडस (Eucratides) नामक एक नेता ने इसके राज्य को हस्तगत कर लिया। यह घटना १७१ वी०सी० के आसपास की है। युनानी लेखक जार्स्टन ने उसकी यही तिथि दी है। इसके कुछ समय पश्चात् विक्ट्रिया में यवन राज्य समाप्त हो गया। इसके पश्चात् तक्षशिला और अफगानिस्तान के दक्षिणी भाग में यवन राजाओं ने नये राज्य स्थापित किये जिनमें सबसे उल्लेखनीय मेनेन्डर और एंटीआक्लीड्स (Antiaclicidas) हैं। मेनेंद्र के भारत आक्रमण सम्बंधी विस्तृत जानकारी मिलती है। स्ट्रेवो ने इसका काल १५८ वी०सी० से २४ ए० डी० तक माना है और लिखा है कि मेनेंडर एवं दिमितने सरोस्टोस (सौराष्ट्र) और उत्तरी भारत का बहुत सा भाग जीता। प्रसिद्ध बौद्ध ग्रंथ मिलिंद पंहो का नायक यही मेनेंडर था। यह नागसेन नामक साधु से प्रभावित था। एंटीआक्लिडस ने अपना राजदूत भेलसा भेजा था जिसका नाम हिलियोडोरस था इसनें वहां हिंदू धर्म स्वीकार कर लिया था। मेनेंडर के कुछ सिक्के नगरी से भी मिले हैं।

डिमेट्रियस के सिक्कों पर माहरजस अपरजितस डेमे·······और मेनेंडर के सिक्को में माहारजस त्रादतस मेनदास विरुद मिलता है।

अव प्रश्न यह है कि पतंजलि के महा–भाष्य में वर्णित माध्यमिका पर यवन आक्रमणकारी दिमित था अथवा मेनेन्द्र जैसा कि ऊपर उल्लेखित किया जा चुका है कि मेनेन्द्र दिमित के पश्चात् हुआ था। दिमित पतंजलि का सम सामायिक था। खारवेल के लेख में भी इसी दिमित के आक्रमण का उल्लेख है। अतएव निसंदेह यह घटना इसी से सम्बन्धित है। गर्गसंहिता और पुराणों के वर्णनों के अनुसार यवनों का मध्य देश तक बड़ा प्रवल आक्रमण हुआ था।

---

१९ "देवदेवस वासुदेवस गरूड़ध्वजे अयं कारिते इआ हेलिओदोरेण भागवतेन दिवसपुत्तेन तख्सिलाकेन योन दूतेन··········" विदिशा का लेख।

मालव और क्षुद्रकों का संघ

पाणिनि के सूत्र "खण्डिकादिभ्यश्च" (४।२।४५) की वार्तिका में कात्यायन ने मालवों और क्षुद्रकों के संघ का उल्लेख किया है। पतंजलि ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "क्षुद्रकमालवखंडिकादिषुपठ्यते"[20]। युनानी लेखक कर्टियस ने इनकी सम्मिलित सेना की संख्या १ लाख लिखी है। पतंजलि ने भी एक जगह यह लिखा है कि "एकाकिभिः क्षुद्रकेर्जितम् (५/३/३२)। इससे प्रकट होता है। कि यह संघ उस समय पूर्ण रूप से नहीं बन चुका था। मालव संघ में सब ही प्रकार की जातियां थी जो जाति ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय थी उसका एक वचन मालव्यः शब्द था लेकिन दोनों का वहुवचन मालवाः ही होता था[21]।

यूनानी लेखकों और व्याकरणकारों द्वारा वर्णित [22] मालव और क्षुद्रक संघ ५७ ई. पू. में पूर्ण रूप से बना था और इसकी स्मृति स्वरूप एक नया संवत भी चलाया जिसका प्रारम्भिक नाम "कृत" बाद में मालव और तत्पश्चात् विक्रम पड़ा था। मालव संवत की तिथियों में स्पष्ट रूप से इसे वर्णित किया गया है। यथा मन्दसौर

---

(२०) खण्ड़िकादिभ्यश्च ।। ४/२/२५ ।
"अञ् सिद्धिरनुदात्तादेः कोऽर्थः क्षुद्रकमालवात्"
अनुदात्तादेरित्येवाञ् सिद्धः किमर्थं क्षुद्रकमालवशब्दः खंडिकादिषु पठ्यते
"सेनायां नियमार्थं वा" अथवा नियमार्थोऽयमारम्यः क्षुद्रकमालवशब्दात्सेनायामेव । क्व मा भूत क्षौद्रकमालवकमन्यदिति"

(२१) काशिका ५/३/११४

(२२) वरदा वर्ष ६ अंक ४ में प्रकाशित मेरा लेख मालव संवत

के ४६१ के लेख की तिथि "मालवगणम्नाते प्रशस्तेकृतसंज्ञिते" और यशोवर्मा के लेख में "मालवगणस्थितिवशात् कालज्ञानाय" शब्द से इसकी पुष्टि होती है। शकारि विक्रम और उसके द्वारा संवत् चलाने के सम्बन्ध मे बड़ा विवाद है। इसको मैंने अन्यत्र वर्णित कर दिया है। मालवों का यह संघ उस समय चित्तोड़ और इसके पास के क्षेत्र में ही हुआ था। उस समय मालव लोग नगर (उणियारा के पास) टोंक तक संभवतः फैल चुके थे।

मालव क्षत्रप संघर्ष

मालवों को यवनों के पश्चात् शक क्षत्रपों से संघर्ष करना पड़ा था। यह संघर्ष बड़े लम्बे समय तक चलता रहा था। पश्चिमी भारत एवं मथुरा तक शक क्षत्रप शासन करते थे। महा क्षत्रप नहपान के दामाद उषावदत्त के नासिक के लेख में वर्णित है कि उसने भट्टारक की आज्ञा प्राप्त कर वर्षा ऋतु में मालवों द्वारा घिरे हुए उत्तम भद्र क्षत्रियों को मुक्ति दिलाई[23]। मालव लोग उसकी आवाज सुनते ही भाग गये। उत्तम भद्र लोग कौन थे? डा. दशरथ शर्मा ने इन्हें भद्रानीक माना है। इनका कहना है कि भादरा और भाद्राजूण नगर इस जाति से सम्बन्धित हो सकते हैं[24]। उषावदत्त की विजय के पश्चात् मालवों के राज्य पर शकों का अधिकार हो गया। नहपान के कई सिक्के सरवाणियां (बांसवाड़ा) अजमेर और नगर से मिले हैं[25]।

---

(२३) "भट्टारिकाज्ञातिया च गतोस्मि वर्षारितु मालयेहिरुद्धं उतभभद्रं मोचयितुं ते च मालया प्रनादेनेव अपयाता उतभभद्रकान च क्षत्रियानां सर्वे परिगृहाकृता ।। नासिक का लेख।

(२४) जरनल आफ ओरियन्टल इन्स्टीच्युट बडोदा वर्ष १० अंक ५ पृ. १८२–१८३

(२५) आ.स.इ. वर्ष १९१३–१४ पृ. २२८। रिसर्चर भाग ३/४ पृ. ३७ से ४२

अतएव यह विश्वास किया जाता है राजस्थान का यह क्षेत्र इनसे प्रभावित था। इन सिक्कों की तिथियां शक सं. ४१ से ४६ (११६ ई. से १४५ तक) तक है। उषावदत्त मालवों को जीतकर पुष्कर गया था। अतएव उस समय मालव लोग अवश्यमेव उज्जैन और पुष्कर के मध्य ही रह रहे थे।

गोतमी पुत्र शातकर्णी की मां बालाश्री का उसके राज्य के १६ वें वर्ष[26] का एक लेख मिला हैं जिसमें उसे क्षत्रप वंश को नष्ट करने वाला वर्णित किया है। उसने नहपान के सारे सिक्कों को पुनः संशोधित करके अपना नाम भी अंकित कराया था[27]।

नान्दशा का शिलालेख

मालवों के कई शिलालेख मिले है जिनमें सबसे उल्लेखनीय नान्दशा का लेख हैं। यह विक्रमी संवत २८२ का हैं। यह स्तंभ लेख मेरे ग्राम गंगापुर से तीन मील दूर नान्दशा के तालाब में लग रहा है। यहां दो स्तंभ हैं। १–सोमभट्ट सोगी का २–पोरप सोम का। सोमभट्ट सोगी वाले लेख पर बिजली पड़ जाने के कारण इसका ऊपर का अंश टूट गया है। दूसरा लेख महत्वपूर्ण है। इसमें वर्णित किया है कि मनु की तरह गुणों से युक्त, मालव वंश मे उत्पन्न, जय नर्तन प्रभागवर्द्धन के पौत्र जयशोम के पुत्र, सोगियों के नेता, पोरप श्री सोम द्वारा अपने बाप दादों की धुरी का समुद्धार करने के लिये पष्ठिरात्र यज्ञ किया। इस लेख से प्रकट होता है कि मालवों ने कोई बड़ी

---

(२६) "खखरातवंश निखसेस करस सातवहन कुलयस पतिठापन करस"

(२७) जरनल न्यूमेस्मेटिक सोसोइटी आफ इंडिया वर्ष १३ भाग २ में श्री त्रिवेदी का लेख

विजय प्राप्त की थी और मालव गण को नवीन चन्द्रमा के समान संस्थापित किया था[28]।

नान्दशा चित्तौड से सिर्फ २५ मील उत्तर पश्चिम में है। इसी समय कोटा के बडवा गांव से वि.स. २९५ के महासेनापति मोखरियों के ३ यज्ञस्तूप मिले हैं। जयपुर के पास वरनाला के यज्ञ-स्तूप से वि.स. २८४ का लेख भी मिला है। अतएव उस समय मालवों का काफी विकास हो चुका प्रतीत होता है। सम्भवतः नान्दशा वड़ा केन्द्र रहा हो। इनके अतिरिक्त नगरी से भी लेख मिले हैं। इससे मालवों की वहां स्थिति का पता चलता है।

मालवों की अवन्ति विजय कब हुई थी[29] यह निश्चित नहीं कहा जा सकता है कि यह घटना कब सम्पन्न हुई? किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि ये लोग धीरे २ चित्तौड़ से मन्दसौर एवं वून्दी की ओर से गंगधार और उज्जैन की ओर वढ़ते रहे हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

गुहिलोतों के अधिकार के पूर्व का मेवाड़

नगरी से प्राप्त विक्रमी संवत ४८१ के लेख में भगवत महा पुरुष (विष्णु) का प्रासाद वनाने का [30] उल्लेख है। इसे सत्य सूर्य और दास नामक ३ भाइयों ने वनवाया था। इनके पूर्वजों के नाम वसु जय विष्णु चर और वृद्धि वोध थे। ये किस वंश के थे। इसके

(२८) महतास्वशक्तिगुणगरूणापौरूषेणप्रथमचन्द्रदर्शनमिव-मालवगणविपयमवतारयित्वैकपष्टिरात्रमतिसत्रमपरिमित-धर्म्ममात्रसमुद्धत्यपितृपैतामहीं 'धुरमावृतसुविपलं पृथिव्योर-तरमनुत्तमेन"

(२९) वरदा वर्ष ६ अंक ४ में प्रकाशित मेरा लेख "मालव संवत"

(३)० "वरदा" भाग ५–खंड ३ पृ० २–३ में

कुछ समय पश्चात् के छोटी सादडी के वि०स ५४७ माघ सुदि १० के लेख में (जो चित्तोड के समीप है) यशगुप्त और महाराज गौरी का उल्लेख है। इनके पूर्वजों के नाम धान्यसोम, राज्यवर्द्धन और राष्ट्र दिये हुए हैं। यशगुप्त के लिये लिखा है कि वह "दक्ष दयालु और कई शत्रुओं पर शासन करने वाला था। इससे पता चलता है कि उसका शासन विशाल क्षेत्र पर था [31]।

मालवों का प्रभाव चित्तौड़ पर बराबर बना हुआ था। छोटी सादडी के इन गौरी वंशी राजाओं का सम्बन्ध दशपुर से भी था। ये आदित्य वर्मा जो औलिकर वंश का था, के अधिनस्थ रहे प्रतीत होते हैं। डा० दशरथ शर्मा का मत है कि स्कन्दगुप्त की मृत्यु के पश्चात् की विषम स्थिति का लाभ उठा कर ये औलिकर मेवाड़ के दक्षिणी भाग तक बढ [32] गये होंगे। प्रसिद्ध औलिकर वंश में यशोधर्मा हुआ जिसका राज्य भी निसंदेह चित्तोड पर था "राजाधिराज परमेश्वर" की इसने उपाधि धारण की थी और स्वेच्छा से समसामयिक गुप्त सम्राट बुध गुप्त का नाम भी शिलालेख में छोड दिया था। यशोधर्मा की ओर से पश्चिमी प्रान्तों का प्रशासक [33] अभयदत्त था। इसे शिलालेख में राजस्थानीय वर्णित किया है। क्षेमेन्द्र के लोक प्रकाश में राजस्थानीय वृत्या का अर्थ प्रजाओं का रक्षक और आश्रयदाता दिया है जिसका अर्थ किसी एक अधिकारी से है जो गवर्नर रहा होगा।

---

(३१) ए० इ० भाग ३० में

(३२) रिसर्चर वर्ष ५–६ पृ० ७ से ९

(३३) विन्ध्यस्यावन्ध्यकर्मा शिखरतटपतत्पाण्डुरेवाम्बुराशेर्गोलाङ्गूलैः
सहेलं प्लुतिनमिततरोः पारियात्रस्य चान्द्रेः। आसिन्धोरन्तराल
निजशुचिसचिवाध्यासितानेकदेशान् राजस्थानीयवृत्या सुरगुरुरिव
यो वर्णिनां भूतयेपात्॥ १९॥

औलिकरों में आदित्यवर्द्धन (५४७वि) द्रव्यवर्द्धन (५६१ वि०) और यशोवर्द्धन (५८९ वि०) हुये थे[34]।

चित्तोड़ के २ लघु लेख हाल ही में श्री डी० सी० सरकार और जी०एस० गई ने सम्पादन किये हैं। इन लेखों से प्रकट होता है कि चित्तोड़ के पास माध्यमिका में ६ठी शताब्दी पूवार्द्ध में दशपुर और माध्यमिका का राजस्थानीय कोई वणिज श्रेष्ठ था। इस लेख में वराह के पौत्र और विष्णुदत्त के पुत्र का उल्लेख है जिसका नाम मिट गया है।[35] मन्दसौर के अभयदत्त के लेख से इसे मिलाने से डा० दशरथ शर्मा ने तिथि क्रम इस प्रकार प्रस्तुत किया है। ५४७ वि० में छोटी सादडी वाले मन्दसौर के औलिकरों के आधीन थे। इसके पश्चात् यह राजस्थानीय का पद वराहदास के परिवार को मिला। वराह के २ पुत्र थे –१– विष्णुदत्त और रविकीर्ति। रविकीर्ति के पुत्र को पहले राजस्थानीय का पद मिला। इसके पश्चात् उसके भाई निर्दोप का पुत्र अभयदत्त राजस्थानीय बना [36]।

मौर्य राजा

राजस्थान के अन्तिम मौर्य राजाओं का उल्लेख कोटा के कन्सवा और चित्तौड के मान मोरी के लेख में है। मानमोरी का मूल लेख तो नष्ट हो गया है किन्तु श्री टाड द्वारा इसका जो अनुवाद किया वह उपलब्ध है [37]। इस लेख में ४ राजाओं का उल्लेख है (१) महेश्वर (२) भीम (३) भोज और (४) मान। महेश्वर को

(३४) इंडियनहिस्टो रिकल क्वाटरली XXXIII N० ४ पृ ३१६

(३५) ए०इ० भाग ३४ पृ० ५३–५८

(३६) रिसर्चर वर्ष ५–६ पृ० ७ से ९

(३७) वीर विनोद भाग १ के शेष संग्रह में छपा लेख।

शत्रुओं का विनाश करने वाला वर्णित किया है। भीम को अवन्ति पुरी का शासक बतलाया है उसके लिये लिखा है कि वह कारागृह में पड़े शत्रुओं की उन चन्द्रवदनियों के हृदय में भी वसता था जिनके ओष्टों पर उनके पतियों के दन्तक्षत अभी बने हुए थे। भोज ने युद्ध में हस्ती का मस्तिक विदीर्ण किया था। मान उसका पुत्र था। इसने मानसरोवर झील या तालाव का निर्माण कराया था।

मेवाड़ की ख्यातों में चित्रांगद मोरी का भी उल्लेख मिलता है। इसे बड़ा प्रवल वर्णित किया है। १८ वीं शताब्दी में लिखी ख्यातों में किया गया वर्णन ऐतिहासिक महत्व का नहीं है। उदाहरणार्थ राजरूपक में इसके लिये लिखा है कि मेवाड़, मालवा, सिंधु, सोवीर, सपादलक्ष सोराठ गुजरात कच्छ आदि देश जीते जो अतिशयोक्ति है। जैनग्रंथों में वर्णित है कि कन्नौज के राजा संभलीश ने इसे हराकर चित्तौड़ जीत लिया था। जिसे उसके पुत्र को वापस लोटा दिया। डा० दशरथ शर्मा इसे चौहानराजा शंभरीष मानते हैं[38]। चित्रागंद मोरी के मुख्य निम्नांकित कार्य हैः—

(१) चित्तौड दुर्ग का निर्माण—संभवतः इसे इसने सामरिक महत्व का बनाया था।

(२) चित्रांगद तालाव का निर्माण। विसं० १३४४ के शिलालेख में जो यद्यपि वाद का है इस घटना का उल्लेख है[39]।

भीम के समय तक इन राजाओं का अधिकार अवन्ति तक रहा प्रतीत होता है। संभवतः इन्द्रगढ़ के राठौड़ राजा नन्न से उसका

---

(३८) जरनल आफ ओरियन्टल इन्स्टीच्युट वडोदा भाग १० पृ ३२–३३। राजस्थान थ्रू दी ऐजेज पृ २२७

(३९) वरदा वर्ष ६ अंक १ में प्रकाशित

संघर्ष हुआ था और फलस्वरुप उसे मालवा छोड़ना पड़ा हो। उसका पुत्र मान मोरी था। उसका एक लेख वि.सं० ७७० का हालही में चित्तौड के शंकर घट्टा से मिला है। लग भग इसी समय अरब आक्रमण हुआ था। आक्रमणकारी बढते हुये उज्जैन तक चले गये थे। नागभट्ट ने इन्हें हरा दिया और उज्जैन तक के भूभाग पर अधिकार कर लिया। चित्तौड़ के मौर्यों की शक्ति को इसे संभवतः बड़ा धक्का लगा। प्रतिहारों का अधिकार उज्जैन से कुछ समय संभवतः हट गया। राष्ट्रकूट दंतिदुर्ग ने उसे जीत कर वहां हिरण्यगर्भ यज्ञ किया। चित्तौड़ से वि०सं० ८११ का एक लेख कुकडेश्वर का मिला है। संभवतः यह मौर्य राजा ही था। उस समय तक गुहिलोतों का वहां अधिकार नहीं हुआ था। कोटा के मौर्य राजा धवल या धवलप्प देव से इनका क्या सम्बन्ध था? स्पष्ट नहीं हो सका है।

बाप्पा रावल की चित्तौड़ विजय

वाप्पा रावल मेवाड़ का प्रथम महान गुहिलोत शासक था जिसने आहड़ और नागदा के आसपास से आगे बढकर चित्तौड़ तक राज्य फैलाया था। यह एकलिंग मन्दिर के मठाधीश हारीत राशि का शिष्य था। ऐसी अनुश्रुति है कि हारीत राशि ने ही वरदान देकर इसे महान शासक बनने को प्ररित किया था। इसलिए मेवाड़ के राजा अपने आपको "दीवाण" बतलाते थे और मेवाड का वास्तविक शासक एकलिंग भगवान को बतलाया है। यहां उस समय लकुलीश साधुओं का बड़ा केन्द्र था। पाशुपत योगियों में लकुलीश साधु बडे उल्लेखनीय रहे हैं। वाप्पा रावल की प्रसिद्धि इतनी अधिक हुई कि कई प्रशस्तिकारों ने भूल से इसे गुहिल का पिता तक वर्णित कर दिया है।

बाप्पारावल के चित्तौड़ विजय की तिथि क्या हैं? एकलिंग महात्म्य की एक हस्त लिखित प्रति में इसे वि.स. ८१० में शासक

---

(४०) राजस्थान भारती वर्ष ६ ....अंक २ में प्रकाशित

होना वर्णित किया है। एक अन्य प्रति में वि.स. ८१० में राज्य छोड़ना वर्णित किया है। ये दोनों तिथियां संदेहास्पद हैं। चित्तौड़ में वि.सं. ८११ में कुकडेश्वर नामक मौर्य राजा शासक था। बीकानेर के अनूप संस्कृत पुस्तकालय में संग्रहित एक हस्तलिखित ग्रंथ में बाप्पा को शक सं. ६८५ में शासक माना है[41] जिसके अनुसार वि.सं. ८२० में वह शासक होता है। यह तिथि ठीक प्रतीत होती है।

परम्परा से ऐसा भी विश्वास किया जाता है कि यह किला मानमोरी से विजय किया गया था[42] लेकिन यह वर्णन गलत प्रतीत होता है। जैसा कि ऊपर वर्णित किया जा चुका है मानमोरी के शिलालेख वि.सं. ७७० के हैं। इसके पश्चात् वि.स. ८११ में कुकडेश्वर नामक राजा का उल्लेख मिलता है यह कुकस्थ नामक रघुवंशी प्रतिहार राजा से भिन्न मौर्यवंशी रहा होगा। बाप्पा रावल ने निसंदेह इस कुकडेश्वर से ही राज्य हस्तगत किया होगा। संभवतः बाप्पारावल ने प्रतिहार राजाओं की सहायता से चित्तौड़ लिया हो। ख्यातों में बाप्पा रावल का बचपन अत्यन्त कष्ट से व्यतीत करने का उल्लेख मिलता है जिसका कोई आधार नहीं है। बाप्पा शब्द उपाधि प्रतीत होती है[43]। वस्तुतः यह नाम किस राजा का था ? इसके सम्बन्ध में बड़ा मतभेद रहा है[44]। कुंभलगढ़ प्रशस्ति में इस सम्बन्ध में सबसे पहले विचार किया किया था। इसमें शील का नाम बाप्पा दिया है जो गलत है क्योंकि

---

(४१) ओझा–उ. इ. पृ. १०६ से १०८। मेरी पुस्तक महाराणा कुंभा–पृ. ८।

(४२) ततः स निर्जित्य नृपं तु मोरीजातीय भूपं मनुराजसंज्ञम्।
गृहीतवांश्चित्रतचित्रकूटं चक्रेत्र राज्यं नृपचक्रवर्ती ।३/१८।

(४३) ओझा–उ.इ. पृ. १०१

(४४) तास्मिन् गुहिलवंशेभूद्भोजनामावनीश्वरः।
तस्मान्महींद्रनागाह्वोबप्पाख्यश्चापराजितः ॥१३९॥
ए. इ. भाग २४ पृ. ३२४

इसका वि.स. ७०३ का शिलालेख मिल चुका है। टाड ने इसी को ध्यान में रखते हुए शील को बाप्पा मानते हुए उसका काल वि. स० ७८४ माना है जो उक्त ७०३ वि. के लेख के मिल जाने से स्वतः गलत हो जाता है। कविराजा श्यामलदास ने महेन्द्र को बाप्पा वर्णित किया है। श्री गोरी शंकर हीराचन्द्र ओझा ने कालभोज का नाम बाप्पा माना है। श्री देवदत्त भण्डारकर ने कालभोज के पुत्र खुमाण को बाप्पा माना है[45]। लेकिन ओझा जी वाले मत को ही प्रायः आधुनिक विद्वान ठीक मानते हैं। श्री भण्डारकर अपराजित के वि.स. ७१८ और अल्लट के वि.सं. १०१० के शिलालेखों के बीच २९२ वर्षों का अन्तर मानते हुए इस काल में हुए १२ राजाओं की जो औसतन अवधि २४॥ वर्ष आती है उसी हिसाब से अपराजित से ८१० वि. तक ९२ वर्षों के लिये ४ राजा माने हैं और इसी हिसाब से अपराजित के चौथे वंशधर खुमाण को बाप्पा माना है। किन्तु ओझा जी की मान्यता के अनुसार कालभोज ही बाप्पा होना चाहिए।

राष्ट्रकूटों का आक्रमण

दक्षिणी भारत के राष्ट्रकूट राजा गोविन्द तृतीय ने अपने पिता ध्रुवनिरुपम की तरह उत्तरी भारत पर आक्रमण किया था। इस आक्रमण का सविस्तार उल्लेख राधनपुर के दानपत्र में [46]उपलब्ध है। उसके पुत्र अमोघवर्ष के एक दानपत्र में गोविन्दराज तृतीय को केरल,

(४५) वी. वि. भाग १ पृ. २५० । ओझा– उ. इ. पृ. १०२। इ. ए. भाग ३९ पृ. १९०

(४६) इ० ए० भाग ६, पृ० ६६ / मन्ने के शक सं० ७२४ के लेख में यह वर्णन इस प्रकार है:–

संर्व्व चैत्रमुदीक्ष्य यं शरदकृतु पर्ज्जन्यवद् गुर्ज्जरो
नष्टः क्वापि भयात् तथापि समयं स्वप्नेऽप्यपश्यन्....।
यत्पादानति मात्र....क शरणानालोक्य लक्ष्मीधिया
दूरान् मालवनायको नयपरो यत्रांतिबद्वाञ्जलिः

(जैन शिलालेख संग्रह भाग २, पृ१२७)

मालवा, सोराष्ट्र और चित्रकूट को जीतने वाला वर्णित किया[47] है। लाट और मालवे में अपने वंशजों को उसने जागीरें दी थीं। मेवाड़ के धनोप और गोडवाड़ के हंठूडी ग्राम से राष्ट्रकूटों के [48]लेख मिले हैं। धनोप मेवाड़ में शाहपुरा के पास स्थित है। इसमें राष्ट्रकूट राजा भल्लिल और उसके पुत्र दन्तिवर्मा और उसके दो पुत्र बुद्धिराज और गोविन्दराज का उल्लेख है। ये नाम दक्षिणी भारतीय राष्ट्रकूट राजाओं के नामों से मिलते हैं। श्री बुल्हर ने रानधपुर के दानपत्र को सम्पादित करते हुए वर्णित किया है कि गोविन्दराज ने भीनमाल से मालवा जाते समय दोहद या कुंभलगढ़ का मार्ग लिया होगा। गोडवाड़ और शाहपुरा के आसपास लेख मिलने और चित्रकूट विजय का उल्लेख होने से प्रतीत होता है कि उसने कुंभलगढ से मेवाड़ प्रदेश में प्रवेश करके शाहपुरा के आसपास प्रदेश को विजय किया और वहां अपने सम्बन्धी को जागीर दी और वहां से चित्तौड़ जीतकर मालवा चला गया। श्रीजेम्स फेथफुल फलीट ने उक्त अमोघवर्ष के दानपत्र को सम्पादित करते हुए वर्णित किया है कि चित्रकूट दुर्ग बुंदेलखण्ड में स्थित हैं। लेकिन उनकी यह धारणा गलत है। मेवाड के चित्रकूट और इसके आस पास के क्षेत्र का कई शताब्दियों से दक्षिणी भारत से बराबर सम्पर्क था। जैन साधु बराबर दक्षिणी भारत से यहां आया जाया करते थे। दिगम्बर जैन सूत्रों से पता चलता है कि अमोघ वर्ष के गुरू जिनसेनाचार्य के गुरू वीरसेनाचार्य का मेवाड़ के चित्रकूट से बडा सम्बन्ध रहा है। इन्होने चित्तौड़ के एलाचार्य नामक एक साधु से शिक्षा प्राप्त की थी एवं यहां से ही जाकर इन्होने वड़ोदा में धवला टीका पूर्ण की [49] थी। अपभ्रंश के पउम चरिउ नामक दिगम्बर जैन ग्रंथ

(४७) जगतुंग इतिश्रुतः केरलमालवसोटान् चित्रकूटगिरीदुर्गस्थान...."

(४८) इ.ए. भाग ४० पृ. १७५। ए.इ. भाग १० पृ. २०

(४९) कालेगते कियत्यपि ततः पुनश्चित्रकूट पुरवासी।
श्रीमानेलाचार्यो बभूव सिद्धान्ततत्वज्ञः ।। १७६।।
तस्य समीपे सकलं सिद्धान्तमधीत्य वीरसेनगुरूः।
उपरितम निबन्धनाद्यधिकारानष्टं लिलेख।। १७७।। श्रुतावतार

में मेवाड़ के चित्तौड़ का कई स्थलों पर [50] उल्लेख है। इसमें एक वार स्त्रियों के सौन्दर्य का वर्णन करते समय चित्तौड़ और उज्जैन की स्त्रियों की तुलना की गई है। इसी प्रकार एक अन्य वर्णन में चित्तौड़ और दशपुर (मन्दसौर) का साथ २ उल्लेख किया है। अतएव प्रतीत होता है कि राष्ट्रकूट राजाओं के लेखों में पश्चिमी राजस्थान के दिग्विजय के वर्णन में जहां चित्रकूट का वर्णन आया है, वहां मेवाड़ का चित्तोड़ ही होना चाहिये।

मेवाड़ के शिलालेखों से भी इस घटना की पुष्टि होती है। कुंभलगढ़ प्रशस्ति में जो राणा कुंभा के समय कई प्राचीन प्रशस्तियों को शोध करके लिखी है, रावल खुमाण के लिये लिखा है कि उसने सौराष्ट्र, द्राविड़ प्रदेश और दक्षिण के राजाओं को विजित किया। एकलिंग माहात्म्य[51] में भी इसी प्रकार का वर्णन है। उक्त दोनों में स्पष्टतः उल्लेख है कि सौराष्ट्र से दिग्विजय करने के लिए आये हुए राष्ट्रकूट राजा से युद्ध किया। सौराष्ट्र द्राविड़ प्रदेश और दक्षिण के सबसे उल्लेखनीय विजेता उस समय राष्ट्रकूट ही थे एवं उक्त लेख में "सोराष्ट्रास्त्यक्तराष्ट्रानरपति" भी वर्णित है। अतएव प्रतीत होता है कि गोविन्दराज ने चित्तोड़ को अस्थायी रूप से विजय कर लिया और धनोप में अपने वंशजों को जागीर दे दी। रावल खुंमाण ने आक्रान्ताओं से मेवाड़ प्रदेश को मुक्त कराया और इसी कारण मेवाड़ में इसका बड़ा आदर किया जाता है। अमोघवर्ष के दानपत्रों में उसे मालवा तक ही जीतने का वर्णन है जिससे भी इस घटना की पुष्टि होती है।

---

(५०) मासे हिं चउरद्धेहिं चितकूडु बोलीणई ॥ ९ ॥ २४ वीं संधि
ते चित्तउडू मुएवि तुरन्तइं।
दसउर पुर सीमान्तरु पत्तइं ॥ १५ । १ ॥ २४ वीं संधि—
भउहा जुएण उज्वेणएण।
मालेण वि चित्ताउडएण ॥ १३ ॥ ४९ संधि, घत्ता ८

(५१) ए० मा० श्लोक सं० १३६/कु०प्र० श्लोक सं० १३६/वरदा वर्ष ६ अंक १ में प्रकाशित मेरा लेख चित्तोड़ पर दो अज्ञात आक्रमण।

ऐसा प्रतीत होता है कि अमोघवर्ष के पश्चात् भी चित्तौड़ पर दक्षिण के राष्ट्रकूटों के आक्रमण होते रहे थे। राष्ट्रकूट राजा कृष्ण राज के करहाड़ और देवली के दानपत्रों में वर्णित है कि गुर्जर राजाओं के हृदय में चित्रकूट को जीतने की अब अभिलाषा जाती रही है। श्री अल्तेकर ने उस चित्रकूट को भी बुन्देल खंड का चित्रकूट माना है किन्तु राय चोधरी और डा० दशरथ शर्मा ने मेवाड़ का चित्तौड़ मानना ही अधिक युक्ति संगत बतलायाहै [51A]।

चित्तौड़ का राजा धरणीवराह

चित्तौड़ के राजा धरणीवराह का उल्लेख माघ के वंशज हर मेखला कार माहुक ने किया है। इस राजा की निश्चित तिथि ज्ञात करने में कठिनाई प्रतीत होती है। डा. दशरथ शर्मा के अनुसार यह ८३१ ई. में हुआ था। इनका कथन है कि यह मौर्यवंशी राजा था[52]। हरमेखला कार ने अपने पूर्वज माघ का परिचय देते हुये वर्णित किया है कि माघ महाकवि कुञ्जर था तो वह कुञ्जर कलभ। यह भी भीनमाल का ही रहने वाला था। इसने चित्तौड़ जाकर के धरणीवराह के राज्य में इस ग्रंथ की रचना की थी। इससे हम यह निश्चित कर सकते हैं कि माघ के कई वर्षों बाद (अर्थात् ७२५ ई. के बाद जो माघ की तिथि मानी जाती है) यह हुआ था। इसके ग्रंथ का उल्लेख बंगाल

५१A. राय चौधरी—हिस्ट्री आफ मेवाड़ पृ २५/ दशरथ शर्मा—राजस्थान थ्रू दी ऐजज पृ २४४/ अल्तेकर—दी राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स पृ. ९०—९५

(५२) डा. दशरथ शर्मा के नीचे लिखे लेख दृष्टव्य हैं:—

विश्वम्भरा में प्रकाशित" महाकवि माघ के वंशज कवि-वर मण्ड़न, माधव, माहुक और घाइल"। प्रोसिड़िग्ज आफ इंडियन हिस्टोरिकल कांग्रेस १९६१ में प्रकाशित "धरणी वराह आफ चित्तौड़"। राजस्थान थ्रू दी एजेज पृ. २४०।

के राजकीय वैद्य चक्रपाणि (१०४०–१०५०) ने किया था। इस ग्रंथ के बंगाल पहुँचने तक समय लग सकता है। अतएव इसे १०वीं शताब्दी में हुआ तो कम से कम मान ही सकते हैं। इसकी टीका में ८८७ तिथि दी है[53]। इसे दिनेश चंद्र भट्टाचार्य ने शक संवत माना है। हरमेखला की एक प्राचीन टीका में इसे विक्रमी संवत् ही लिखा है। अतएव यह तिथि ही अधिक उपयुक्त है।

धरणीवराह के वंशजों को संभवतः प्रतिहारों ने या गुहिल वंशियों ने चित्तौड़ छोड़ने को वाध्य किया था। प्रतिहार और मौर्यों के संघर्ष का उल्लेख वाऊक के जोधपुर के लेख में भी है। ये लोग उड़ीसा की तरफ चले गये। वहां से प्राप्त राजारङ्क उदय वराह के एक लेख में इस परिवार का चित्तोड़ से आने का उल्लेख है।

चित्तौड़ पर गुहिल राज्य

श्री जी० सी० राय चौधरी ने वर्णित किया है[54] कि चित्तौड़ में गुहिलराज्य अल्लट के पहले नहीं था। वाप्पा रावल की चित्तौड़ विजय की कथा १५वीं शताब्दी में वर्णित की गई है अतएव मान्य नहीं हो सकती है। यह तो निश्चित रूप से सही प्रतीत होता है कि मेवाड़ के राजाओं का राज्य प्रारम्भ में पश्चिमी मेवाड़ तक ही सीमित था। वाप्पा रावल ने प्रथम वार चित्तौड़ जीता था। राष्ट्रकूटों की सहायता से मौर्यों ने उसे वापस हस्तगत कर लिया लेकिन गुहिलोतों ने इसे अपने अधिकार में कर लिया।

---

(५३) धरणिवराह-रज्जे कविमण्डण-तणय-माहव-सुएण,
रइआ चित्तउड़े माहुएण हरमेहला"
एत्थरसाए असुत्ताए समाहमासम्मि।
सत्तमदिणे समत्ता विअ'ब्रह्मजण मुणिञ्ज-परमत्था।।

(५४) राय चौधरी–हिस्ट्री आफ मेवाड़ पृ. ३१

हूण आक्रमण

दक्षिणी पूर्वी राजस्थान में हूणों का राज्य था। मेनाल के प्रसिद्ध शिव मंदिर के लिये वर्णित किया जाता है कि इसे हूणों ने ही बनाया था। नवसाहसांक चरित में हूणों के साथ परमारों के संघर्ष का वर्णन है। हूण राजा जेज्जप को सौराष्ट्र के बलवर्मा ने हराया था। राजा कर्ण डाहल का विवाह हूण राजकुमारी से हुआ वर्णित किया गया है। अतएव प्रतीत होता है कि उस समय ये लोग बडे प्रबल थे। सोमदेवकृत नीति वाक्यामृत में चित्तौड़ में हूण आक्रमण का उल्लेख है। उसमें लिखा है कि हूणों ने धोखे से व्यापारी का वेष बना कर चित्तौड़ दुर्ग को जीत लिया।[55]

सोमदेव द्वारा वर्णित चित्रकूट मेवाड़ का चित्तौड़ है क्योंकि इससे इनका सम्पर्क बराबर रहा था। इनके कुछ ही वर्षो बाद मेवाड़ के चित्तोड़ में हरिषेण नामक एक विद्वान् वि० स० १०४४ में हुआ था। इन्होने अपभ्रंश में "धम्म परिक्खा" नामक ग्रंथ लिखा। उस पर आचार्य सोमदेव का प्रभाव था और ये भी मेवाड़ के चित्तौड़ से परिचित थे। सोमदेव के समसामयिक मेवाड़ के राजा नरवाहन की सभा में एक शास्त्रार्थ बौद्धों, दिगम्बर जैनों और शैवों के मध्य हुआ था। काष्ठा संघ की लाट बागड़ की गुर्वावली में प्रभाचन्द[56] नामक एक साधु का उल्लेख है, जिसने शैवों को विजित किया था। सौभाग्य से इसी घटना का उल्लेख एकलिंगजी के वि०सं० १०२८ के लेख में है।[57]

---

(५५) श्रूयते किल हूणाधिपतिः पुण्यपुटवाहिभिः सुभटैः चित्रकूट जग्राह।। ८।। दुर्ग समुद्देश

(५६) "चित्रकूटदुर्गे राजानरवाहनसभायां विकटशैवादिवृन्दवन दहनदावानलविविधाचारग्रंथकर्त्ताश्रीमत्प्रभाचद्रदेव–"

अनेकान्त, वर्ष १५, किरण ३, पृ०३८

(५७) जनरल बम्बई ब्रांच रायल एशियाटिक सोसाइटी के अंक २२ में डी० आर भण्डारकर द्वारा सम्पादित, एवं वीर विनोद भाग १ के शेष संग्रह में भी मुद्रित।

हरिषेण के ग्रंथ में चतुर्मुख, स्वयंभू और पुष्पदंत[58] नामक कवियों को स्मरण किया है। पुष्पदंत ने भी अपने ग्रंथ में स्वयं भू और चतुर्मुख का उल्लेख किया है। अतएव पता चलता है कि इनकी रचनाओं का पठन पाठन चित्तौड़ में बराबर होता रहा है। यहां दिगम्बरों की बड़ी बस्ती थी। जैन कीर्तिस्तंभ का निर्माण भी लगभग इसी समय हुआ था।

सोमदेव के समसामयिक राजा अल्लट की रानी हरिया देवी हूण कुल की थी। सारणेश्वर के वि० सं० १०१० के लेख में भी हूणों का उल्लेख है। अल्लट के पिता भर्तृ भट्ट के लिये विख्यात है कि उसकी मृत्यु के बाद अल्लट की मां ने शासन संभाला था संभवतः यह घटना अल्लट के समय उसके शासन काल के प्रारंभिक वर्षों में घटित हुई थी। इस संबंध में दुर्भाग्य से मेवाड़ के इतिहास और ख्यातो में कोई वर्णन नहीं है। यदि उस समय तक चित्तौड़ पर प्रतिहारों का अधिकार ही माना जावे तो अल्लट ने हूणों की सहायता से प्रतिहार राजा देवपाल को हराया। युद्ध में देवपाल की मृत्यु हो गई[59] यह घटना वि०सं० १००५ के आसपास की है क्योंकि सियादोनी के लेख के अनुसार उक्त संवत् में देवपाल शासक था। देवपाल के साथ युद्ध करने का उल्लेख आहड़ के लेख में है। उस समय प्रतिहार साम्राज्य नष्ट प्राय हो गया था। मूल राज ने पाटन में ९९८ वि०, में अलगराज्य स्थापित कर लिया था। पर मार राजा सीयक ने मालवा का कुछ भाग जीत लिया चन्देलों के साथ भी ऐसी स्थिति हो गई। देवपाल के उत्तराधिकारी शक्ति सम्पनः नही थे। भोजराज और महिपाल में

(५८) अभूद्यस्यामेवत्तस्यां तनयः श्रीमदल्लटः।
स भूपतिः (प्रिया) यस्य हूणक्षोणीशवंशजाः
हरियदेवी यशो यस्या भाति हर्षपुराहवयम्। इ० ए० जि० ३९
पृ. १९१

(५९) ....दुर्द्धर्मरि यो देवपालं व्यधात्।
च्चंचच्चंडगदाभिघातविदलद्वक्षस्थलं संयुगे।
निर्स्त्रिशक्षतकंध........कवंधंयाघात्॥ उ०इ०पृ० १२४

परस्पर द्वेष था। राष्ट्रकूट राजा इन्द्र III ने लगभग इसी समय आक्रमण किया। इसमें चित्रकूट के राजा अल्लट ने भी महिपाल की सहायता के लिये युद्ध में भाग लिया था[60]।

मालवे के परमारों का चित्तौड़ पर अधिकार

प्रतिहार साम्राज्य के विघटन के प्रश्चात् उत्तरी भारत में कई छोटे २ राज्य नये स्थापित हो गये। इनमें मालवा के परमार गुजरात के सोलंकी और अजमेर के चौहान, बड़े प्रसिद्ध थे। मालवा के परमार राजा मुंज ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर इसे विजित किया था। इस आक्रमण का उल्लेख वि सिं० १०५३ के हठूंडी के राठौड राजा बाला प्रसाद के लेख में है। इसमें लिखा है कि जिस समय मेवाड़ में मुंज ने आक्रमण किया था तव उसके पूर्वज धवल ने मेवाड़ की सहायता की थी। उस समय मेवाड़ में शक्तिकुमार शासक था। जैन ग्रंथ "जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति" में वांरा में राजा सत्ति के समय पद्म नन्दि मुनि का उल्लेख है किन्तु यह मेवाड़ के शक्ति कुमार से भिन्न होना चाहिए क्योंकि शक्तिकुमार का उत्तराधिकारी आहड़ में शासक था। चित्तौड़ पर लगभग कई वर्षों तक परमार और सोलंकियों का अधिकार होना प्रकट होता है। चन्द्रावती के राजा धंधुक भागकर चित्तौड़ में भोज के पास गया था। विमल शाह ने भोज के पास जाकर उसको समझाकर वापस गुजरात के राजा की शरण में ला दिया था। विमलशाह चन्द्रावती

---

(६०) राष्ट्रकूटकुलोद्भुतामहालक्ष्मीरितिप्रिया। अभूद्यस्यामवत्तस्यां तनय: श्रीमदल्लट: ।। इ. ए. जि. ३९ पृ. १९। धवल राठौड़ ने मूंज के आक्रमण के समय मेवाड़ की सहायता की थी। उसका पिता ममंट (९९६ वि०) ने भी अल्लट की सहायता की हो।

भोजे वल्लभराजे श्रीहर्षे चित्रकूटमूपाले।
शंकरगणे च राजनि यस्यासीदभयद: पाणि: ।। इ० ए० भाग २ पृ. ३०६–७

विजय करने और आबू पर जगत्प्रसिद्ध विमल वसति नामक जैन मंदिर वनाने के लिये विख्यात है। विविध तीर्थ कल्प के अर्बुद कल्प में भी इसका उल्लेख है। इसमें वि० सं० १०८८ में आबू पर घंधुक को चित्रकूट से लाकर मंदिर वनाने की घटना का उल्लेख है। अतएव इससे इसकी पुष्टि होती है कि उस संवत के आसपास चित्तौड़ में परमारों का राज्य था। खरतरगच्छ पट्टावली से ज्ञात होता है कि चित्तौड़ में रहने वाले जिनवल्लभसुरि के पास मालवे के राजा नरवर्मा ने एक समस्या पूर्ति हेतु ऊंट सवार भेजा था [60A]। जव उन्होंने इसकी पूर्ति कर दी तो उसे विपुल धनराशि देने को कहा तो वह इन्कार हो गया। केवल यही मांग की कि चित्तौड़ के मंदिर की व्यवस्था के लिए कुछ दान दे दें जिससे प्रतीत होता है कि उस समय तक यह दुर्ग परमारों के अधिकार में था[61]

चित्तौड़ में शक सं० १०२८ (११६२) की एक प्रशस्ति मालवा के परमारों की मिली है। इस प्रशस्ति में ७८ श्लोक हैं और अहमदावाद के लालभाई दलपत भाई के संग्रहालय में इसकी एक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है।[62] इसके श्लोक सं० ६से१४ में भोज का वर्णन है। श्लोक सं. १५ से २० तक उदयादित्यका, २१ से २८ मे नरवर्मा का वर्णन है। इसके प्रश्चात् जिन वल्लभ सूरि का वर्णन आता है। इन्होंने यहा वीर देव रासल वीरक आदि को प्रतिवोधित कर विधि चैत्य का निर्माण कराया था। उस काल में नरवर्मा ने दो पारुत्थ मुद्रा जिनार्चा के लिये सूर्य संक्राति पर दान दिया था। इस शिलालेख के मिल जाने से अव

(६०ए) आबू के. वि. सं. १३७८ के लेख का छटा श्लोक और विविध तीर्थ कल्प में अर्बुदकल्प पृ. ३९–४०

(६१) चित्रकूटमण्डपिकातस्तत्शाश्वतदानंभविष्यतीतिकृतम् (युगप्रधान गुर्वावली पृष्ठ १३)

(६२) इस शिलालेख की प्रतिलिपि श्री नाहटाजीने करा के भिजवाई उसके लिये मैं अनुग्रहित हूं।

स्पष्ट हो गया है कि नरवर्मा के समय तक निश्चित रूप से चित्तौड़ पर परमारों का ही अधिकार बना रहा था। गुहिलराजा पश्चिमी मेवाड़ के ही अधिपति थे किन्तु इनके इनसे सम्वन्ध ठीक ही रहे प्रतीत होते हैं। गुहिल राजा विजयसिंह को उदयादित्य की पुत्री व्याही थी।

गुजरात के सोलंकियों का अधिकार

ऐसा प्रतीत होता है कि सिद्धराज जयसिंह ने जव मालवा विजय किया उस समय चित्तौड़ भी जीत लिया था। कुमारपाल के शासनकाल के शिलालेख चित्तौड़ से मिले हैं। वि. सं. १२०७ के लेख में वर्णित है कि जव वह सपादलक्ष विजय करके लौट रहा था तव मार्ग में रूककर चित्तौड़ पर त्रिभुवन नारायण मन्दिर के दर्शन किये। उस समय वहां सज्जन दंडनायक था। यह संभवतः कुमार जाति का था। इसके साथ वीसलदेव चौहान का युद्ध हुआ था विजोलिया के शिलालेख में वर्णित है कि दुष्ट सज्जन को[63] इसने दंडित किया। सोम तिलक सूरि के अनुसार विग्रहराज ने चित्तौड़ में सज्जन की सेनाओं को वुरी तरह हराया था। इसके पश्चात् चित्तौड़ दुर्ग चौहानों के पास रहा अथवा सोंलकियों ने वापस ले लिया इसके कुछ भी प्रमाण नहीं है। ऐसी मान्यता है कि कुमारपाल का विवाह मेवाड़ की एक राजकुमारी से हुआ था। मेवाड़ के इतिहास में इस घटना का उल्लेख नहीं है। कुमारपाल ने चित्तौड़ में दंडनायक के पद पर कुछ समय तक वौसरि को भी लगाया था। मोहपराजय में द्यूत खेलने वालों में कुमार पाल के साथ मेवाड़ का राजकुमार भी नाम वर्णित है। वि.सं. १२२८ में अजयपाल शासक हुआ। इसके समय में मेवाड़ और गुज़रात के शासकों में वरावर युद्ध चलता रहा। रावल सांमतसिंह ने एक वार चित्तौड़ स्वाधीन करा लिया था। किन्तु मेवाड़ के सामन्तों ने आवू

---

(६३) कृतान्त पथ सज्जोऽभूत् सज्जनो सज्जनोभुवः। वंकुतं कुन्तपालोऽ-ग्राहयेतो वंकुन्तपालकः (विजोलिया का लेख) अरली चौहान डाइनेस्टिज पृ. ५६–५७

के परमार राजा धारावर्ष के छोटे भाई प्रह्लादन व गुजरात के राजा की सहायता से उसे पदच्युत कर दिया। वह डूंगरपुर की तरफ चला गया।

कीतू सोनगरे की चित्तौड़ विजय

कीतू सोनगरा आल्हणदेव का पुत्र था। इसे वि० सं० १२१८ में नाडलाई के आसपास के १२ गांव दिये थे। वि० सं० १२२० के आसपास वह नाड़ोल के राज कार्य में भी भाग लेने लगा था। उस समय सामन्तसिंह के कई विरोधियों ने संभव है कि उसे मेवाड़ की तरफ बढ़ने को प्रोत्साहित किया। वि० सं० १२३२ के आसपास सामन्त सिंह का युद्ध अजयपाल से हुआ था और इसके पश्चात् की अस्तव्यस्त स्थिति का लाभ उठाकर कीतू सोनगरे ने चित्तौड़ पर अधिकार कर[64] लिया। यहां के सामन्तों को यह बात बहुत ही अरुचिकर प्रतीत हुई और इन्होंने सामन्तसिंह के छोटे भाई कुमार को उसके स्थान पर शासक बना दिया। सामन्तसिंह का वागड़ से वि० सं० १२३६ का शिलालेख भी मिल[65] चुका है। कुमार ने चालुक्यों की सहायता से कीतू को मेवाड़ से निष्कासित कराया था।

गुजरात के राजा भीमदेवचालुक्य का अधिकार इस क्षेत्र में बराबर बना रहा। वहां के राजा स्थानीय राजा मात्र रह गये। मथनसिंह के वि.१२३६ से १२४२ तक के लेख मिले हैं। पदमसिंह का वि०सं० १२५१ का दान पत्र मिला है। आहड़ से विजयपाल गुहिल (भर्तृपट्ट शाखा) और भीमदेव का दान पत्र वि० सं० १२६३ का मिला है। अतएव उक्त संवत के पश्चात् ही जैत्रसिंह ने मेवाड़ से गुर्जर राजाओं को निष्कासित कराने में सफलता प्राप्त की प्रतीत होती है।[66]

---

(६४) अरली चौहान डाइनेस्टिज़ पृ० १४३

(६५) "गुहिल्स इन वागड़" नामक मेरा लेख जो जरनल आफ दी राजस्थान हिस्टोरिकल इन्स्टीच्युट के भाग ४ अंक ४ एवं वरदा वर्ष ३–४ में प्रकाशित "वागड़ में गुहिल राज्य" दृष्टव्य है।

(६६) न मालवीयेन न गौर्जरेण न मारवेशेन न जांगलेन।
म्लेच्छाधिनाथेन कदापि मानो म्लानिं न निन्येवनिपस्य यस्य ॥६॥
(चीरवा का लेख)

जैत्रसिंह और उसके उत्तराधिकारी

हमीरमद मर्दन में जैत्रसिंह के लिये लिखा है कि उसे अपनी तलवार पर बड़ा अभिमान है। वह गुजरात के राजा के बुलाने पर भी नहीं गया था। इससे प्रतीत होता है कि उसने गुजरात वालों से मुक्ति प्राप्त करली। वि.सं. १२७६ के आसपास मेवाड़ में सुल्तान अल्तमश का आक्रमण हुआ और उसमें मेवाड़ में बड़ी क्षति हुई[67]।

चित्तौड़ राजधानी बनना

ओझाजी के अनुसार जैत्रसिंह के समय तक नागदा और आहड़ दोनों राजधानियां थी किन्तु सुल्तान अल्तमश के आक्रमण के कारण जब नागदा खंडित हुआ तो उसने अपने नवीन जीते हुये भाग को रक्षित करने के लिये राजधानी चित्तौड़ में स्थापित कर ली। इससे बहुत पहले अलबरूनी ने मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ ही लिखी है। उदयपुर में राजधानी बनने तक मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ ही रही थी।

सुल्तान नासिरुद्दीन का चित्तौड़ पर आक्रमण

सुल्तान नासिरुद्दीन मोहम्मद ने अपने भाई जलालुद्दीन को पकड़ने के लिये हि०सं० ६४६ (१३०५ वि.) में मेवाड़ में आक्रमण किया था। फरिश्ता के दिये गये वर्णन के अनुसार उसने अपने भाई को कन्नौज से दिल्ली बुलाया था किन्तु प्राणों का भय होने के कारण चित्तौड़ की तरफ भाग गया। सुल्तान ने उसका पीछा किया। लगभग ८ महिने के घेरे के बाद उसे ज्ञात हुआ कि यह उसके अधिकार में नहीं आसकता तो वह लौट गया।[68] इस घटना का उल्लेख मेवाड़ के इतिहास में नहीं मिलता है।

---

(६७) अरली चौहान डाइनेस्टिज पृ० १५२ का फुटनोट इसमें वि० सं० १२७७ में आक्रमण होना माना गया है। किन्तु नादेसमा के लेख में सं० १२७६ में नागदा ही राजधानी वर्णित की है। अतएव यह घटना इसके बाद मानी जाना चाहिये।

(६८) ब्रिग्ज—तारीख इ. फरिश्ता भाग १ पृ. २३८

बीसलदेव वाघेला का चित्तौड़ पर आक्रमण

वीसलदेव वाघेला के एक दानपत्र में "मेदपाटकदेशकलुष-राज्यवल्लीकंदोच्छेदनकुद्दालकल्प...." वर्णित है। यह मेवाड़ के राजा तेजसिंह का समकालीन था। ओझा जी के अनुसार इससे युद्ध चित्तौड़ की तलहटी में हुआ था और इसमें क्षेम के पुत्र रत्न भीमसिंह प्रधान के सहित काम में आया था। चीरवा के शिलालेख में इनके उक्त युद्ध में मारे जाने का उल्लेख है।[69]

हमीर चौहान का चित्तौड़ पर आक्रमण

हमीर चौहान रणथंभोर का शासक था। राज्यगद्दी पर वैठने के वाद इसने मांडलगढ़ पर आक्रमण किया। हमीर महा काव्य में नयनचंद सूरि उसकी चित्तौड़ पर चढाई करने का और आवू तक जाने का उल्लेख करता है। मेवाड़ के इतिहास में इस घटना उल्लेख नहीं है। यह घटना संभवतः वि०सं० १३४५ के आसपास सम्पन्न हुई थी[70] उस समय चित्तौड़ में समरसिंह शासक था।

सुलतान अल्लाउद्दीन खिलजी का चित्तौड़ पर अधिकार

दिल्ली के सुलतानों में अल्लाउद्दीन वडा उल्लेखनीय था। इसने २ वार मेवाड़ पर आक्रमण किया था। पहला १३५६ वि. में और दूसरा वि० सं० १३६० में। पहले आक्रमण के समय मेवाड़ का शासक महारावल समरसिंह था। जिनप्रभसूरि ने विविध तीर्थ कल्प के सत्यपुर कल्प में प्रसंगवश पहले आक्रमण का उल्लेख किया है। किन्तु फारसी तवारीखों में इस चित्तौड़ आक्रमण का उल्लेख नहीं है। इसका कोई दीर्घ कालीन प्रभाव नहीं पड़ा। इसी कारण न तो मेवाड़ की ख्यातों में और फारसी तवारीखों में १३५६ वि. में अल्लाउद्दीन के चित्तौड़

---

(६९) ओझा—उ० इ० भाग १ पृ. १६८–१६९

(७०) दशरथ शर्मा—अरली चौहान डाइनेस्टिज पृ० १०७–८

(७१) तीर्थ कल्प में सत्यपुर कल्प पृ० ९५

पर आक्रमण का उल्लेख किया गया है। दूसरा आक्रमण रावल रत्नसिंह के शासन काल में किया गया था। इसका सविस्तार वर्णन अमीर खसुरों ने तारीख इ अलाई में किया है।

पदि्मनी की ऐतिहासिकता

महारावल रतनसिंह की रानी का नाम पद्मिनी था। उसकी सुन्दरता से मुग्ध होकर आलाउद्दीन ने राघव चेतन नामक एक तांत्रिक सहायता से उसे प्राप्त करने का प्रयास किया था। इस कथानक को लेकर कई विद्वानों को सन्देह है। अतएव उससे सम्बन्धित मुख्य २ घटनाओं पात्रों और तत्सम्बन्धी ऐतिहासिक तथ्यों का पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

रतनसिंह—यह समरसिंह के बाद मेवाड़ की गद्दी पर बैठा था। यह संभवतः उसका दत्तक पुत्र था। अमरकाव्य वंशावली नामक हस्तलिखित ग्रंथ में इसको अधिक स्पष्ट किया है। इस ग्रंथ में रतनसिंह को शीशोदा का वंशज माना है। नैणसी के वर्णन से भी इसकी पुष्टि[७२] होती है। ओझाजी ने यद्यपि इसे उल्लेखित नहीं किया है किन्तु यह प्रतीत होताहै कि रतनसिंह वस्तुतः शीशोदा शाखा का ही था। समरसिंह के बाद इसे राजसिंहासन पर बिठाया गया था। इसका सारा काम काज लक्ष्मणसिंह ही देखा करता था। लक्ष्मणसिंह और रतनसिंह के कुछ समय तक मालवा रहने का भी उल्लेख मिलता हैं। राणकपुर के लेख से प्रकट होता है कि गोगादेव को जो मालवे का शासक था इस लक्ष्मणसिंहने हराया था। उसे "भड़ लक्ष्मणसिंह" भी कहते हैं। अमर काव्य वंशावली में रत्नसिंह का वर्णन प्रस्तुत करते हुये किसी एक प्राचीन कवि द्वारा विरचित कुछ श्लोक प्रस्तुत किये हैं। जिनमें छंद भी भिन्न हैं। अल्लाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय उसका शासन काल अल्प कालीन ही था। इसी कारण पिछले कुछ लेखकों ने और भाटों की ख्यातों में कहीं २ इसका नाम राजवंशावलियों में छोड़ दिया है। लक्ष्मणसिंह को इसके स्थान

(७२) मेरा लेख "पदमणी री ऐतिहासिकता" मरवाणी मार्च १९६७

पर ही शासक माना है। इसके सम्बन्ध में जो सबसे बड़ी आपत्ति उठाई जाती है वह यह है कि इसका शासन अल्प कालीन था। अतएव इसके पद्मिनी के साथ विवाह करने जाने और राघवचेतन वाली घटनाएं भ्रमात्मक है। इन दोनों पर आगे यथा स्थान विचार करूंगा। लेकिन यह निसंदेह सत्य है कि यह कुछ समय तक मालवा अवश्य रहा था। राघवचेतन एक ऐतिहासिक पात्र है। रतनसिंह के शासन काल का एक शिलालेख भी दरीवा से मिल चुका है। इस लेख की तिथि विसं०१३५६ माघवदि ५ बुधवार है। यह तिथी अल्लाउद्दीन के चित्तौड़ आक्रमण के लिये प्रस्थान होने के ४ दिन पूर्व की है। अतएव आक्रमण के समय इसे ही शासक [73] माना जाना चाहिये।

अल्लाउद्दीन खिलजी का इस रतनसिंह के शासन काल में भीषण आक्रमण हुआ था। अमीर खुसरो जो उस काल का प्रख्यात लेखक था, इस आक्रमणकारी सेना के साथ उपस्थित था। इसने दिल्ली से सुल्तान के प्रयाण की तिथि २८/१/१३०३ और दुर्ग विजय की तिथि २६/८/१३०३ दी हैं। इसके अनुसार राजपूतों ने भी दृढ़ता से मुकाबला किया था। घेरा ६ माह तक रहा था। समसामयिक एक अन्य लेखक इसामी ने ८ माह तक घेरा डालने का उल्लेख किया है। खुसरो के अनुसार राजा भाग खड़ा हुआ था किन्तु पीछे शरण में आजाने से छोड दिया गया। वह लिखता है कि हिन्दुओं का विश्वास है कि पीतल के बरतन पर बिजली गिर जाती है। राजा डर गया था और उसका मुंह पीतल जैसा पीला हो गया था अतएव सुल्तान की तलवार रूपी बिजली उस पर गिर सकती थी किन्तु शरण में आजाने से बच गया। वहां ३०,००० हिन्दुओं को कत्ल करने की आज्ञा दी। खजाइन उल फतुह

(७३) "श्री मेदपाटमंडलेसमस्तराजवलिसमलंकृतमहाराजकुल श्रीरतनसिंहदेवकल्याणविजयराज्येतन्नियुक्त. महं. श्रीमहणसिंहसमस्तमुद्राव्यापारपंरिपंथयति". (दरीबे का लेख)

(७४) तारीख-इ-अलाई (इलियट डानसन का अनुवाद जिल्द ३) पृ. ७६-७७

में कुरान की एक कथा का भी प्रसंग है जो हजरत सुलेमान नवी से सम्वन्धित है इसमें "हुद हुद" नामक एक पक्षी का उल्लेख है जो शेवा की रानी की सूचना लाता था। इस कथा को यहां पद्मिनी का निर्देश देने को ही अंकित की गई प्रतीत होती है।(74A)

इन तवारीखों के वर्णन पर टिप्पणी करने के पूर्व यह भी स्मरण रखना अत्यन्त आवश्यक है कि इनमें घटनाओं का अत्यन्त संक्षिप्त विवरण दिया हुआ है। इन में सुल्तान के जैसलमेर मंडोर आदि के घेरे का वर्णन नहीं हैं। केवल मात्र कुछ पंक्तियों में उस आक्रमण का उल्लेख है। ये मुगल कालीन तवारीखों की तरह विस्तृत रूप से नहीं लिखी गई है। इनमें दैनिक घटनाओं का विवरण दिया हुआ नहीं है। साथ ही साथ ये सुल्तान पर आश्रित लेखक द्वारा लिखी गई है अतएव एक पक्षीय हैं।

विसं० १३९३ में जैन ग्रंथ नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रवन्ध लिखा गया था। इसमें प्रसंगवश सुल्तान के मेवाड़ विजय और चित्तौड़ के शासक को वंदी वनाने उल्लेख भी है[75]। इस वर्णन से यह ठीक प्रतीत होता है कि सुल्तान ने रतनसिंह को वंदी वनाकर अन्यस्थान पर अवश्य ले चला गया था। इससे परोक्ष रूप से सुल्तान के महल में राजा के आतिथ्य पाने और उसको वंदी वनाने की घटना की पुष्टि होती हैं। राजा को छूटने की घटना का उल्लेख फरिश्ता आदि ने भी किया है। फरिश्ता ने इस घटना की तिथि १३०४ AD अंकित की है। मेवाड़ की ख्यातें गोरा वादल चोपाई आदि के वृतान्त को मिलाने से प्रतीत होता है कि सुल्तान से छुडाने के लिये गोरा वादल ने प्रयत्न किया था और

७४ ए इंड़ियन हिस्टो रिकल क्वाटरली भाग ७ पृ० २९७/ जरनल आफ इंडियन हिस्ट्री १९२९ पृ २७० ७१/ राजस्थान थ्रू दी एजेज पृ० ६६४–६६५

(७५) श्रीचित्रकुट दुर्गेशं वद्धवा लात्वा च तद्धनम्।
कण्ठवद्ध कपिमिवा भ्रांमयत्तं च पुरे पुरे ॥३/४॥

राज को सकुशल वे लोग चित्तौड़ ले आये थे। सुल्तान ने इस वार अधिक भीषणता से आक्रमण किया। राजपूतों की साधन सामग्री दुर्ग पर पहले ही समाप्त हो चुकी थी। अतएव वे लोग अंन्तिम युद्ध के लिये तैयार हो गये। युद्ध में रतनसिंह की पहले मृत्यु हो गई और इसके पश्चात् लक्ष्मणसिंह अपने पुत्रों सहित काम आया[76]। सुल्तान ने इसके आसपास के नगरों के नागरिकों और पशुधन की हत्या करने के आदेश दिये।

राजपूतों के वीरता पूर्वक लड़ने का जो उल्लेख फारसी तवारीखों में है वह परोक्ष रूप से इस बात की साक्षी है कि सुल्तान की छोटे-मोटे युद्धों में राजपूतों के हाथ हार हुई थी। संभवतः रतनसिंह को सैनिक शिविर से मुक्ति दिलाने में भी इसी प्रकार के युद्ध की संभावना है। नागपुर संग्रहालय में एक गुहिल वंशियों का महत्वपूर्ण शिलालेख संग्रहित है। इसमें ४ राजाओं का उल्लेख है। विजयसिंह नामक एक शासक के लिये उल्लेखित किया है कि उसने चित्तौड़ की लड़ाई में दिल्ली के सुल्तान को हराया था (जो चित्तौड़हु जुझिअउ, जिण दिल्लीदलजिन्तु) यह समसामयिक शिलालेख महत्वपूर्ण है और इसे सुल्तान को किसी छोटे मोटे युद्ध में हराने का संकेत मान सकते हैं। चित्तौड़ से अल्लाउद्दीन के आक्रमण के समय बड़ीं मात्रा में लोग मालवा और दक्षिण भारत की ओर चले गये थे। चित्तौड़ में जैन कीर्तिस्तंभ के निर्माता शाह जीजा के वंशज भी इसी समय दक्षिण भारत गये थे। इसी प्रकार का उल्लेख मांडलगढ़ से मोहम्मद गोरी के अधिकार के बाद, श्री आशाधर के मालवा जाने का मिलता है।

अमीर खुसरो के वर्णन में, जैसा कि ऊपर उल्लेखित किया जा चुका है घटनाओं का संक्षिप्त विवरण मात्र है। अतएव उसके वर्णन को अन्य समसामयिक और प्रामाणिक सामग्री के साथ मिलाकरके पढ़ना

(७६) एक लिंग माहात्म्य राजवंश वर्णन श्लोक ७५-७६/कु०प्र० श्लोक ७७ से ८०

आवश्यक है । नागपुर का लेख, नाभिनन्दनजिनोद्धारप्रबन्ध, एकलिंग माहात्म्य और कुंभलगढ़ प्रशस्ति के वर्णन में राजपूत सामग्री को प्रस्तुत करने वाले कुछ संदर्भ हैं इन्हें उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता है ।

पद्मावत का वर्णन—मलिक मोहम्मद जायसी द्वारा विरचित पद्मावत के कतिपय वर्णन को लेकर समस्त पद्मिनी कथानक में बड़ी भ्रांति पैदा हो गई है । उदाहरणार्थ इसे सिंहल के राजा की पुत्री मानना आदि । इसी प्रकार इन्होंने अपने ग्रंथ में यह भी निर्देश दिया है कि यह ग्रंथ आध्यात्मिक प्रतीकों पर आधारित है । अतएव कई लेखकों ने इस कथानक को जायसी की कल्पना मात्र माना है । यह सत्य है कि पद्मावत एक काव्य ग्रंथ है । अतएव इसमें इतिहास के साथ २ कल्पना का होना संभावित है । इस ग्रंथ पर कई पूर्ववर्ती काव्यों का प्रभाव स्पष्ट है । अपभ्रंश के काव्य "करकण्डु चरिउ" में नायक के सिलोन जाकर विवाह करने और मार्ग में लोटते समय समुद्र में तुफान आजाने का उल्लेख है । जिणदत्त चरित, भविसयत कहा आदि में भी इसी प्रकार का वर्णन है । श्रीपाल चरित्र में समुद्र पार देशों की यात्रा में कई राजकुमारियों से विवाह का उल्लेख है । वस्तुतः मध्य कालीन कथाओं में यह वर्णन की एक परिपाटी मात्र थी । सोभाग्य से प्राकृत में लिखी "रयण सेहरी कहा" में भी इसी प्रकार[७७] का वर्णन है । यह कथा ग्रंथ चित्तौड़ में महाराणा कुंभा के शासन काल में लिखा गया था । इसकी नायिका भी पद्मिनी से मिलती हुई सिंहल द्वीप की राजकुमारी है । रयण सहरी में मंत्री जोगिन का वेश बनाकर जाता है जबकि पद्मावत में स्वयं राजा जाता है । दोनों के मिलने का स्थान भी देवालय है । दोनों चित्रकूट से सम्बन्धित है । रयण सेहरी का लेखक चित्तौड़ का रहने वाला है जबकि पद्मावत में नायक । पद्मावत पर चन्द्रावली आदि कथा ग्रंथों का भी प्रभाव है ।

(७७) डा० हीरालाल—भारतीय संस्कृति में जैनों का योगदान पृ० १४७–४८

अतएव पद्मिनी को सिलोन की राजकुमारी मानना गलत है। मध्य कालीन कथाकारों को जैसाकि उल्लेखित किया जा चुका है कि लंका जाकर नायक के विवाह करने का विषय प्रिय रहा है। इसके साथ ताल मेल विठाने के लिये कई विद्वान् सिंगोली को सिलोन मानते हैं जो सर्वथा अनुपयुक्त प्रतीत होता है। यह राजस्थान या मालवा के किसी भूभाग की राजकुमारी रही होगी।

एक प्रश्न यह भी उठता है कि रतनसिंह का शासन काल एक वर्ष का ही रहता है तब वह किस प्रकार पद्मनी को प्राप्त करने के लिए यह सारे प्रयास कर सकता है जैसे कि पद्मनी सम्बन्धी कथानकों में उल्लेखित हैं। अतएव इनसे यही कह सकते हैं कि कथानक में अधिक रस लाने के लिये इतिहास के साथ २ कल्पना की गई है। राजा के लङ्का जाने और विवाह करके लाने आदि की कथाएं गलत है।

राघव चेतन की ऐतिहासिकता

पद्मिनी कथानक का एक प्रमुख पात्र राघव चेतन है। यह पद्मिनी के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है और उसको प्राप्त करने के लिये बादशाह को प्रोत्साहित करता है। यह एक ऐतिहासिक व्यक्ति है। इसका दिल्ली दरबार में बड़ा सम्मान था। मोहम्मद तुगलक के समय के कई वृतान्तों में इसका उल्लेख है। जिनप्रभसूरिप्रबन्ध से पता चलता है कि यह उक्त बादशाह द्वारा वह सन्मानित था एवं कई विद्याओं में पारंगत था। मंत्र तंत्र एवं कई प्रकार की साधनायें भी जानता था। इसका उक्त जिनप्रभसूरि के साथ दिल्ली में तांत्रिक क्रिया करने का भी उल्लेख मिलता है। इसका कुछ अंश दृष्टव्य है।

इत्थ पत्थावे वाणारसीओ समागओ राघवचेयणो वंभणो चउदसविज्जापारगो मंत्रजंत्रजाणओ। सो आगंतूण मिलिओ भूवं।

---

(७८) रयणसेहरीकहा गाथा १४९–१५०। महाराणा कुम्भा पृ० २१३

साहिणा वहुमाणो कओ। सो निच्चमेव आगच्छइ रायसमीवे। एगया पत्थावे सहा उवविट्ठा। सूरि राघवचेयणपमुहा कहाविणोयं चिट्ठंति। तओ राघवचेयणेण चिन्तियं दुट्ठसहावं एयं जिणपहसूरिं दोसवंतं काऊण निवारयामि इत्थ ठाणाओ। एवं चिन्तिऊण साहिहत्थाओ अंगुलीयं विज्जावलेण अवहरिऊण जिणपहसूरिरयहरणमज्झे पक्खित्तं जहा सूरि न जाणइ।———साहिणं निवेइयं "इत्थ ममं मुद्दारयणं आसि केण गहियं ?" तओ राघवेण निवेइयं "साहि! एयस्स सूरिसमीवे अच्छइ"। सूरिं पइ साहि मग्गिउं लग्गो। सूरिणा भणियं" साहि एयस्स समीवे अच्छइ"————————अन्नया चउसट्ठिजोगिणी सावियारुवं काऊण सूरिसमीवे छलणत्थमागया। ता सामाइयं गहिऊण वक्खाणं निसुणंति। पउमावइए निवेइयं सुरिस्स "तुम्ह छलणत्थं एयाओ चउसट्ठिजोगिणिओ समागयाओ"

जैन प्रवन्धों से पता चलता है कि जिनप्रभसूरि भी मोहम्मद तुगलक से सन्मानित था। वि०सं० १४२२ में सम्यकत्त्व कौमुदी की विवृत्ति में जिसे गुणशेखर सूरि के शिष्य रुद्र पालीय गच्छ के संघ तिलक सूरि ने लिखी थी, प्रारंभ में जिनप्रभसूरि का उल्लेख करते हुये इसे वादशाह द्वारा सन्मानित वर्णित किया है। मोहम्मद तुगलक के राजत्वकाल में इन्होंने अपने कुछ ग्रंथ पूरे किये थे। कांगड़ा के राजा संसार चन्द्र की एक प्रशस्ति में राघव चेतन का उल्लेख है जहां भी इसे वादशाह मोहम्मद द्वारा सन्मानित होना वर्णित किया है। आमेर शास्त्र भण्डार में वुद्धि विलास नामक एक हस्तलिखित ग्रंथ है जिसका हाल ही में प्रकाशन भी हो गया है इसमें भी राघव चेतन सम्वन्धी एक महत्वपूर्ण संदर्भ है। इसमें भी इसे तुगलक वादशाहों के राज्य में एक प्रभाव शाली व्यक्ति वर्णित किया है। जैन साधु प्रभाचन्द्र के साथ इसके वाद-विवाद होने और योगिक चमत्कार सम्वन्धी घटनाओं का उल्लेख है जो पद्मावत में चित्तोड़ में राघव चेतन द्वारा चन्द्रमा वतलाने वाली घटना से मिलती हुई है। अतएव इन सवको दृष्टिगत रखते हुये यह मानना पड़ेगा कि राघव चेतन एक ऐतिहासिक व्यक्ति

है जो प्रारम्भ में चित्तौड़ में रहा था और वहां से ही दिल्ली गया प्रतीत होता है। दिल्ली में वादशाहों द्वारा सन्मानित होने से प्रकट होता है कि यह निश्चित रुप से एक प्रभाव शाली व्यक्ति था।

पद्मिनी कथानक की आलोचना

(१) इस कथानक की सबसे बड़ी आलोचना इस बात को ले करके हुई है कि इसका उल्लेख किसी भी समसामयिक शिलालेखों आदि में नहीं है। इस सम्बन्ध में निवेदन है कि १३ वीं शताब्दी के पूर्व के शिलालेखों में राणियों के नाम प्रायः बहुत ही कम आते हैं। मीरां का नाम भी शिलालेखों में नहीं है। हाड़ी करमेती जिसने चित्तौड़ के दूसरे शाके में युद्ध करके वीरगति प्राप्त की थी, का नाम भी नहीं के वरावर उल्लेखित है। पन्नाधाय का भी उल्लेख नहीं है। अतएव इस आधार पर सम्पूर्ण कथानक को काल्पनिक कह देना न्याय संगत नहीं है। लोगों में प्रचलित परम्परायें किसी आधार पर दृढ़ रहती है। पद्मिनी कथानक मध्य काल में ही सम्पूर्ण उत्तरी भारत में प्रचलित था अतएव इसे विल्कुल काल्पनिक नहीं कह सकते हैं। अमर काव्य में पद्मिनी के महलों का कई वार उल्लेख आया है। यह महाराणा सांगा द्वारा मोहम्मद खिलजी को वहां वन्दीं वनाकर रखने के प्रसंग में उल्लेख है।

(२) आधुनिक लेखकों में श्री कालिका रंजन कानूनगो[79] सबसे अधिक उल्लेखनीय है जिन्होंने इस कथानक को काल्पनिक वतलाते हुये कई भ्रमात्मक निर्णयों पर पहुंचे है यथा—(१) चित्तौड़ मेवाड़ का चित्तौड़ नहीं होकर यह इलाहावाद के आसपास कहीं स्थित है। (२) रत्नसेन भी प्रयाग के आसपास का राजा था। इनकी मान्यता का आधार श्री आर. सी. मजुमदार द्वारा उल्लेखित ;'रतनसेन कुलावली" नामक एक हस्त लिखित ग्रंथ है। इसमें लिखा है कि यह

(७९) स्टडीज इन राजपूत हिस्ट्री में छपा "ए क्रिटिकल एनेलेसिस आफ पदमिनी लिगेंड" दृष्टव्य है।

राजा मुसलमानों के साथ युद्ध करता हुआ मारा गया। ये कल्पनायें उनके दिमाग की अद्भुत सूझ प्रतीत होती है। एक ओर चित्तौड़ में रत्नसिंह के शासक होने का प्रमाण स्वरुप दरीवा का शिलालेख तक मौजुद है। इस शिलालेख को स्पष्टतः दृष्ठिगत नहीं रखते हुये इन्होंने रतनसेन के सम्बन्ध में कई प्रश्न उठाये है[79]। यथा—

(१) क्या यह रतनसेन चित्रसेन का पुत्र और पद्मिनी का पति (जायसी के अनुसार) था?

(२) क्या यह कुंभलगढ़ प्रशस्ति में वर्णित रावल समरसिंह का पुत्र था?

(३) क्या यह खेमा का पुत्र रत्ना था जो ढूंढाड़ का स्वामी था जो चित्तौड़ में आकर युद्ध में मरा था?

(४) क्या यह हमीर चौहान का पुत्र रतनसिंह था जिसे कि मड लक्मसी ने चित्तौड़ में आश्रय दिया था?

जैसा कि ऊपर उल्लेखित किया जा चुका है यह समरसिंह का दत्तक पुत्र था। अमर काव्य वंशावली में इसका वर्णन सविस्तार से दिया गया है। अतएव इस प्रकार के प्रश्नों के उठाने और कल्पना करने का प्रश्न ही नहीं है। न० ३ में रतनसिंह तो तलारक्ष मात्र था उसका राज्य वंश से कोई सम्बन्ध नहीं था। हमीर चौहान के वंशज गुजरात में गये थे जहां से उनके शिलालेख मिले है उनमें रतनसिंह का नाम नहीं है।

खजाइन उल फतुह में हुद हुद पक्षी का वृतान्त प्रस्तुत करते हुये आपने लिखा है कि श्री मोहम्मद हबीव ने अपने अनुवाद में इसे अवश्य पद्मिनी से सम्बन्वित माना है किन्तु लखनऊ विश्व विद्यालय के एक विद्वान वहीद मिर्जा से इस पद को इन्होंने स्पष्ट कराया तो उन्होंने ऐसा कोई संकेत होना नहीं माना है। प्रथम वात तो यह है कि वहीद मिर्जा सा० ही इसमें आखिरी निर्णायक नहीं माने जा सकते हैं। दूसरी वात यह है कि आपने यह स्पष्ट नहीं किया है कि आखिर

इसमें हुदहुद पक्षी वाली उक्त कथा के प्रसंग को देने की क्या आवश्यकता थी ?

मेवाड़ में पद्मिनी की कथा जायसी से ली ऐसा आपने माना है। जायसी के पूर्व इस कथा का कोई रूप नहीं था। इस सम्बन्ध में आपका निर्णय एक पक्षीय है। राजस्थान के जैन भण्डारों में इस सम्वन्ध विशाल साहित्य उपलब्ध है। छिताई चरित में जो जायसी के कई वर्ष पूर्व लिखा जा चुका था, पद्मिनी का उल्लेख है। इसमें अल्लाउद्दीन के चित्तौड़ से असफल लोटने का उल्लेख राघव चेतन से करने का वर्णन है। इससे कानूनगोजी का सारा आधार गलत साबित हो जाता है कि जायसी के पूर्व इसकी रचना ही नहीं थी। हेमरेतन के "गोरावादल चोपाई" के कथानक का आधार पद्मावत से बिल्कुल भिन्न है। अतएव इसे जायसी द्वारा ही विरचित मानना भूल है।

अवुलफज्ल और फरिश्ता द्वारा इस कथानक का जो उल्लेख किया गया है इस पर भी आप जायसी का प्रभाव मानते हैं। फरिश्ता ने दक्षिणी भारत में अपना ग्रंथ लिखा था अतएव कुछ कथानक में परिवर्तन आ सकता है किन्तु मेवाड़ की ख्यातों में ही जायसी से उक्त कथानक लेकर अवुल फज्ल को देना जो आपने वर्णित किया है वह भी कतई गलत है। अवुल फज्ल ने उस समय की प्रचलित सारी कथाओं को वड़ी कुशलता से अंकित किया है। फरिश्ता से इसका वर्णन विस्तृत है। इसने मेवाड़ की रानी का नाम स्पष्टतः पद्मिनी लिखा है।

इस प्रकार कानूनगोजी ने अपने तथ्यों को कल्पना के आधार पर खड़ा किया है।

(३) कुंभलगढ़ प्रशस्ति में प्रथम वार मेवाड़ का विस्तृत इतिहास लिखने का प्रयास किया गया था। इसमें पद्मिनी का उल्लेख नहीं किया है। इस सम्बन्ध में स्पष्ट है कि उक्त प्रशस्ति में राणियों के नाम नहीं दिये हुये हैं। सुल्तान को राणी का मुंह कांच में वतलाना

गोरा बादल द्वारा वापस राजा को धोखे से बन्दीगृह से मुक्ति दिलाना आदि घटनायें मध्यकालीन राजपूत-भावना के विरूद्ध है। उस युग में नारी की शुद्धि को कुल की शुद्धि माना है। इसी कारण बड़े २ जौहर हुये हैं। अतएव उक्त राजकीय प्रशस्ति के लेखक ने स्वेच्छा से ये सब अंश छोड़ दिये हैं। इसमें केवल यही अंकित है कि रतनसिंह के मरने के बाद लक्ष्मणसिंह ने दुर्ग की रक्षा का भार अपने कधों पर संभाला और लड़ता २ अपने पुत्रों सहित काम आया। रत्नसिंह के बन्दी होने का स्पष्टतः उल्लेख "नाभि नन्दन जिनोद्धार प्रबन्ध" में हैं। अतएव इसकी सत्यता में किसी प्रकार की शंका की गुंजाइश नहीं है।

अतएव इन सब प्रसंगों को दृष्टिगत रखते हुए हमें मानना पड़ेगा कि पद्मिनी अवश्य चित्तौड़ में ही हुई थी। इसके महल आज भी यथावत् विद्यमान हैं। इसका उल्लेख समसामयिक ग्रंथों में नहीं होने से इसे कल्पना नहीं मान सकते हैं। मेवाड़ की ऐतिहासिक साधन सामग्री दीर्घकालीन युद्ध के कारण बहुत अस्तव्यस्त हो चुकी है। अतएव वे संदर्भ भी कम महत्व के नहीं है।

खिज्रखां और मालदेव का शासनकाल

अल्लाउद्दीन के शाहजादे खिज्र्खां ने चित्तौड़ को लगभग १० वर्ष तक रक्खा था। इसके पश्चात् इसे मालदेव को सौंप दिया गया था। मालदेव जालौर का सोनगरा था। अल्लाउद्दीन ने जालौर वि.सं. १३६८ में जीता था अतएव यह दुर्ग इस संवत के बाद ही दिया गया प्रतीत होता है। हमीर ने दुर्ग इसके पुत्र या भाई से लिया था। हि.सं. ७०५ और ७०९ के दो शिलालेख चित्तौड़ दुर्ग से मिल चुके हैं। फरिश्ता मालदेव को चित्तौड़ हि.सं. ७०४ में देना लिखता है एक जगह हि.सं. ७११ में मलिक कफूर की दक्षिण विजय का वर्णन करते समय यहां के शासन का नाम खिज्र्खां दिया है। अतएव मालदेव को हि.सं. ७११ में चित्तौड़ दिया गया होगा।

मेडता से मालदेव की विसं. १३७६ भी एक ग्रंथ प्रशस्ति मिली है। अगर यह मालदेव और चित्तौड़ का मालदेव एक ही व्यक्ति हो तो उस का उक्त संवत तक जीवित रहना साबित होता हैं।

अध्याय २

अल्लाउद्दीन के आक्रमण के पश्चात् मेवाड़ में मुख्य शाखा के रावलों का राज्य समाप्त हो गया और शिशोदिया शाखा के राणाओं ने अपने पराक्रम से चित्तौड़ को हस्तगत किया जिनका वर्णन इस प्रकार है:—

महाराणा हमीर के चित्तौड़ विजय की तिथी

सुल्तान अल्लाउद्दीन खिलजी की मृत्यु ६ शव्वाल हि० सि० ७१६ (२०–१२–१३१६ ए०डी०) को सम्पन्न[1] हो गई। इसके पश्चात् ५ वर्ष तक कई शासक हुए एवं हि० स० ७२१ ता० १ शव्वान (२५-८-१३२१ ए.डी.) में सुल्तान गयासुद्दीन राजगद्दी पर बैठा। मलिक गयासुद्दीन के समय का चित्तौड़ में शिलालेख है इसमें मलिक असदुद्दीन का उल्लेख है। इसमें सवंत् का अंश और बादशाह का नाम टूट गया है। लेकिन इसमें तुगलक शाह शब्द स्पष्टतः वर्णित है। असदुद्दीन का नाम भी दिया गया है। तारीखे फिरोजशाही से ज्ञात होता है कि यह गयासुद्दीन[3] के समय नायब बारबक था। अतएव वह स्थान जहां से यह शिलालेख चित्तौड़ से मिला है इस असदुद्दीन का बनाया हुआ प्रतीत होता है। अतएव उक्त बादशाह के राज्यरोहण के पश्चात् हमीर ने राज्य लिया प्रतीत होता है। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर श्री ओझा ने वि० स० १३८३ में हमीर को चित्तौड़ का स्वामी होना वर्णित किया है[4]। लेकिन यह वर्णन सत्य नहीं है। कन्ड़ा के जैन मन्दिर में

---

(१) तारीख इ मुबारक शाही में यह तिथि २० मुहर्रम हि०स० ७१६ दी है।

(२) ओझा उ. इ. भाग १ पृ१६७

(३) इलियट-हिस्ट्री आफ इंडिया भाग ३ पृ.२३०

(४) ओझा उ. इ. पृ.१६८

वि०स० १३९२का एक शिलालेख उपलब्ध हैं । इसमें स्पष्टतः चित्रकूट के शासक पृथ्वीचन्द्र का नाम है और सिलहदार मोहम्मद देव, मालदेव के पुत्र बणवीर आदि का उल्लेख है अतः यह घटना इसके प्रश्चात् होना चाहिए[5] ।

हमीर के चित्तौड़ विजय की कथा

कनील टॉड की मान्यता है कि हमीर का विवाह मालदेव की विधवा पुत्री से हुआ था । वीर विनोद के कर्त्ता कविराजा श्यामलदास और गौरी शंकर हीराशंकर ओझा ने इस कथन को अत्युक्ति बतलाया है । उनका कहना है कि राजपूतों में विधवा विवाह का प्रचलन नहीं था । हमीर ने रानी के कहने पर मालदेव से जाल मेहता को मांग लिया जो चित्तौड़ में भी रहता था और साथ ही साथ हमीर के पास कार्य भी करता था । ऐसा कहते हैं कि एक दिन उसने रात्रि को किले में अपने साथ बड़ी सेना लेकर गया उसे विश्वस्त पुरूष समझकर किले के द्वार खोल दिये लेकिन उसने अपने साथ आये सैनिकों को लेकर किला जीत लिया । यह वृतान्त कहां तक सही है कुछ भी नहीं कहा जा सकता है । इसका मुख्य कारण यह है कि इन ख्यातों में यह घटना मालदेव के समय सम्पन्न हुई लिखी है जबकि उपरोक्त वृतान्त के अनुसार उसके पश्चात् यह दुर्ग हस्तगत किया गया था । इसके अतिरिक्त कविराजा श्यामलदास ने अपने वीर विनोद में हमीर की शादी जालौर में होना वर्णित की है जबकि उस समय वहां मुसलमानी हाकिम नियुक्त थें ।

---

(५) "संवत १३९२ पौष सुदि ७ रवौ श्रीचित्रकूटस्थानेमहाराजाधि-राजपृथ्वीचन्द्र श्रीमालदेव पुत्र बणवीर सत्कं-सिलहदार महमद-देव सुहडसिंह चउंडरा सत्कं-पुत्र दिवगतं तस्य सत्कं गोमट्ट कारापितं । नाहर जैन लेख संग्रह भाग १ पृ.२४२ । राजस्थान भारती सितम्बर १९६७ में छपा मेरा लेख " हमीर की चित्तौड़ विजय की तिथी" द्रष्टव्य है ।

(६) वी. वि. भाग १ पृ. २९४–९६ । ओझा उ. इ. पृ२०२

मोहम्मद तुगलक के साथ युद्ध

कर्नल टॉड ने हमीर का मोहम्मद खिलजी के साथ युद्ध करने का उल्लेख किया है। लेकिन यह मोहम्मद तुगलक था। सोनगरों से चित्तौड़ जीत लेने से वह नाराज हो गया और सभवतः आक्रमण भी किया हो। लेकिन इस कथन की पुष्टि नहीं होती है। हमीर के तुरूष्क सेना को जीतने का उल्लेख केवल मात्र वि. स. १४६५ की चित्तौड़ की प्रशस्ति में है[7]। इसमें भी किसी विशिष्ट राजा का उल्लेख नहीं किया है। संभवतः हमीर ने तरष्क सेना से लडाई की हो जो कि तुगलक बादशाहों की कुछ सेना होनी चाहिये जो उस समय निश्चत रूप से चित्तौड़ में विद्यमान होगी उससे युद्ध होना संभव है।

भीलों को जीतना

मेवाड के इतिहास में भीलों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। राणा प्रताप के साथ इनका सहयोग उल्लेख नीय रहा है और इसी कारण "भील" को मेवाड़ के राज्य चिन्ह तक में लिया गया है। महाराणा हमीर ने इन भीलों को सबसे पहले जीतकर इनके भू-भाग को अपने राज्य के अन्तर्गत किया प्रतीत होता है। महाराणा मोकल के शृंगी ऋषि के लेख में हमीर द्वारा भीलों को जीतने का उल्लेख है। इस समय में भील एक उल्लेखनीय जाति के रूप में हमारे सामने आती है। इनको मार्ग में आने जाने वाले यात्रियों से कर संगहित करने की छूट थी। वि. स. १४०५ में विरचित प्रद्युम्नचरित में इस सम्बन्ध में रोचक वृतान्त है[9]। इसमें उल्लेखित है कि पद्युम्न ने भील का वेष बनाया और मार्ग में जाती हुई राजकुमारी से मार्ग शुल्क मांगा। भीलों के तीरबाण लेकर और जंगल में निवास करने का भी उल्लेख मिलता है।

---

(७) तोरूष्कामितमुण्डमण्डलमियः संघट्टवाचालिता। वस्याद्यापि वदन्ति कीर्तिमभितः संग्राम सीमाभुवः।। ६।।

(८) शृंगी ऋषि का लेख श्लोक सं. ४

(९) प्रद्युम्न चरित पद सं. ३०००-३०३

वि. स. १४११ में विरचित श्रावकनावार व्रत कथा में भीलों के जंगल निवास का उल्लेख है[9]।

मालवे के सुलतान दिलावर खां का चित्तौड़ पर आक्रमण

मालवा के सुलतान दिलावर खां ने जिसे मेवाड़ की ख्यातों और शिला लेखों में अमीशाह के नाम से वर्णित किया है चित्तौड़ पर आक्रमण किया था। यह घटना महाराणा खेता के शासन काल में घटित हुई। साम्राज्य के लिये मालवा और चित्तौड़ वाला का संघर्ष बड़ा विख्यात है। इनमें यह आक्रमण संभवतः पहला आक्रमण है। कुंभलगढ़ एवं कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति में स्पष्टतः वर्णित है कि यवनों की सेना को चित्तौड़ के समीप हराकर उसे पाताल पहुँचाया। फारसी तवारीखों में इस युद्ध का वर्णन नहीं है। लेकिन मेवाड़ के लगभग सब शिलालेखों में इसका वर्णन होने से यह घटना सही प्रतीत होती है। वून्दी के हाड़ा महादेव के शिलालेख में वर्णित है कि उसने दिलावरखां पर तलवार का वार करके मेदपाट के स्वामी खेता की रक्षा की और सुलतान की सेना को हराकर मेवाड़ नरेश को विजय दिलाई। अतएव प्रतीत होता है कि वून्दी वालों ने भी इस अवसर पर महाराणा को सहायता दी थी[10]। शृंगी ऋषि के लेख से ज्ञात होता कि उसने असंख्य यवन सेना को नष्ट ही नहीं किया वल्कि उसका सारा का सारा खजाना लूट लिया।

महाराणा लाखा के समय गुजरात के सबेदार का आक्रमण

फारसी तवारीखों के अनुसार हि स० ७९८ (१३५६ ए.डी.) में गुजरात के सूवेदार जफर ने मेवाड़ पर आक्रमण किया था। यह आक्रमण

---

(९) प्राचीन गुजराती गद्यसंदर्भ पृ१०–११

(१०) येनानर्गलभल्लदीर्णहृदया श्रीचित्रकूटांतिके
तत्तत्सैनिकघोरवीरनिनदप्रध्वस्तधैर्योदिया
मन्ये यावनवाहिनी निजपरित्राणस्य हेतोरलं
भूनिक्षेपमिषेण भीपरवशा पातालमूलं ययौ ।। २२ ।। की० प्र०

मांडलगढ़ तक ही सीमित रहा था। इस आक्रमण के सम्बन्ध में विभिन्न फारसी लेखकों में मतैक्यता नहीं है। कहीं २ इसे मांडू भी लिखा है। उदाहरणार्थ याहिया सरहिन्दी द्वारा लिखित तारीख ए मुबारकशाही और मिरात इ सिकन्दरी में मांडू वर्णित है। जबकि तबकातइ अकबरी तारीख इ फरिश्ता आदि में मेवाड़ का मांडलगढ़ वर्णित है। वहां से सुल्तान अजमेर गया जहां से सांभर डीडवाना तक जाकर वापस देलवाडा (मेवाड़) और जीलवाड़ा को जीतता हुआ लोट गया[11]।

हंसाबाई का विवाह और चूंड़ा का त्याग

राव रणमल राठौड़ चूंड़ा का बेटा था। इसे उसके पिता चूंड़ा ने मंडोर से निष्कासित कर दिया था। यह अपने साथ अपनी बहिन हंसाबाई को भी लाया था। वह इसका विवाह राजकुमार चूंड़ा से करना चाहता था। उसने सगाई का दस्तूर लेकर महाराणा के पास भेजा। कहते हैं कि उस समय महाराणा ने हंसी में यह कह दिया कि सगाई के दस्तूर तो अब जवानों के ही आते हैं। इस बात को जब चूंड़ा ने श्रवण किया तो उसको विश्वास हो गया कि स्वयं महाराणा विवाह करना चाहते हैं। अतएव उसने स्पष्ट रूप से इनकार कर दिया और कहा कि आप ही इससे विवाह करलें[12]। महाराणा ने घटनाओं की गंभीरता को उसे समझाया किन्तु वह दृढ प्रतीज्ञ था। उसने स्पष्ट रुप से इन्कार कर दिया। इस पर रणमल ने कहा कि अगर हंसाबाई का पुत्र ही मेवाड़ का उत्तराधिकारी हो तो यह सम्बन्ध स्वीकार किया जा सकता है इस प्रकार से रणमल का मेवाड़ में आना हंसाबाई का विवाह महाराणा के साथ सम्पन्न हो जाने से घट-नाओं में बड़ा परिवर्तन आया। चूड़ा को पैतृक अधिकारी से वंचित

(११) तबकात इ अकबरी का अनुवाद भाग ३, पृ० ८६ एवं तारीख इ फरिश्ता भाग ४ पृ. १८० । राइज आफ मुस्लिम पावर इन गुजरात पृ. १४८

(१२) उ. इ. पृ. २६३

हो जाना पड़ा। एवं इसी के फलस्वरूप उसको बाहर भी जाना पड़ा। रणमल को अपनी शक्ति के उपयोग का अवसर हाथ आ गया किन्तु दुर्भाग्य से वह भी षड़यन्त्र का शिकार हो गया और चित्तौड़ में ही काम आया[13]।

महाराणा लाखा द्वारा गोड़वाड़ जीतना

महाराणा लाखा ने प्रथम बार गोड़वाड़ जीतकर मेवाड़ राज्य में मिलाया प्रतीत होता है। वि. सं. १४४३ तक यह भूभाग वणवीर चौहान के अधिकार में था। नाड़लाई से प्राप्त एक लेख में इसका स्पष्टतः उल्लेख है। इसके पश्चात् संभवतः लाखा ने गोड़वाड़ जीता था। लाखा का गोड़वाड़ से लेख कोट सोलंकियों का मिला है। यह वि. सं. १४७५ का है। अतएव प्रतीत होता है कि १४४४ से १४७५ के मध्य में लाखा ने उक्त प्रदेश विजित किया होगा[14]।

मोकल का नागौर के सुल्तान के साथ युद्ध

महाराणा मोकल और नागौर के सुल्तान के मध्य हुए युद्धों का वर्णन फारसी तवारीखों और मेवाड़ के शिलालेखों में भी मिलता है। यह एक उल्लेखनीय घटना है। मेवाड़ के शिलालेखों में सुल्तान के भाग जाने का उल्लेख है जबकि फारसी तवारीखों में मोकल के हारने का। यह युद्ध एक लम्बे समय तक चलता रहा प्रतीत होता है। वीर विनोद से अनुसार एक बार महाराण की हार और दूसरी बार विजय हुई। कुंभलगढ़ के लेख के अनुसार महाराणा ने फिरोज को उसके साथी महम्मदके सहित हराया था। यह महम्मद कायमखानी था। क्यामखां रासो के अनुसार इसने फिरोज को सहायता दी थी। ओझा जी ने इसे गुजरात के सुल्तान अहमदशाह माना है जो गलत है। मालवा और गुजरात में

(१३) वी. वि. भाग १ पृ. ३१२–३१३

(१४) मरु भारती सितम्बर १९६७ में प्रकाशित "गोड़वाड़ में मेवाड़ के राजाओं के शिलालेख" नामक मेरा लेख दृष्टव्य है।

उस समय लड़ाई जारी थी । १२ मुहरम हि. स. ८२६ या १६/१२ १४२२ ए. डी. में ये दोनों सेनाऐं सारंगपुर में लड़ चुकी थी । गुजरात के सुल्तान ने मालवा पर आक्रमण करके उक्त विजय प्राप्त की थी अतएव उस समय दोनों को संयुक्त मानना गलत है । क्यामखां रासौ में स्पष्टतः महम्मद का महाराणा मोकल के साथ युद्ध करने का उल्लेख है । संभवतः महाराणा फिरोज की शक्ति क्षीण नहीं कर सका था[15] ।

मेवाड़ की शक्ति का कमजोर होना

मोकल के अन्तिम दिनों मेवाड़ की शक्ति बड़ी कमजोर हो गई थी । सिरोही के राव और बूंदी के राजा दोनों मेवाड़ विरोधी हो गये थे । सिरोही वालों ने गोडवाड़ का इलाका दबाना शुरु कर दिया था और बून्दी वालों ने मांडलगढ़ तक का इलाका छीन लिया था । फिरोज ने भी अजमेर तक का भाग ले लिया था । मोकल के राज्य में भी भीषण फूट पड़ी हुई थी । स्वयं मोकल को भी इन्हीं षडयंत्रों का शिकार बन जाना पड़ा था । राव रणमल ने हंसाबाई के कान भर के चूंडा को देश निकाला दिलवा दिया । मेवाड़ की सेनाओं की सहायता से उसने मंडोर का राज्य जीत लिया था ।

गुजरात के सुल्तान का आक्रमण और षडयंत्रकारियों द्वारा मोकल की हत्या

तबकात इ अकबरी के अनुसार गुजरात के सुल्तान अहमदशाह ने मेवाड़ पर रज्जब हि.स. ८३६ (फरवरी । मार्च १४३२) में आक्रमण

(१५) आलोड्याशु सपादलक्षमखिलं जालंधरान् कंपयन्
ढिल्लीं शकितनायिकां व्यरचयन्नादायशाकंभरीं ।
पीरोजं समहमदं शरशतैरापात्य यः प्रोल्लसत्
कुंतव्रातनिपातदीर्णहृदयांस्तस्यावधीददंतिनः ।।२२१।। कु. प्र.

मोकल की वि० सं० १४८५ की चित्तौड़ की एवं शृंगी ऋषि की प्रशस्तियों में ऐसा ही वर्णन है । इसके विपरीत फारसी तवारीखों में राणा का हारना लिखा है ।

किया था। उस समय यहां का शासक महाराणा मोकल था। उसने सुल्तान से युद्ध करने की योजना बनाई किन्तु इसी बीच षड़यंत्र-कारियों ने उसकी हत्या करदी। षड़यंत्र का कारण अमर काव्य नामक हस्तलिखित ग्रन्थ में इस प्रकार दिया गया है कि एक बार कभी शिकार जाते समय महाराणा ने हाड़ा सरदार के साथ २ चाचा और मेरा नामक खेता के पासवानिये पुत्रों से किसी पेड़ का नाम पूछ लिया था। पेड़ का नाम पूछ लेने से उन लोगों ने सोचा कि हमारी माता का कुल खाती जाति का है जिनका पैसा लकड़ी का व्यवसाय है अतएव महाराणा हमारा तिरस्कार कर रहे हैं। एक दिन जब महाराणा गुजरात के सुल्तान से प्रत्याक्रमण की योजना बना रहे थे उस समय मंहपा पंवार, चाचा मेरा आदि ने उस पर आक्रमण किया। महाराणा कुम्भा सकुशल भाग गया। मोकल की वहीं मृत्यु हो गई। श्री हरविलास शारदा ने यह घटना नागौर नामक स्थान में सम्पन्न हुई वर्णित की है जो गलत है। यह चित्तौड़ की तलहटी के पास ही सम्पन्न हुई वर्णित की जाती है। गुजरात के सुल्तान का उद्देश्य संभवतः मेवाड़ लूटने का नहीं था बल्कि नागौर जाने का था। अतएव वह सीमा प्रान्त से होकर गया और लौटते समय देलवाड़ा के देव मन्दिर विनष्ट कर दिया। संभवतः एकलिंगजी का मन्दिर भी इसी समय इसने खंडित किया[16] प्रतीत होता है।

कुम्भा द्वारा राज्य विस्तार

महाराणा मोकल के अन्तिम दिनों की विषम स्थिति पर नियंत्रण पाने के लिये कुम्भा ने राघवदेव चूंडावत और रणमल की सहायता से अपने पिता के घातकों को मार कर विरोधियों से बदला लिया। इसके पश्चात् उसने राज्य विस्तार की ओर ध्यान दिया। हाडोती उस समय बड़ा महत्वपूर्ण क्षेत्र था। इसे मालवे के सुल्तान और मेवाड़ के राजा दोनों अपने २ प्रभाव में लाना चाहते थे। कुम्भा की नीति इस क्षेत्र में यही रही थी कि वह हाडाओं की बराबर रक्षा

(१६) मेरी पुस्तक महाराणा कुम्भा पृ. ६१–६२

करे और इस क्षेत्र को मालवे के सुल्तान के प्रभाव क्षेत्र में नहीं आने देवे। इसमें वह बराबर सफल रहा था। उसे २ बार बूंदी पर चढ़ाई भी करनी पड़ी थी। गागरोण का शासक प्रहलादसी खींची था। यह अचलदास का पुत्र था। इसकी सहायता कर दुर्ग इसे दिला दिया किन्तु वह अधिक समय तक नहीं रख सका। सुल्तान ने वि. सं. १५०० के आस पास इसे वापस जीत लिया। मआसिरे मोहम्मद शाही के अनुसार गोगराण हार के समाचार जब कुम्भा ने सुने तो उसने कहलाया कि सुल्तान इसे बहुत बड़ी विजय नहीं समझे। इतनी सी भूमि तो वह चारण भाटों को जागीर में ही दे देता है। रणथम्भोर और पूर्वी राजस्थान के अन्य भागों में भी मालवे के सुल्तान के साथ उसका संघर्ष जारी था। जानागढ़ को वि.सं. १५१२ के आसपास वापस जीत लिया। इस ससय नैंनवां टोंक आदि भाग पर भी बादशाह का अधिकार हो गया।

सपादलक्ष भूभाग में उसका संघर्ष नागौर के सुल्तान से बराबर चल रहा था। इस क्षेत्र में कुम्भा ने ४ वार आक्रमण किये थे। पहला आक्रमण वि. सं. १४९६ के पूर्व हुआ था। दूसरे और तीसरे आक्रमण वहां के उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर हुये थे। चौथा आक्रमण वि.सं. १५१५ में हुआ था। इस क्षेत्र में कुम्भा की नीति यही रही थी कि स्थानीय राजाओं को हराकर उन्हें करदाता बनाकर वापस अपने राज्य में ही पुनर्स्थापित कर देंवे। उसने उत्तर पूर्व में खण्डेला, तोरावटी तक और झूंझनू तक विजय किया प्रतीत होता है। सिरोही के सम्बन्ध में उसकी नीति स्पष्ट थी। आबू तक के भूभाग को उसने अपने राज्य में इस लिये मिला लिया था इससे वह गोड़वाड़ आदि भाग की रक्षा कर सके।[17]

सारंगपुर का युद्ध

कुंभा ने मालवा के गौरी वंशी सुल्तान मोहम्मद के पुत्र ऊमरखां को सहायता दी थी। उसने अपनी सेना मालवे में भेजकर

(१७) उपरोक्त का तीसरा और पांचवां अध्याय

सारंगपुर जीत लिया था उसी समय गुजरात के सुल्तान ने मालवे पर आक्रमण किया था किन्तु मोहम्मद खिजली की कूटनीति के कारण इन आक्रमणकारियों को विशेष सफलता नहीं मिली। लेकिन कुंभा को अपने राज्य को मन्दसौर तक अवश्य बढ़ाने का अवसर मिल गया था [18]।

मालवा और गुजरात के सुल्तानों के चित्तौड़ पर आक्रमण

मालवा और गुजरात के सुल्तानों के आक्रमण से मेवाड़ की रक्षा करना उस समय महाराणा कुंभा का मुख्य कार्य था। संगीत-राज में लिखा है कि उसने आदि वराह की तरह चित्तौड़ भूमि को तुरुष्क रूपी समुद्र में से बाहर निकाली [19]।' उसने अधिकांशतः रक्षात्मक आयोजन किया था। केवल वि. स. १४९४ में सारंगपुर और पूर्वी मालवा क्षेत्र में उसने आक्रमण कर कुछ सफलतायें प्राप्त की किन्तु उसे मालवा और गुजरात के सुल्तानों के निरन्तर आक्रमणों का सामना करना पड़ा। इन आक्रमणों का संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है।

हि. सं० ८४६ (१४४२) में सुल्तान मोहम्मद खिजली ने केलवाड़ा पर आक्रमण किया। वहां बाणमाता के मंदिर को नष्ट किया और समीप ही स्थित पांवन गांव को भी लूटा। इसके बाद वह चित्तौड़ की ओर बढ़ा। मासिर-इ-मोहम्मदशाही के अनुसार महाराणा ने खुले मैदान में लड़ने के स्थान पर पहाड़ों की शरण ली। सुल्तान को कोई सफलता नहीं मिली। कुंभा ने उसे मेवाड़ से बाहर निष्कासित कर दिया। मन्दसौर क्षेत्र में युद्ध जारी रहा। सुल्तान के पिता

(१८) शोधपत्रिका वर्ष १६ अंक १ मे प्रकाशित मेरा लेख का युद्ध। महाराणा कुम्भा पृ. ८३ से ८८

(१९) गर्जन्मदोक्तिसक्त-गजोर्मिमालं, तौरुष्कसैन्यार्णवमध्यमग्नाम्।
श्रीचित्रकूटावनिमुद्धरन्तं वारहमाद्यं यमिह स्तुन्वन्ति"
संगीतराज का पाठ्य रत्न कोश। १।१।२३

मुगीस हुमायूं की मृत्यु हो गई। अतएव वह घेरा उठाकर रवाना हो गया। इसी समय कुंभा ने भी ता० २५ जिलहिज हि. सं.८४६ (२६।४।१४४३ ई०) को रात्रि में आक्रमण किया। दोनों ओर लड़ाई जारी रही और सुल्तान को वाध्य होकर लोट जाना पड़ा। उसे कोई उल्लेखनीय सफलता नही मिली[20]।

मोहम्मद खिलजी ने जब देखा कि केन्द्रीय मेवाड़ को जीतना आसान नहीं है तो उसने गागरोन पर आक्रमण कर उसे विजित किया और मांडलगढ़ पर हि. सं. ८४७ और ८५० में असफल आक्रमण किये। उसके पश्चात् सुल्तान ने बयाना पर आक्रमण किया और लोटते समय ताजखां को ८००० सवार देकर चित्तौड़ जीतने भेजा। इसमें सुल्तान की सेना की बुरी तरह से पराजय हुई। इस प्रकार असफल होकर मालवे के सुल्तान ने हि. सं. ८५८ में फिर चित्तौड़ पर चढ़ाई की। उसने अपने पुत्र गयासुद्दीन को रणथंभोर की ओर भेजा और वह स्वयं चित्तौड़ की ओर बढ़ा। फारसी तवारीखों में वर्णित है कि कुंभा ने भारी संख्या में अपने नाम के सिक्के दिये जिसे सुल्तान ने अस्वीकार कर दिये। यह वर्णन एक पक्षीय है। इसमें सुल्तान को कोई सफलता नहीं मिली थी[21]।

कुंभा ने हि. सं. ८५९-६० (१५१२-१३) में नागोर पर चढ़ाई की थी। इससे अप्रसन्न होकर गुजरात के सुल्तान ने महाराणा कुंभा पर चढ़ाई की। यह आक्रमण हि. स. ८६० (१५१३ वि.) में सम्पन्न हुआ। मलिक शवान को आवू जीतने को भेजा लेकिन सफलता नहीं मिली। सुल्तान ने कुम्भलगढ़ के आस पास के क्षेत्र पर भीषण आक्रमण किया किन्तु विजय नहीं हो सकी। हि. स. ८६० में मालवा के सुल्तान ने मांडलगढ़ पर चढ़ाई की। क्षणिक सफलता मिली किन्तु कुम्भा ने इसे वापस जीत लिया। दोनों सुल्तानों के मध्य चाम्पानेर

(२०) महाराणा कुंभा-पृ. १२३-१२६। मिडिवल मालवा पृ. १७३-७४
(२१) उपरोक्त पृ. १३६

नामक स्थान पर एक संधि हुई जिसके अनुसार राणा के राज्य को बांट लेने की योजना थी। किन्तु उनको कोई सफलता नहीं मिली। गुजरात के सुल्तान ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था और फारसी तवारीखों में कई मण सोना ले जाने का उल्लेख है जबकि सम सामयिक प्रशस्तियों में इनको कुम्भा द्वारा हराने का वर्णन है [22]। इसके बाद मोहम्मद बेगाड़ा ने भी मेवाड़ पर आक्रमण किया था किन्तु इसे भी सफलता नहीं मिली। मालवे के सुल्तान का अन्तिम आक्रमण हि.सं. ८७१ में हुआ था। इस समय सुल्तान जावर होकर कुम्भलगढ़ गया और वहां से हारकर ता ११ शव्वान को चित्तौड़ पहुँचा। वहां भी उसे कोई सफलता नहीं मिली [23]।

कुम्भा की हत्या

महाराणा कुम्भा की हत्या उसके ज्येष्ठ पुत्र ऊदा ने वि. सं. १५२५ में कुम्भलगढ़ में की थी। इसमें खेमा देवलिया का हाथ स्पष्टतः दिखाई देता है। दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में स्पष्टतः यह अङ्कित है कि वह ऊदा की तरफ से रायमल से लड़ा था। कहा जाता है कि अन्तिम दिनों में कुम्भा को उन्माद रोग हो गया था और वह वहकी २ बातें किया करता था। उसके द्वारा जीते हुए भाग को उसकी कमजोरी देखकर पड़ोसी राज्य वापस हस्तगत करने लग गये थे। वि. सं. १५२४ के आसपास नैनवां से आगे बढ़कर अल्लाउद्दीन ने टोंक पर भी अधिकार कर लिया। इसी प्रकार वि.सं. १५२५ में आबू भी उसकी मृत्यु के बाद मेवाड़ से जा चुका था।

ऊदा से राज्य हस्तगत करना

महाराणा ऊदा ने अपने पिता की हत्या करके चित्तौड़ का राज्य प्राप्त किया था। अतएव सब सरदार उससे अप्रसन्न थे। इन लोगों ने समय देखकर रायमल को अपने सुसराल ईडर से बुला लिया। इसने

(२२) महाराणा कुम्भा पृ. १४८
(२३) उक्त पृ. १४६

एक बड़ी सेना लेकर मेवाड़ पर आक्रमण किया। मेवाड़ के कई सरदार उससे आ मिले। खेमा देवलिया जो कुम्भा के समय से ही उसका विरोधी था ऊदा के साथ रहा। दाड़िमपुर के भीषण युद्ध में खेमा की मृत्यु हो गई। इसके पश्चात् ऊदा अपने साथियों सहित कुम्भलगढ़ दुर्ग में जा छिपा। कहते हैं कि उसके साथी भी लड़ते २ तंग आ गये थे और उसका साथ छोड़कर भाग रहे थे। एक दिन उनमें से कुछ ने उसको शिकार का वहाना करके किले से वाहर ले गये पीछे से उसके शेष साथियों ने किले के द्वार वन्द कर दिये। इससे वह भीतर प्रवेश नहीं पा सका। रायमल ने इस प्रकार[२४] कुम्भलगढ़ दुर्ग भी जीत लिया। अव ऊदा के लिये मेवाड़ में कोई भी सुरक्षित स्थान नहीं वचा जहां वह रह सके। जिस राजलिप्सा के फलस्वरूप उसने अपने पिता का वध किया था वह पूरी नहीं हो सकी। यह घटना वि. सं. १५३० के आस-पास सम्पन्न हुई।

मालवे के सुल्तान गयासुद्दीन खिलजी का आक्रमण

ऊदा रायमल से हार करके मांडू चला गया। उसके साथ उसके पुत्र सूरजमल और सहसमल भी थे। मालवे के सुल्तान ने उसे आश्रय दिया और सहायता का आश्वासन भी। कहा जाता है कि इसके वदले में उसने अपनी पुत्री का विवाह सुल्तान के साथ कर देने का वादा किया। लेकिन ज्योंही वह लौट करके वाहर आया त्योंहि उसके ऊपर विजली गिरी और तत्काल वहीं पर मर गया। नैणसी इसके विरुद्ध यह लिखता है कि वह कुछ काल तक सोजत में रहा और अन्त में वीकानेर जाकर के मरा।

सुल्तान गयासुद्दीन ने ऊदा के परिवार वालों को राज्य दिलाने को वि. सं. १५३० में आक्रमण किया। इस आक्रमण का उल्लेख फारसी तवारिखों में नहीं मिलता है। किन्तु दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में इसका उल्लेख होने से विश्वास किया जाता है कि यह घटना नहीं

(२४) दक्षिण द्वार की प्रशस्ति श्लोक ६४ से ६६।

थी। सुल्तान पहले डूंगरपुर गया। इसके मेवाड़ में संभवतः २ बार आक्रमण हुए थे। पहली बार उसने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था। रायमल दुर्ग से बाहर आ गया और मुसलमानी सेना पर घातक आक्रमण किया। इस युद्ध में गौरी वंशी एक राजपूत योद्धा ने बड़ी बहादुरी दिखाई [25]। इसने मालवे के सुल्तान को कई बार युद्ध में हराया। उसकी मृत्यु हो जाने के पश्चात् चित्तौड़ में इसकी स्मृति में एक शिखर भी बनाया [26]। सुल्तान की सेना से राजपूतों ने कई भीषण युद्ध किये।

सुल्तान नसीरुद्दीन का चित्तौड़ पर आक्रमण

गयासुद्दीन के पुत्र नसीरुद्दीन और सुजातखां में परस्पर झगड़ा था। सुजातखां इसे मारना चाहता था। फरिश्ता के अनुसार इसने आपसी विद्रोहों से मुक्ति पाकर हि. सं. ९०८ (१५५९ वि.) में खिलजीपुर पर आक्रमण किया और हि. सं. ९०९ (वि. १५६०) में चित्तौड़ पर आक्रमण किया और भारी रकम लेकर [27] लौटा जो वर्णन भी अतिशयोक्ति पूर्ण ही है।

---

(२५) यंत्रायंत्रि हलाहलि प्रविचलद्दन्तावलव्याकुलं
वल्गद्वाजिबलक्रमेलकुलं विस्फारवीरारवम्
तन्वानं तुमुलं महासिहतिभिः श्रीचित्रकूटे गल-
द्गर्वं ग्यासशकेश्वरं व्यरचयत् श्रीराजमल्लो नृपः ॥६८॥
(उपरोक्त)

(२६) मन्ये श्रीचित्रकूटाचलशिखरशिरोध्यासमासाद्य सद्यो
यद्योधो गौरसंज्ञो सुविदितमहिमा प्रापदुच्चैर्नभस्तत् ।
प्रध्वस्तानेकजाग्रच्छकविगलदसृक्पूरसंपर्कदोषं
निःशेषीकर्त्तुं भिच्छुर्व्रजति सुरसरिद्वारिणि स्नातुकामः ॥७१॥
(उपरोक्त)

(२७) ब्रिग्ज फरिश्ता जिल्द ४ पृ. २४३। उ. इ. पृ. ३३०

रायमल के पुत्रों में विवाद

रायमल के पृथ्वीराज, जयमल और सांगा नामक ३पुत्र थे। तीनों महान् शक्ति शाली थे। इनके साथ इनका चाचा सारंगदेव भी था। एक दिन तीनों अपने २ भविष्य को जानने के लिये देवी के मन्दिर में गये। वहां चारणी ने सांगा को महाराणा होने का संकेत दिया। इस पर पृथ्वीराज ने वहीं तलवार लेकर उस पर वार कर दिया किन्तु सारंगदेव के बीच बचाव के कारण बच गया। केवल मात्र सांगा की एक आंख जाती रही। वह तेजी से भाग खड़ा हुआ। जयमल ने पीछा किया। चार भुजा के पास सेवंत्री ग्राम में राठौड़ बीदा जो रूपनारायण के दर्शन करके वापस जा रहा था जब सांगा को देखा तो ठहराया और घाव पोछे। इस पर जयमल भी आ पहुंचा। उसने बीदा को कहा कि सांगा को मुझे सौंप दो। उसने स्पष्टतः इन्कार कर दिया और सांगा को भाग जाने को कहा। बीदा खुद लड़ता २ काम आया। सांगा कुछ दिनों इधर उधर रहने के बाद अजमेर के पंवार कर्मचन्द के यहां (२९) जा पहुंचा एवं छद्म वेश में रहने लगा। इसी बीच तारा देवी के मामले में जयमल को सोलंकियों ने मार दिया। पृथ्वीराज भी सिरोही से कुंभलगढ़ आते समय जहर की गोलियां खा लेने से मृत्यु को प्राप्त हुआ। अब सांगा छद्मवेश हटाकर अपने आश्रयदाता कर्मचन्द की सहायता से वापस महाराणा रायमल के पास आ गया। इसको राजगद्दी वि. सं. १५६६ ज्येष्ठ सुदी ३ को दी गई थी। इसका जन्म १५३९ वि. में हुआ मानते हैं।

गुजरात के सुल्तान से युद्ध

ईडर के रावभाण के २ पुत्र सूर्यमल और भीम थे। भाण के बाद सूर्यमल गद्दी पर बैठा। किन्तु १८ महिना राज्य करने के पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। इसके पश्चात् उसका पुत्र रायमल शासक बना।

---

(२८) ब्रिग्ज—फरिश्ता जिल्द ४ पृ. २४

(२९) ओझा—उ. इ. भाग १ पृ. ३३१-३३

किन्तु उसके काका भीम ने उसको हटा दिया और स्वयं शासक बन गया। इससे रायमल की सहायतार्थ महाराणा सांगा गया। वहां के सुल्तान मुजफ्फर ने अप्रसन्न होकर हि. सं ९२० (वि. सं. १५७१) में रायमल के विरुद्ध निजामुल्मुल्क को भेजा जिसने ईडर को जा घेरा और रायमल को भागने को वाध्य होना पड़ा। किन्तु वह मुसलमानी हाकिमों को शान्ति से नहीं बैठने देता था। हमेशा इधर लूटमार किया करता था। उसने महाराणा सांगा से सारा समाचार लिखकर भेजा। इसी बीच एक घटना ऐसी घटी जिससे महाराणा सांगा को गुजरात और ईडर पर आक्रमण करना पड़ा। कहते है कि एक भाट निजामुल्मुल्क के पास ईडर में आया और उसके समक्ष महाराणा सांगा की प्रशंसा करने लगा। इस पर उसने कहा कि देखें वह कुत्ता कैसे रायमल की रक्षा करता है। इस घटना को भाट ने ज्यों की त्यों महाराणा को कह सुनाई। उसने बड़ी विशाल सेना लेकर गुजरात पर आक्रमण किया। बागड़ का राजा उदयसिंह भी विशाल सेना लेकर महाराण के साथ हो गया। मेडता का सरदार वीरमदेव भी आ गया। महाराणा के आने का समाचार जब निजामुल्मुल्क को मिला तो उसने गुजरात के सुल्तान को स्थिति से अवगत करा सहायता की मांग की। किन्तु उसके मंत्री उसके विरुद्ध थे। अतएव वात को टालते रहे। उसको भागकर अहमदनगर के दुर्ग में शरण लेनी पड़ी। महाराणा ने ईडर की गद्दी पर रायमल को बैठा दिया और अहमदनगर को जा घेरा। उस समय डूंगरसिंह के पुत्र कान्हा ने अपना शरीर लोहे के किवाडों को लगाकर सहायता की। यह घटना ऊंठाले के किले की घटना की स्मृति दिलाती है। राजपूतों ने किले में घुसकर मुसलमानों को मोत के घाट उतारना शुरु किया। निजामुल्मुल्क भी किले के पीछे के द्वार से भाग निकला। भागते समय वह भाट सामने आया और पुरानी वात का स्मरण दिलाया

---

(३०) बेले-हि. गु. पृ ३० । ब्रिग्ज—फरिश्ता जिल्द ४ पृ ८३ । वी. वि. भाग २ पृ....

(३१) महाराणा सांगा पृ. ७३ । उ. इ. पृ. ३५०

ओर कहा कि महाराणा सांगा आ गये है अब तुम क्यों भागते हो ? इस पर वह किले के बाहर खड़ी सेना में मिलकर लड़ने लगा किन्तु सफलता नहीं मिली। महाराणा ने अहमदनगर को लूटा। आगे बढ़कर बड़नगर को जीत लिया किन्तु वहां के ब्राह्मणों द्वारा क्षमा और अभय-दान चाहने पर उसको नहीं लूटा। आगे बढ़कर बीसलनगर को लूटा और भारी माल लेकर चित्तौड़ लौटा।

इब्राहीम लोदी के साथ युद्ध

पूर्वी राजस्थान में महाराणा कुंभा के समय से ही युद्ध चल रहा था। वहां राज्य विस्तार के लिये कई शक्तियां लड़ रही थी। इब्राहीम लोदी ने गद्दी पर बैठते ही वि. सं. १५७४ में मेवाड़ की ओर कूच किया। महाराणा ने भी सामना किया। खातौली गांव (हाड़ोती) के पास दोनों सेनाओं की मुठ भेड हुई। एक पहर युद्ध के बाद ही सुल्तान की सेना भाग खड़ी हुई। राजपूत ख्यातों के अनुसार महाराणा का एक हाथ और एक पांव इस युद्ध में जाता रहा[32]। इस युद्ध में मुसलमानों को भी भारी क्षति हुई।

इस युद्ध का बदला लेने के लिये सुल्तान चित्तौड़ की ओर वि. १५७५ में बढ़ा। तारीख इ सलातीन-इ-अफगाना के अनुसार इस युद्ध में मियां हुसेनखां जराबख्श मियां खानाखाना फारमुली मियां मासुफ आदि कई अफसर उसके साथ थे। हुसेनखां एक हजार सवार लेकर राणा से जा मिला। मुसलमानों की सेना बुरी तरह से हारी और भागने को बाध्य हो गई (33)। मियां हुसेनखां ने फिर माखनखां आदि सेनापतियों के साथ होकर एकाएक आक्रमण किया इससे राजपूत सेना

---

(३२) वी. वि. पृ. ३५३,। शारदा-महाराणा सांगा पृ. ५६। ओझा उ. द. पृ. ३५१।

(३३) तारीख इ सलातीन इ अफगाना (इलियट और डोन्सन का इतिहास भाग ५ पृ. १६-२०)—अमर काव्य वंशावली नामक हस्तलिखित ग्रन्थ में दिल्लीश्वरादि नृपेभ्यो गृहीत्वा पृथिवीं बलात्" वर्णित है।

को भारी क्षति पहुंची। राणा भी घायल हुआ और उसे सैनिक उठाकर सुरक्षित स्थान में ले गये । वाकीयात इ-दाउदी में धोखे का उल्लेख नहीं है। संम्भवतः इसमें विजय सांगा की ही हुई थी क्यों कि मालवा का बहुत सा भाग जिसमें चन्देरी आदि सम्मिलित है इसी युद्ध के पश्चात् उसे मिला था ([34]) ।

मालवा के सुल्तान के साथ युद्ध

मालवा का सुल्तान मोहम्मद खिलजी II बड़ा उदंड स्वभाव का था और इसी कारण अधिकांश सरदार उससे अप्रसन्न थे। उसके छोटे भाई को मुहाफिज खां की अध्यक्षता में सरदारों ने मालवे का सुल्तान घोषित कर दिया किन्तु मेदनीराय नामक बलवान राजपूत ने उनकी नहीं चलने दी [35]। इस पर विद्रोहियों ने सुल्तान के कान उसके विरुद्ध भरने शुरू कर दिये। मालवे का सुल्तान डरने लगा और भाग कर गुजरात के सुल्तान की शरण में चला गया। मेदनीराय ही उस समय सारी सत्ता सुल्तान के नाम से चलाता रहा। गुजरात का सुल्तान एक बड़ी सेना लेकर मोहम्मद खिलजी II को सिंहासन पर बिठाने को आया। मेदनी–राय महाराणा सांगा से सहायता प्राप्त करने को गया। इस बीच गुजरात के सुल्तान ने मालवा वापस लेकर मोहम्मद खिलजी II को मांडू में प्रतिष्ठापित कर दिया। अतएव सांगा सांरगपुर से ही वापस लौट गया। मेदनीराय को उसने चन्देरी गागरोण आदि का भू भाग दिया। ([36])

मालवे के सुल्तान ने हि० स० ९२५ (१५७५ वि०) में गागरोण आदि भू भाग पर चढ़ाई कर दी। इस समय गुजरात की सेना भी

---

(३४) वाकीयात इ दाऊदी–इलियट और डोन्सन का इतिहास भाग ४ पृ. ४६८ डा. गोपीनाथ–मे. मु. पृ. १३-१४।

(३५) ब्रिग्ज–फरिश्ता भाग ४ पृ २४६–२५६। मिडिवल मालवा पृ. २६७–२९२।

(३६) ओझा–उ०इ० पृ० ३५४। मिडिवल मालवा पृ. २९६

उसके साथ थी [37]। राणा भी चित्तौड़ से एक वड़ी सेना लेकर रवाना हुआ। इसमें मेड़ता का राव वीरम देव भी सम्मिलित था। इस प्रकार महाराणा की सेना ५०,००० के लगभग हो गई थी। इस युद्ध में गुजरात का सेनापति आसफखां जो मोहम्मद खिलजी की तरफ से लड़ रहा था बुरी तरह से घायल हुआ और उस का पुत्र भी मारा गया। मोहम्मद खिलजी II भी बुरी तरह से घायल हुआ। महाराणा उसे वन्दी [38] वना चित्तौड़ ले गया और वहां घावों की मरहमपट्टी कराई। कुछ दिनों वाद उसे आधा राज्य देकर वापस मालवा भिजवा दिया। उससे रत्नजटित मुकुट और करधनी ले ली [39]। इस घटना की पुष्टि वैशाख वदि १२ वि. स. १५७६ के एक ताम्रपत्र से भी होती है। इसके अनुसार सुलतान को पकड़ने के लिये चूंडावतों ने वड़ा योगदान दिया था। इसी विजय को चिरस्थायी करने क लिये १०० वीघा भूमि हरदास को दान दी थी [40]। फारसी तवारीखों में सुल्तान को वंदी वनाकर छोड़ने का उल्लेख मिलता है। मिरोत सिकन्दरी में ऐसा ही उल्लेख है। मिराते अहमदी में सुल्तान के कई वार वन्दी वनाकर राणा द्वारा छोड़ देने का उल्लेख है। नैणसी ने २ वार वन्दी वनाने का उल्लेख किया है। लेकिन आधुनिक इतिहासकार एक वार ही मानते है [41]।

गुजरात के सुल्तान का मेवाड़ पर आक्रमण

गुजरात के सुल्तान मुजफ्फरशाह ने महाराणा सांगा के गुजरात आक्रमण का वदला लेने के लिये एक विशाल सेना तैयार की। अपने सिपाहियों की तनख्वाह वढ़ा दी। हि. सं. ९२७ मुहर्रम पोष सुदी

---

(३७) व्रिग्ज–फरिश्ता भाग ४ पृ. २६०–६१। वेले–हि. गु. पृ २६३। मिडिवल मालवा पृ–२६८

(३८) वेले. हि. गु. पृ. २६४। व्रिग्ज फरिश्ता भाग ४ पृ. २६३। मिडिवल मालवा पृ–३००–३०१

(३९) डा० गोपीनाथ–मे. मु. पृ १६

(४०) डा. गोपीनाथ शर्मा-मे. मु. पृ. १५ का फुटनोट।

(४१) मिड़िवल मालवा पृ. ३०१ फु० नो० १

वि. सं. १५७७ में १ लाख सवार, १०० हाथी और एक वड़ा तोपखाना लेकर मलिक अयाज को भेजा[42]। २०हजार सैनिक और २० हाथियों की एक अन्य सेना किवामुल्मुल्क की अध्यक्षता में भेजी। इस सेना ने डूंगरपुर वांसवाडा एवं मन्दसौर को घेर लिया। मालवे का सुल्तान भी एक वड़ी फौज लेकर मदद करने को आया। महाराणा भी चित्तौड़ से विशाल सेना लेकर आ पहुंचा। महाराणा की सहातार्थ मेदनी राय की फौज और रायसेन के तंवर राजा सिलहदी की फौज आ पहुंची किन्तु गुजरात की सेना ने युद्ध नहीं किया। मोहम्मद खिलजी और गुजराती सेना का एक अन्य सेनापति किवामुल्मुल्क भी लड़ना नहीं चाहते थे। अतएव संधि करली। मलिक अयाज की कायरता से गुजरात के सुल्तान ने उसके साथ वड़ा रूखा वर्ताव किया[43]।

बाबर के साथ युद्ध

इब्राहीम लोदी के पतन के पश्चात् भी बाबर को अफगानों और राणा सांगा से अभी युद्ध करना अवशेष था। उसकी इच्छा पहले अफगानों से लड़ने की थी किन्तु सांगा की बढ़ती हुई शक्ति से भयभीत होकर उसने पहले उससे युद्ध करने की तैयारी करना शुरु किया। सांगा ने उस क्षेत्र पर अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया था जिस पर पहले इब्राहीम लोदी का अधिकार था। उसने रणथंभोर के पास स्थित खण्डार को जीत लिया और बयाना की तरफ वढ़ा[44]। वहां वावर ने निजामखां के स्थान पर महदी ख्वाजा को भेज दिया था। राणा के खंडार विजय कर लेने से वावर भी संशकित हो गया। दोनों ही सेनाओं की मुठभेड़ सवसे पहले वयाना नामक स्थान पर हुई। यह घटना १६फरवरी १५२७ ई०के लगभग सम्पन्न हुई। इस युद्ध के पश्चात् दोनों सेनाओं की मुठभेड़ खानवा के ऐतिहासिक मैदान में हुई। वावर ने

(४२) वेले हि. गु. पृ. २७१-७२

(४३) उपरोक्त पृ. २७४

(४४) वेवरीज–मेमोयर्स आफ वावर भाग २ पृ. ४८३

अपने ग्रन्थ तुजके बावरी में राजपूतों की सेना की संख्या २,०१,००० दी है[45]। बावर के पास भी ५०-६० हजार के लगभग सेना थी। यह युद्ध १७ मार्च १५२७ को ६॥ बजे करीब शुरु हुआ। बावर को बड़ा डर था। उसने विशाल तैयारी की थी। तुजके बावरी से पता चलता है कि फरवरी, १५२७ को तैयारी करते समय शराब न पीने की उसने शोगन्द ली। दाढ़ी न कटवाने की प्रतिज्ञा की। अपने सैनिकों के सामने जोशीले भाषण भी दिये। राजपूत सूत्रों के अनुसार उसने संधि की बातचीत भी चलाई किन्तु रायसेन के सरदार सिलहदी ने यह बात नहीं जमने दी। युद्ध में प्रारम्भ में राजपूतों की विजय हो रही थी। किन्तु मुगल सेना के गोलों की मार से राजपूत संभल नहीं सके। इसी समय राणा के एक तीर लगा और वह घायल हो गया। कुछ सरदार उसे उठा ले गयें। इसके पश्चात् युद्ध को जारी रखने के लिये चूड़ावत रत्नसिंह को प्रधान बनाना चाहा जिसके लिये वह इन्कार हो गया। इससे झाला अज्जा को इस कार्य के लिये नियुक्त किया किन्तु गोलों की मार से राजपूतों की हार हो गई। कई बड़े २ सरदार काम आये। बावर ने राजपूतों के शव एकत्रित करके विजय की खुशी मनाई।

इस युद्ध से राजपूतों को बड़ा धक्का लगा। मेवाड़ की जो शक्ति बढ़ी हुई थी उस पर भी आघात लगा। वि. सं. १५८५ में राणा सांगा की मृत्यु हो गई (46)।

रतनसिंह का बावर से सहायता प्राप्त करने का प्रयास करना

महाराणा रतनसिंह सांगा के बाद मेवाड़ का स्वामी हुआ। उसके

(४५)" तत्र निलक्षाश्वपतिर्महीक्षित्साङ्गाभिधानोऽस्तिभूमिशास्ता" कहकर शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार प्रबन्ध में सांगा के पास २ लाख सेना वर्णित की है।

(४६) शोध पत्रिका उदयपुर भाग ७ अंक २-३ में श्री रामचन्द्र तिवाड़ी का लेख महाराणा सांगा की निधन तिथि।

शासनकाल की सबसे उल्लेखनीय घटना हाडाओं से युद्ध करना है। महाराणा सांगा की एक राणी कर्मवती हाडा वंश की थी। उसके २ पुत्र थे (१) विक्रमादित्य और (२) उदयसिंह। ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण रतनसिंह ही मेवाड़ का शासक बन सकता था। अतएव उसने सांगा से रणथंभोर के किले को उनकी जागीर में करा लिया और उसके भाई सूरजमल को उसका सहायक। यह बात रतनसिंह को बहुत अखरती थी। इसके अतिरिक्त बहुमूल्य मुकुट और कमर पेटी जो मालवे के सुल्तान से छीनी थी विक्रमादित्य के पास थी जिसे भी वह लेना चाहता था। इधर हाडा और कर्मवती मिलकर के एक षड़यंत्र रच कर के विक्रमादित्य को शासक बनाना चाह रहे थे। इसके लिए बाबर से भी सहायता मांग रहे थे। बाबर ने तुजके बाबरी में इस संबन्ध में लिखा है कि हि. सं. ९३५ ता. १४ मुहरम् (२८ वि. १५२८) को सांगा के दूसरे पुत्र विक्रमाजीत उसकी माता पद्मावती (कर्मवती) के कुछ सम्बन्धी अशोक के साथ मेरे पास सहायता के लिये आये [47]। उस समय यह शर्त तय हुई थी कि राणा रणथंभोर का किला उसे सौपेगें। उसके बदले में वह बयाना उसे दे देगा। उसके अतिरिक्त सुल्तान मोहम्मद से लिया हुआ सोने का मुकुट और रत्नजटित कमर पेटी भी उसके पास थी। वह भी उसे दे देने का वायदा किया। यह रत्नजटित कमर पेटी और सोने का मुकुट मूलरूप से गुजरात के सुल्तान के थे। ये हि. सं. ८५६ (१४५२ ए. डी.) में सम्पन्न सुरेचा के युद्ध में मालवे के सुल्तान के हाथ लगे थे। ये मालवे के सुल्तान मोहम्मद खिलजी के साथ हुए युद्ध में राणा सांगा के हाथ लगे थे। बाबर ने बयाना के स्थान पर शम्साबाद देना स्वीकार किया। इसके पश्चात् हि. सं ९३५ की ५ सफर (१९ अक्टूबर, १५२८) को पुनः बाबर के पास विक्रमादित्य के राजपूत देवा का पुत्र हेमसी पुनः गया। जिसने इस पर जोर दिया कि संधि की शर्तों में कुछ परिवर्तन किया जावे।

(४७) वीर विनोद में वर्णित है कि महाराणा ने कर्मवती से कमरपेटी और सोने का मुकुट मांगा और उनको चित्तोड़ आने को कहा। जिसको उन्होंने अस्वीकार कर लिया (वी० वि० भाग २ पृ. ४

मालवे के सुल्तान का आक्रमण

मालवे का सुल्तान मोहम्मद खिलजी अपना खोया हुआ प्रदेश वापस प्राप्त करना चाहता था। उसके सामंत सलहदी जो रायसेन का था और सिकन्दरखां के पुत्र मुईनखां जो सीवास का जागीरदार था महाराजा के पक्ष में थे। अतएव उसने सारंगपुर होते हुए मेवाड़ पर आक्रमण किया। महाराणा भी मंदसोर से सारंगपुर जा पहुँचा। इस पर मालवे का सेनापति शरजखां लौट गया। इसी अवसर पर गुजरात के सुल्तान ने भी मालवे पर आक्रमण किया। वह उसके भाई चांदखां को उसके पास आश्रय देने के कारण अप्रसन्न था। इसी अवसर पर मेवाड़ के महाराणा ने गुजरात के सुल्तान को सहायता दी। अपने सरदार सिलहदी सहित महाराणा बहादुरशाह से मिला तो उसने ३० हाथी और कई घोड़े और १५०० खिलअतें दी। महाराणा के इस प्रकार मिल जाने से मालवा का सुल्तान बहुत हताश हुआ। गुजरात के सुल्तान ने अन्त में मालवा पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया और मोहम्मद खिलजी को वन्दी बना लिया।[48]

थोड़े दिनों बाद महाराणा रत्नसिंह को बून्दी राव सूरजमल ने शिकार के समय मार दिया।

---

(४८) बेले—हि.गु.पृ.३४६। ब्रिग्ज–फरिश्ता जिल्द ४ पृ. २६५। व.ई.पृ. ३६९।

अध्याय ३

महाराणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् जो मेवाड़ का दबदबा था वह कम होने लग गया था। रतनसिंह ने यद्यपि अपने पूर्वजों की तरह उत्साह दिखाकर राजपूती आन की रक्षा अवश्य की थी किन्तु उसके असामयिक निधन से मेवाड़ को बड़ा धक्का लगा।

गुजरात के सुल्तान के आक्रमण

गुजरात का सुल्तान बहादुरशाह बहुत ही महत्वाकांक्षी था। वह मुजफ्फर शाह का बेटा था। इसके ७ भाई और थे। सबसे बड़ा सिकन्दर शाह था जिसे सुल्तान बहुत चाहता था। बहादुरशाह को शेखजिऊ नामक एक संत ने गुजरात के सुल्तान होने का आशीर्वाद दिया था। उसने उक्त संत से यह भी आशीर्वाद चाहा था कि मैं चित्तौड़ को भी नष्ट करना चाहता हूँ। इस पर उसने कहा कि चित्तौड़ का विनाश तेरे विनाश के साथ होगा।

फारसी तवारीखों से पता चलता है कि बहादुरशाह भाग कर महाराणा सांगा की शरण में आगया था। महाराणा ने उसे बड़े ही सम्मान के साथ रक्खा। कहते हैं कि एक दिन महाराणा के एक भतीजे ने उसकी दावत दी जिसमें नृत्य का भी आयोजन किया गया। नर्तकी अहमदनगर के काजी की लड़की थी जिसे राणा सांगा के आक्रमण के समय बंदी बनाया गया था जब बहादुरशाह को इसकी जानकारी दी गई तो वह बहुत अप्रसन्न हुआ और तलवार निकाल कर महाराणा के भतीजे को वहीं समाप्त कर दिया। इस पर आसपास बैठे हुए राजपूत भी एकत्रित हो गये और बहादुरशाह पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगे। इस पर महाराणा सांगा की रानी हाथ में कटार लेकर आई और

बोली कि अगर मेरे बेटे बहादुरशाह को मारेगा तो में कटार खाकर मर जऊंगी। इस पर राजपूतों ने उसे वहीं छोड़ दिया [1]।

शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार प्रबन्ध में लिखा हैं कि बहादुरशाह जब चित्तौड़ में रहता था तब कर्माशाह से एक लाख रुपया इस शर्त पर कर्ज लिया कि जब वह गुजरात का सुल्तान बनेगा तब कर्मशाह को शत्रुञ्जय के जीर्णोद्धार की स्वीकृति दे देगा। इससे भी इस बात की पुष्टि होती है कि बहादुरशाह लम्बे समय तक चित्तौड़ में रहा था [2]। कुछ दिनों बाद गुजरात का सुल्तान मुजफ्फरशाह मर गया और उसके पश्चात् सिकन्दरशाह सुल्तान बना किन्तु उसे भी मार दिया गया। इमादुलमुल्क ने नासिरशाह को सुल्तान बनाया किन्तु जब यह समाचार बहादुरशाह को चित्तौड़ में मिले तो वह गुजरात चला गया और वहां का सुल्तान बन गया। उसके भाई चांदखां ने जो उसके साथ चित्तौड़ में था मालवे के सुल्तान के पास जाकर शरण ले ली।

राणा सांगा और रत्नसिंह के मरने के बाद बहादुरशाह को अपनी इच्छा पूर्ति का अवसर हाथ लगा। मेवाड़ में विक्रमादित्य महाराणा बना था। उसके स्वभाव के कारण कई सरदार उससे रुष्ट थे जिनमें सांगा का भतीजा नरसिंह देव भी था। ये लोग भी बहादुरशाह को मेवाड़ पर आक्रमण करने को प्रोत्साहित कर रहे थे [3]।

युद्ध का तात्कालीक कारण यह था कि जब बहादुरशाह ने रायसेन पर आक्रमण किया तब महाराणा ने रायसेन वालों की सहायता के लिये सेना भेज दी थी। सुल्तान ने रायसेन को जीतकर चित्तौड़

---

(१) बेले–हि. गु. पृ. ३००-३०६। उ. इ. पृ. ३६२–६३

(२) शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार प्रबन्ध पृ. ५४। वंशावलीराणा जीनी पत्र १४ (अ) सूर्यवंश पत्र ६३ (ब) जी. एन. शर्मा–मे. मु. पृ. ४४ के फुटनोट १० में उल्लेखित।

(३) वी. वि. भाग २ पृ. २७ ओझा–उ. इ. पृ. ३९५। डा. गोपीनाथ मे. मु. पृ. ४३।

जीतने की तैयारी की । वि. सं. १५८६ में एक विशाल सेना लेकर मोहम्मद असीरी को आक्रमण करने को भेजा [4] । मांडू से भी सहायता भेजने को लिखा गया । जब यह सेना मन्दसोर पहुंची उस समय ही राणा ने संधि की बात चीत शुरू करदी किन्तु इसे नहीं माना और चित्तौड़ की ओर बढ़ना शुरू किया [5] । महाराणा की मां हाडी करमेती ने हुमायूं के पास राखी भेजकर सहायता भी चाही थी किन्तु कोई फल नहीं निकला । बहादुरशाह की सेना ५ रज्जब हि. सं. ६३६ (माघ सुदी ६ वि. सं. १५८६) को चित्तौड़ जा पहुंची । किले पर आक्रमण करने की योजना बनाई । चारों ओर कुशल सेनापतियों को नियुक्त किया गया । अलफखां को लाखोटा की बारी पर तातारखां व मेदनीराय को हनुमान पोल पर मल्लूखां और सिकन्दरखां को सफेद बुर्ज पर नियुक्त किया [6] । उसके इस प्रकार के आक्रमण की योजना से भयभीत होकर महाराणा की मां करमेती ने संधि का प्रस्ताव भेजा कुछ समय के लिये संधि हो गई जिसके फलस्वरूप मालवा का जीता हुआ भाग व जड़ाऊ मुकुट और कमरपेटी देनी पड़ी । सुल्तान चित्तौड़ से २७ शब्वान हि. सं. ६३६ (चैत्र वदी १४ सं. १५८६) को वापस लौट गया ।

कुछ समय पश्चात् ही बहादुरशाह फिर चित्तौड़ की ओर आक्रमण करने को रवाना हुआ । इस युद्ध का कारण क्या था ? फारसी तवारीखों में वर्णित है कि सुल्तान का हुमायूं से झगड़ा हो चुका था । उसने उसके विद्रोही मोहम्मद जामनखां को शरण दी थी । अतएव

---

(४) बेले–हि. गु.–पृ. ३६६–६७

(५) उपरोक्त पृ. ३६६–७० । डा. गोपीनाथ–मे. मु. पृ. ४४ । रावल राणां जी की बात पत्र ८४ (ब) में लोइद में युद्ध होना और राणा का हारना वर्णित है (उपरोक्त पृ. ४६ फुटनोट १७ में उल्लेखित)

(६) बेले हि. गु. पृ. ३७०–७१) ओझा–उ. इ. पृ. ३६६ । डा. गोपीनाथ मे. मु. पृ. ४५–४६ ।

चित्तौड़ जैसा सुदृढ़ दुर्ग वह अपने अधिकार में रखकर हुमायूं के मार्ग को रोकना चाहता था [7]। मेवाड़ की ख्यातों में लिखा हैं कि महाराणा से रुष्ट जागीरदार बहादुरशाह को चित्तौड़ पर आक्रमण करने को प्रोत्साहित कर रहे थे [8]। वस्तुतः सुल्तान की हार्दिक इच्छा चित्तौड़ जीतने की थी। उसके सब मोर्चों से वह परिचित था। अतएव यह आक्रमण भी उसकी महत्वाकांक्षा की पूर्ति मात्र था।

जैसा कि ऊपर अंकित है बयाना के मोहम्मद जामिदखां को शरण देने के कारण हुमायूं भी गुजरात पर तेजी से अक्रमण करने जा रहा था। बहादुरशाह यह चाहता था कि उसका हुसायूं के साथ युद्ध चित्तौड़ के युद्ध के पश्चात हो तो ठीक हैं। अतएव उसने कहयाया कि वह हिन्दुओं के विरुद्ध युद्ध (धर्म युद्ध) में लग रहा है। अतएव वह इसके पश्चात् युद्ध करें। हुमायूं को सदरखां ने उस समय युद्ध न करने की सलाह दी थी। वह सारंगपुर या ग्वालियर तक बढ़ आया था। राणा की माता को स्थिति की भयंकरता का पता था अतएव उसने सब सरदारों को मार्मिक वचनों में पत्र लिखा और तुरन्त सहायता की प्रार्थना की। सब सरदार एकत्रित हुए जिनमें बून्दी का हाडा अर्जुन, देवलिया का रावत बाघसिंह, रावतसत्ता, सोलंकी भैरवदास आदि मुख्य थे। यह निश्चय किया गया कि राणा के प्रतिनिधि के रूप में बाघसिंह को नियुक्त किया जावे। रावल राणाजी की बात के अनुसार सरदारों को नियुक्त इस प्रकार की गई—बाघसिंह भैरोपोल, सौलंकी भैरोदास और झालासज्जा को क्रमशः हनुमान पोल और गणेश पोल पर, अर्जुन हाडा को बीकाखोह पर एवं अन्य में से कुछ को लाखोटा बारी और कुछ को सूरजपोल पर। सुल्तान ने सेनापति रूमीखाँ को यह आश्वासन दिया था कि जब वह चित्तौड़ जीत लेगा तो उसे जागीर में दे देगा। अतएव उसने भारी तोपखाने की सहायता से राजपूतों पर आक्रमण करना शुरु कर दिया। सब से पहले उसने बीकाखोह के आसपास ३० गज

(७) बेले—हि. गु. भू. ३८१ ब्रिग्ज फरिश्ता भाग ४ पृ. १२४—१२५।
(८) वी. वि. भाग २ पृ. २७। ओझा उ. इ. पृ. ३९७।

दीवार को उड़ा दी थी। इसमें ५०० राजपूतों की मृत्यु हो गई। इनमें अर्जुन हाडा भी एक था। लेकिन वह अन्दर नही जा सका। अतएव उसने अपना लक्ष्य अन्य स्थान पर साधा। राजपूतों ने भी मुख्य द्वार खोल देना ही ठीक समझा। इसमें कई मुख्य २ राजपूत काम आये। वाघसिंह भेरोपोल पर काम आया जहां आज भी उसकी छत्री विद्यमान है। इनके अतिरिक्त मरने वालों में सोलंकी भेरोदास, झालासज्जा, रावतदूदा पुरोहित नारायणदास आदि थे। गढ़ के भीतर १३,००० स्त्रियों को लेकर राणी कर्मवती सती हो गई। इस युद्ध से मेवाड़ की शक्ति को वड़ा धक्का लगा। ३२,००० से भी अधिक राजपूत इस युद्ध में काम आ गये। यह चित्तौड़ का दूसरा शाका के नाम ने प्रसिद्ध है। वहादुरशाह ८ मार्च, १९३५ को किले में एक विजेता के रूप में घुसा। लेकिन हुमायूं के आक्रमण के कारण उसे शीघ्र ही उससे युद्ध के लिये तैयारी करनी पड़ी। उसने वहारन उलमुल्क को वहीं छोड़कर गुजरात की रक्षा के निमित हुमायूं से लड़ने के निमित मन्दसौर की ओर यात्रा की।

हुमायूं की चित्तौड़ के युद्ध में सहायता न देना भयंकर भूल साबित होती है। श्री वनर्जी ने इस प्रकार सहायता नहीं देने से कई लाभ होना वर्णित किया है। किन्तु हम कह सकते हैं कि हुमायूं ने राजपूतों की सहायता नहीं करके एक भंयकर भूल की थी जिसके लिये उसे भविष्य में पछताना पड़ा (१०)। चित्तौड़ राज्य उस समय उत्तर भारत की मुख्य शक्तियों में था। उसे आधीनता में लाने के लिये अकवर अपने सारे मन्सूवों को लेकर स्वर्ग सिधार गया था। जहांगीर ने वड़े परिश्रम से इसे आधीन किया था। अगर हुमायूं सहायता कर देता

(९) वी. वि. भाग २ पृ. ३१। ओझा–उ. इ. पृ. ३९७–९८। डा. गोपीनाथ–मे. मु. पृ. ४९ का फुटनोट २७

(१०) डा. वनर्जी–हुमायूं पृ. ११८–११९। डा. गोपीनाथ–मे. मु. पृ. ४७–४८ का फुटनोट २१। श्री रामशर्मा–रिलिजियस पालिसी आफ मुगल्स पृ. १०।

तो स्थिति में बड़ा परिवर्तन आ सकता था । बहादुरशाह का चित्तौड़ पर अल्पकालीन अधिकार ही रहा था। सम्भवतः हुमायूं के साथ उसे युद्ध में व्यस्थ देखकर मेवाड़ वालों ने चित्तौड़ वापस हस्तगत कर लिया क्योंकि हुमायूं चित्तौड़ में जब अपने भाई अस्करी से निपटने के लिये ८ जून, १६३६ ई० को आया उस समय यहां मेवाड़ वालों का ही राज्य होना पाया जाता है। अतएव प्रतीत होता है कि बहादुरशाह के जाते ही राणा का वापस चित्तौड़ पर अधिकार हो गया (11)।

चित्तौड़ राजवंश में पुनः फूट और गृह युद्ध

राणा सांगा की मृत्यु होते ही जो फूट चित्तौड़ के राजघराने में घुसी थी वह बढ़ती ही गई। राणा विक्रमादित्य के वर्ताव से तंग आकर कई सरदार उसके विरोधी हो गये थे । कुछ सामन्तों ने बणवीर के नेतृत्व में विक्रमादित्य को मार कर राजसत्ता उससे छीन ली। बणवीर ने विक्रमादित्य को मारते ही शीघ्र ही पन्ना दाई के मकान में प्रवेश किया और उदयसिंह को मांगा। दाई को सारी जानकारी इससे पूर्व ही हो चुकी थी। अतएव स्वामी की रक्षा के निमित्त अपने पुत्र की बलि दे दी [12]। उदयसिंह को सुरक्षित स्थान पर ले जाया गया एवं कुंभलगढ़ के दुर्गपाल आशादेपुरा (माहेश्वरी) को सौंप दिया। एक वर्ष के पश्चात् ही इसकी सूचना सब सरदारों को मिल गई। कोठारिया सरदार रावत-खान बणवीर के विरुद्ध होकर कुंभलगढ़ में उदयसिंह के पास चला गया। इसके पश्चात बागोर के ठाकुर सांगा भी इसका सहायक हो गया [13]। डा० गोपीनाथ शर्मा को वि. सं. १५९४ कार्तिक के २ ताम्रपत्र मिले हैं। जिनसे महाराणा उदयसिंह के कुंभलगढ़ में रहने की पुष्टि होती है [14]। क्योंकि ये ताम्रपत्र वहीं से जारी किये गये थे। इसकी चित्तोड़

---

(११) बनर्जी–हुमायूं पृ. १६८। डा. गोपीनाथ–मे. मु. पृ. ५१।

(१२) वी. वि. भाग २ पृ. ३३ ओझा उ. इ. पृ. ४०१।

(१३) ओझा उ. इ. पृ. ४०३।

(१४) डा. गोपीनाथ शर्मा-मे. मु. पृ. ५४–फुटनोट ४।

विजय वि. सं. १५९७–१५९८ में सम्पन्न हुई होगी । इसकी पुष्टि वि. सं. १५९७ के एक ताम्रपत्र से होती है जिसे डा. गोपीनाथ शर्मा ने अपने उल्लेखनीय ग्रंथ मेवाड़ एण्ड मुगल एम्परर्स में वर्णित किया है। अमरकाव्य वंशावली में १५९७ संवत दिया है। उसमें "वर्षेसप्तनवत-याख्येगते पंचदशे शते उदयसिंहः महार्वलैयुतः चित्रकूटे प्रविष्टः" वर्णित है जिससे भी इसकी पुष्टि होती है [15] । पाटन भंडार में स्थानंग सूत्र की प्रशस्ति सं. १५९७ वर्षे आसाढ सुदी १० (श्रावणांत) की है इसमें चित्तौड़ में वणवीर को शासक माना है। अतएव उदयसिंह इसके बाद जीत सका होगा [16] ।

शेरशाह सूर का आक्रमण

तारीख इ शेरशाही के अनुसार मालदेव राठौड़ पर शेरशाह ने हि. सं. ९५० (१५४४ ई. और १६०० वि.) में बेशुमार फौज लेकर आक्रमण किया था। राव भी ५०,००० फौज लेकर अजमेर तक आया था। शेरशाह ने एक जाली पत्र लिखकर राव के केम्प के पास डलवा दिया जिससे सशंकित होकर वह जोधपुर की तरफ भागने लगा। जैंता-रण के पास दोनों सेनाओं में उल्लेखनीय युद्ध हुआ । राठौड़ भागकर जोधपुर की तरफ चले गये। शेरशाह ने जोधपुर जीतकर वहां का शासक ख्वाशखां को मुकर्रर कर दिया। इसके पश्चात् वह चित्तौड़ की तरफ बढ़ा। जहाजपुर के पास पहुँचते ही राणा ने दुर्ग की चावियां शेरशाह को भिजवा दी। उसने शम्सखां को वहां का हाकिम नियुक्त किया [17]। यह नाम मात्र का ही था। वस्तुतः सम्पूर्ण अधिकार महाराणा

(१५) अमर काव्य वंशावली पत्र ३३ उपरोक्त पृ, ५५ में उल्लेखित ।

(१६) सं. १५९७ वर्षे आषाढ सुदी १० सोमे श्री चित्रकूट वास्तव्य महाराजाधिराज श्री वणवीर विजयराज्ये........(प्रशस्ति संग्रह-श्री अमृतलाल शाह पृ. ९६१) ।

(१७) कानूनगो–शेरशाह पृ. ३२९–३३२ । डा. गोपीनाथ–मे. मु. पृ. ५५–५६ ।

को ही प्राप्त थे। संभवतः यह कर वसूली करता रहा हो। यह अधिकार बहुत ही क्षणिक था क्योंकि स्वय मालदेव ने १-२ वर्ष के पश्चात् ही जोधपुर वापस ले लिया। लगभग इसी समय ही चितौड़ से भी शेरशाह के प्रतिनिधि को हटा दिया गया। इसकी पुष्टि टोड़ा से प्राप्त एक शिलालेख से भी होती है जिसमें चित्तौड़ के महाराणा को एक स्वतन्त्र शासक के रूप में उल्लेखित किया है[१८]।

उदयपुर बसाना

महाराणा उदयसिंह के शासन काल की मुख्य उल्लेखनीय घटना उदयपुर नगर बसाना है। यह नगर बहुत ही महत्व पूर्ण है और इसके बसने से चित्तोड़ से राजधानी हटाकर यहां स्थापित की गई है। यह पहाड़ों में होने से अधिक सुरक्षित स्थान है किन्तु यह मन्दसौर रामपुरा आदि मालवा के भाग जो दीर्घकाल तक मेवाड़ में थे दूर होने के कारण मेवाड़ सरकार को उदयपुर से इनकी व्यवस्था करने में कठिनाई बनी रही।

अकबर का चित्तौड़ पर आक्रमण

अकबर हुमायूं का पुत्र था। उसने अपने राज्य को स्थायीरूप से जमाने के लिये राजपूतों से मेल करना शुरु किया। वह भारत में मुगल राज्य के विकास और एक राज्य की नीति में विश्वास करता था। मेवाड़ ही उस समय ऐसा राज्य था जिसने बाबर से संघर्ष लिया था अतएव उससे युद्ध कर अपने आधीन बनाने से अन्य राजपूत राज्य स्वतः अधीन हो जाने की उसे आशा थी। निजामुद्दीन और बदायुंनी इस आक्रमण का कारण मालवे शासक बाज बहादुर को राणा द्वारा शरण देना लिखा है। अबुलफजल इस आक्रमण का कारण महाराणा को अभिमान का दंड देना लिखता है। डा. गोपीनाथ शर्मा के अनुसार

(१८) विश्वम्भरा सितम्बर १९६७ में प्रकाशित मेरा लेख "टोड़ा के सोलंकी द्रष्टव्य है"।

चित्तौड़ आक्रमण से पूर्व सिर्फ आमेर के कछावा वंश ने ही अकबर से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये थे और मेडता पर अधिकार मात्र किया था ([19])। चित्तौड़ विजय (१५६७ ई) के पश्चात् सुर्जनहाडा (१५६९ में) जोधपुर का राजा उदयसिंह (१५७०) वीकानेर का रायसिंह (१५७०) आदि राजाओं ने भी अकवर की आधीनता स्वीकार करली थी। अतएव अकवर के चित्तौड़ पर आक्रमण करने से उसका यह अनुभव सही निकला कि राजस्थान की अन्य रियासतें भी उसकी मित्र हो जावेगी। दूसरा कारण अकवर के विद्रोही जयमल वाज वहादुर आदि आकर के मेवाड़ में एकत्रित हो रहे थे ([20])। तीसरा कारण अकवर को गुजरात विजय करने के लिये मेवाड़ को जीतना आवश्यक था।

युद्ध का तात्कालिक कारण सम्भवतः शक्ति सिंह का अकवर की शरण में जाना और वहां से भाग आना प्रतीत होता है [21]। तारीख २५ सफर हि. सं. ९७५ (३१-८-१५६७) को मालवा पर चढ़ाई करते समय वाड़ी नामक स्थान पर अकवर डेरा डाला हुआ था। उस समय उसकी शरण में उदयसिंह का पुत्र शक्तिसिंह पहुंचा। अकवर ने उसे विनोद में ही कह दिया कि कि मैं भी उदयसिंह पर चढ़ाई करने जाने वाला हूं ? क्या तुम मेरी इसमें सहायता करोगे ? शक्तिसिंह को जव यह मालूम हुआ तो वह वहुत शर्मिन्दा हुआ। उसने मन में सोचा कि मेवाड़ में लोग उसको यही कहेगें कि वह अकबर को चढ़ा लाया है। अतएव वह रात को विना सूचना दिये

---

(१९) डा. गोपीनाथ—मे. मु. पृ. ५८—६०।

(२०) जयमल को कठारिया जागीर में दिया था। "श्री धर्मदत्तनृपकथा" की प्रशस्ति में इसका स्पष्टतः उल्लेख है :—
"संवत् १६२३ वर्षे माघ मासे कृष्ण पक्षे चतुर्थीतिथौ सोमवारे श्री कोठारिया नगरमध्ये राष्ट्रकूट श्री जयमलजी राज्ये........"
प्रशस्ति संग्रह—अंतमृलाल शाह पृ. ११३

(२१) वी. वि. भाग २ पृ. ७३—७४। ओझा उ. इ. पृ. ४१२।

ही भाग गया। अकबर इससे बहुत ही अप्रसन्न हुआ और मालवा जाने का अपना विचार छोड़कर सीधा चित्तौड़ की तरफ बढ़ा।

शक्तिसिंह सीधा भागकर चित्तौड़ आया। उसने उदयसिंह को सारी स्थिति से परिचित कराया। उसने अपने मुख्य सरदारों को बुलाया। दवावेत उदयसिंह जी नामक ग्रथ में इनके नाम ये दिये हैं जगमाल विक्रम देवोत, सांईदास चूंडावत, ईसरदास चौहान, राव बल्लू सोलंकी, राव संग्रामसिंह, साहिबखान, रावत पत्ता, जयमल वीरमदेवोत आदि। इन सबने यह निश्चय किया कि अकबर की सेना बहुत विशाल है और मेवाड़ महाराणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् गुजरात के सुल्तान के साथ हुए युद्धों में बहुत ही कमजोर हो चुका है। अतएव अधिक अच्छा तो यह है कि महाराणा अपने परिवार के साथ कहीं सुरक्षित स्थान पर चले जावे उनके स्थान पर जयमल वीरमदेवोत और पत्ता सिसोदिया को दुर्ग का रक्षक नियुक्त कर लिया जाय [22]। महाराणा रावत नैतसी जो कानोड वालों का पूर्वज था के साथ पहाड़ों में चला गया। किले की रक्षार्थ सिर्फ ८००० सैनिक ही रहे। शिशोद वंशावली में १२००० सैनिक लिखे हैं जो संभवतः गलत है क्योंकि फारसी तवारीखों में ५००० ही वर्णित है [23]। महाराणा के दुर्ग छोड़कर चले जाने में निसंदेह दूर की सूझ थी क्योंकि अकबर की विशाल सेना के समक्ष मेवाड़ के कुछ सैनिक विजय प्राप्त करने की आशा में नहीं थे। इस प्रकार यह कूटनीतिज्ञता पूर्ण कदम था।

रविउल अव्वल हि. सं. ९७५ (सितम्बर १५६७ ई०) को अकबर चित्तौड़ की तरफ रवाना हुआ। शिवपुरी गागरोन होता हुआ

---

(२२) वी. वि ७४–७५ उ. इ. ४१२ डा. गोपीनाथ शर्मा–मे. मु. पृ. ६०–६१।

(२३) अकबरनामा भाग २ पृ. ३९५। इकबाल–इ जहांगिरी भाग २ पृ. २२६ गोपीनाथ शर्मा–मे. मु. पृ. ६१ के फुटनोट ३७ में वर्णित।

चित्तौड़ की तरफ बढ़ा। मेवाड़ में सबसे पहले मांडलगढ़ पर आक्रमण किया। संभवतः उसने पूरी हाडोती को पार करके आक्रमण किया था। आसफखां और वजीरखां को मांडलगढ़ विजय करने को भेजकर चित्तौड़ की ओर बढ़ता रहा। मांडलगढ़ का दुर्ग रक्षक वल्लु सोलंकी था। वह रक्षा कर सकने में सफल नहीं हुआ और दुर्ग अकबर के हाथ आ गया[24]। माँडलगढ़ विजय कर अकबर की सेना १९ रवि उस्सानी हि. सं ९७४ (२३ अक्टूबर १५६७ ई०) को चित्तौड़ के पास जा पहुंची। राणा के पहाड़ों में चले जाने की सूचना मिलने पर अकबर ने हुसेन कुलीखां को बड़ी सेना लेकर महाराणा को पकड़ने को भेजा किन्तु इस सेना को कोई सफलता नहीं मिली।

अकबर का सेनापति बख्शीस घेरा डालने का कार्य कर रहा था। लगभग १ महीने में उसने दुर्ग को घेर लिया किन्तु जब आक्रमण में कोई सफलता मिलती दिखाई नहीं दी तो सुरंग और साबात बनाने का हुक्म दिया गया। अकबर का मोर्चा इस प्रकार था। लाखोटा बारी के पास अकबर स्वयं था और उसके साथ हुसनखां, चगताईखां, राय पतरदास, इख्तियारखां आदि थे। इनका सामना करने के लिये जयमल था। दूसरे मोर्चे पर जो सूरजपोल के सामने स्थित था इसमें अकबर की ओर से शुजातखां राजा टोडरमल, कासिमखां आदि थे इनका सामना दुर्ग में रावत सांईदास कर रहा था। तीसरा मोर्चा चित्तौड़ बुर्ज की तरफ जो दक्षिणी भाग की तरफ है बनाया गया। इसमें ख्वाजा अब्दुल मजीद, आसफखां आदि नियुक्त थे और राजपूतों की ओर से दुर्ग पर वल्लू सोलंकी आदि थे।

साबात बनने का कार्य तेजी से चल रहा था। ५००० आदमी इसमें लगे हुए थे। राजपूतों की गोली से प्रतिदिन २०० आदमी मारे जाते थे। साबात बनाने वालों को बड़ी मात्रा में पुरस्कार और लोभ

---

(२४) वी. नि. भाग २ पृ. ७४। ओझा उ. इ. पृ. ४१२-४१३।

दिया गया [25]। कारीगर बीच बचाव के लिये गाय और भैंस के चमड़े की छावन लगाये हुए थे। प्रयत्न करने पर २ सुरंग किले की तलहटी तक पहुंच गई। एक में१२०मन और दूसरी में८०मन बारूद रक्खी गई और १५ जम्मादि उस्सानी बुधवार तदनुसार १७ दिसम्बर, १५६७ को पहली सुरंग उड़ी जिसमें कुछ राजपूत मारे गये और मुगल सेना तत्काल दुर्ग में प्रवेश करने लगी। इतने में दूसरी सुरंग भी उड़ गई। इससे शाही सेना के जवान और राजपूत दोनों ही मारे गये। इसका धमाका बहुत दूर २ तक सुनाई दिया। तीसरी सुरंग बीका खोह और मोर मगरी की तरफ से आसफखां ने उड़ाई थी किन्तु कोई खास सफलता नहीं मिली [26]।

दुर्ग की दीवारें जगह २ से खंडित हो गई थी किन्तु राजपूतों ने अपूर्व उत्साह दिखाकर उन्हें वापस बना लिया। दुर्ग में शत्रु के प्रवेश को रोकने के लिये गरम २ तेल डाला गया। इस प्रकार राजपूतों की तैयारी देखकर अकबर भोंचक्का रह गया। किन्तु दुर्ग में खाद्य सामग्री की कमी होने के कारण राजपूतों ने जौहर करने का निश्चय किया। संभवतः जयमल की मृत्यु अकबर की गोली लग जाने से तत्काल वहीं हो गई थी। अतएव राजपूतों का उत्साह मन्द पड़ गया। उन्होंने पत्ता को दुर्ग रक्षक नियुक्त किया। राजपूतों ने जौहर करने की तैयारी करदी। जौहर की ज्वालाएं ईसरदास, साहिब खान चौहान, और पत्ता के मकानों पर लगाई गई थी। पत्ता के परिवार में उसकी मां उसकी ९ पत्नियां ५ पुत्रियां और २ पुत्र जौहर की धधकती ज्वाला में

(२५) इलियट एण्ड डानसन–हिस्ट्री आफ इन्डिया भाग ५ पृ. १७२–७३।

(२६) अकबरनामा (अंग्रेजी अनुवाद) भाग २ पृ.४६८।वी.वि. भाग २ पृ. ७२। ओझा उ. ई. पृ. ४१५। अमर काव्य वंशावली में यहां ५ कोश ही ध्वनि जाने का उल्लेख किया है "शब्दो महानेव बभूत पंच क्रोशावधि स्थायि जनैः श्रुतश्व"। इकबाल नामे में ५० कोश तक ध्वनि जाना वर्णित है।

कूदकर अपना नाम अमर कर लिया । समिद्धेश्वर मन्दिर पर और भीमलत के मध्य ये मकानात विद्यमान थे जहां जौहर हुए थे । हाल ही में भारत सरकार के पुरातत्व विभाग ने समिद्धेश्वर के पास सफाई कराई तो वहां हड्डियां, राख आदि बड़ी मात्रा में मिली है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस क्षेत्र में अवश्यमेव जौहर हुआ था [27]। अकबर ने जब किले में धधकती हुई ज्वाला देखी तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ उसने राजा भगवान दास को इसका कारण पूछा तो उसने कहा कि राजपूत जौहर कर रहे हैं। राजपूतों ने द्वार खोल दिये । हनुमान पोल और भैरो पोल के मध्य भीषण युद्ध हुआ जहां कई उल्लेखनीय राजपूतों की मृत्यु हो गई। यह घटना तारीख २६ शब्बान हि. सं ९७५ तदनुसार २५ फरवरी सन १५६८ की हुई । ईसर दास सौलंकी ने अकबर के हाथी के दांत को पकड़कर आक्रमण करने की चेष्टा की। पत्ता को एक हाथी ने सूंड में पकडकर मार दिया । रावत सांई दास राजराणा जैता सज्जावत रावत साहिब खान आदि कई उल्लेखनीय सरदार मारे गये [28] ।' दुर्ग अकबर के हाथ आ गया जहां उसने अब्दुल मजीद आसफखां को किलेदार नियुक्त किया। दुर्ग और आसपास रहने वाले ३०,००० नागरिकों को विजेता सेना ने मौत के घाट उतार दिया । यह बहुत ही क्रूरता पूर्ण कदम था । दुर्ग के मन्दिरों की मूर्तियों को बड़ी मात्रा में खंडित किया गया। इस प्रकार राख और शवों का ढेर एक दर्दनाक दृश्य प्रस्तुत कर रहा था।

महाराणा उदयसिंह चित्तौड़ के पश्चात् कुंभलगढ़ में रहे थे। उस समय की लिखी कुछ ग्रंथ प्रशस्तियां मिली हैं जिनमें अकबर के चित्तौड़ विजय के पश्चात् के संवत है। आमेर शास्त्र भंडार में सुरक्षित सम्यकत्त्व कथा कौमुदी की एक प्रति संग्रहित है । यह ग्रंथ महाराणा उदयसिंह के शासन काल में वि. सं. १६२५ मार्ग शीर्ष शुक्ला ६ शनिवार को खरतरगच्छ के गुणलाल ने लिखा था । अकबर की चित्तौड़

(२७) डा. गोपीनाथ–मे. मु. पृ. ६८-६९ का फुटनोट सं. ६३

(२८) वी. वि. भाग पृ. ८३। उ. इ. पृ. ४१७। मे. मु. पृ. ३०-३१

विजय वि. सं. १६२४ की चैत्र वदी १३ को हुई थी । अतएव यह प्रशस्ति वड़ी उल्लेखनीय है [29] ।

उदयसिंह की मृत्यु वि. सं. १६२८ फाल्गुन सुदी १५ को हुई थी । कहते हैं कि मृत्यु के पूर्व महाराणा ने जगमाल को उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था । राणा की मृत्यु के समय जगमाल जब दाह क्रिया में सम्मिलित नहीं हुआ तो प्रताप के नाना अखेराज सोनगरा ने इसका विरोध किया । ग्वालियर महाराजा रामसिंह एवं कुछ राजपूतों की सहायता से उसने प्रताप को उत्तराधिकारी घोषित कराया । जगमाल अप्रसन्न होकर अकवर के पास चला गया ।

हल्दीघाटी का युद्ध

महाराणा प्रताप को आधीनता में लाना चाहता था । इस कार्य के लिये मानसिंह ने व्यक्तिगत रूप से राणा से सम्पर्क स्थापित करना चाहा । वह वि. सं. १६३० (१५७३ ई.) में जब डूंगरपुर विजय करके लौट रहा था तब महाराणा से मिलने के लिये ठहरा । इनकी भेंट संभवतः गोगुन्दा नामक स्थान पर हुई । ऐसा कहते हैं कि महाराणा भोजन के समय स्वयं न जाकर अपने ज्येष्ठ पुत्र को भेज दिया । इससे मानसिंह वहुत अप्रसन्न हुआ उसने महाराणा की अनुपस्थिति का कारण पूछा तो उनकी बीमारी का कारण वतलाया गया । महाराणा की अनुपस्थिति से अप्रसन्न होकर इस ने प्रत्युत्तर दिया कि वह उनकी बीमारी की दवा लेकर आवेगा ।

मानसिंह जब देहली पहुंचा तो उसने सारी बात अकवर को कही । अकवर चाहता था कि दोनों पक्षों में शान्ति हो जावे इसी हेतु

---

(२९) सं. १६२५ वर्षे शाके १४९० प्रवर्तमाने दक्षिणायने मार्गशीर्ष शुक्ल पक्षे षष्ठन्यां शनौ–श्री कुंभल मेरूदुर्गे रा० श्री उदयसिंह राज्ये खरतरगच्छे श्री गुणलाल महोपाध्याये स्ववचनार्थं लिखापितं (ग्रथांक नं० १९१०) ।

राजा टोडरमल और भगवान दास को भी दिसम्बर सन् १५७३ में भेजा। अकबर नामा में यह वर्णित है कि महाराणा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह को मुगल दरबार में भेजा था और प्रार्थना की कि उसकी दिल्ली में उपस्थिति आवश्यक नहीं समझी जावे। यह वर्णन अतिशयोक्ति पूर्ण है [30]।

महाराणा ने रक्षा की समुचित व्यवस्था की। ३०० घुड़ सवारों को स्थायी रूप से हल्दी घाटी पर नियुक्त कर दिया। इस सम्बन्ध में वि.सं.१६३१के ढोलम गांव के दानपत्र से इस तथ्य की पुष्टि होती है। यह ग्राम कुंभलगढ़ जिले में स्थित है। दूसरा महत्वपूर्ण कार्य जो महाराणा ने किया वह मेवाड़ के मैदानी इलाके से जनता को हटाकर के कुंभलगढ़ और गिरवा तहसीलों में पहुंचा दिया ताकि मुगल सेना को रसद आदि पहुंचाने और प्राप्त करने में कठिनाई हो [31]।

राज प्रशस्ति महाकाव्य का यह वर्णन कि मानसिंह का अपमानित होकर दिल्ली जाने से अकबर ने युद्ध के लिये तत्काल तैयारी कर दी [32] अतिशयोक्ति प्रतीत होता है। क्योंकि इस घटना के बाद अकबर ने बंगाल विजय के लिए प्रयाण किया था और इसके बाद जोधपुर के राजा चन्द्रसेन को जीता था। इसके पश्चात् ही उसने मेवाड़ विजय की योजना बनाई थी। अकबर ने मानसिंह कछावा की अध्यक्षता में सेना मेवाड़ पर आक्रमण करने को भेजी। मानसिंह की अध्यक्षता में सेना भेजने का कारण यह बतलाया जाता है कि कछावा राजा पहले मेवाड़ के आधीन रह चुके थे। अतएव संभवत मेवाड़ वाले

---

(३०) डा. गोपीनाथ—मे. मु. पृ. ७९-८०।

(३१) वही—पृ. ८१।

(३२) प्रतापसिंहोऽथ नृपः कच्छवाहेन मानिना।
मानसिंहेन तस्यामीद्वैमनस्यं भूजेविधौ ॥ २१
अकबरप्रभोःपार्श्वे मानसिंहस्ततोगतः।
गृहीत्वा तद्बलं ग्रामे खमनोर समागमः ॥ २२
(वी. वि. भाग २ पृ. ५८७ में प्रकाशित)।

इन्हें तुच्छ समझते थे । अगर मुसलमानी सेना नायक को भेजा जाता तो महाराणा जंगलों में भाग सकता था [33]। अतएव मानसिंह के जाने के कारण स्वयं महाराणा लड़ने को आ जावेगा। मानसिंह के साथ सेना में कई उल्लेखनीय अधिकारी थे। मुन्तख्वाव उत तवारीख का लेखक बदायूंनी भी उपस्थित था। महाराणा की ओर से ग्वालियर के तोमर राजा रामसिंह अपने पुत्रों सहित उपस्थित था। इनके अतिरिक्त झाला मानसिंह, झाला बीदा, सोनगरा मानसिंह, डोडिया भीमसिंह, रावत कृष्णदास चूडावत, राठौड रामदास जयमलोत आदि थे। अकबर की सेना अजमेर से ता० २ मुहर्रम हि. सं. ९८४ तदनुसार २ अप्रेल, १५७६ ई. को रवाना हुई । युद्ध रवि उलअव्वल के प्रारम्भ अर्थात जून माह में हुआ था।

युद्ध बहुत ही भयंकर हुआ। प्रारम्भ में महाराणा की विजय हुई। महाराणा के सेनापति हकीम सूर अफगान ने जब बादशाही सेना पर धावा बोला तो हरावल में स्थित सेना पूरी तरह से हार गई और भागने को बाध्य हो गई। राणा प्रताप भी काजीखां की सेना पर टूट पड़ा एवं सेना का संहार करता हुआ मध्य तक जा पहुंचा। सीकरी का शहजादा जो इब्राहीम चिश्ती का रिश्तेदार था भागने को बाध्य हो गया। सेना की इस प्रकार की स्थिति देखकर मिहरतरंग ने एक युक्ति सोची। उसने भागती हुई सेना को ढोल बजवा २ कर यह ऐलान कराया कि बादशाह स्वयं सेना लेकर आरहा है अतएव तुम लोगों को भागना नहीं चाहिये [34]। केवल मात्र सैय्यद लोग टिके हुए थे। ग्वालियर के तोमर राजा रामसिंह ने अपूर्व साहस से काम लिया वह और उसके परिवार के अधिकांश व्यक्ति युद्ध में काम आ गये। महाराणा ने मानसिंह कछावा के हाथी पर अचानक आक्रमण किया किन्तु

---

(३३) ओझा—उ. इ. पृ. ४२९। डा. गोपीनाथ—मे. मु. पृ. ८८।

(३४) मुन्तख्वावउत तवारीख भाग II पृ. २३१। अकबर नामा भाग III पृ. १५३।

महाराणा के हाथी रामप्रसाद के महावत के तीर लग जाने से उसकी मृत्यु हो गई। अतएव महाराणा को उसको छोड़ना देना पड़ा[35]।

फारसी तवारीखों में राणा की हार होना वर्णित है जबकि मेवाड़ के सब ग्रंथों में राजपूतों की जीत होना लिखा है। युद्ध का परिणाम कुछ भी रहा हो मुगलसेना राजपूतों से वहुत ही अधिक घवराई हुई वर्णित की गई है जो स्पष्टतः यह ध्वनित करती है कि मुगलों को कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। संभवतः हार हुई हो या युद्ध का परिणाम संदिग्ध रहा हो।

हल्दी घाटी से भाग कर मानसिंह ने गोगुन्दा में अपनी स्थिति सुदृढ करना ही ठीक समझा। फारसी तवारीखों में लिखा है कि उसकी सेना उस समय वहुत डरी हुई थी और राजपूतों के अचानक आक्रमण से डर रही थी। इस कार्य के लिये गांव के वाहर ऊंची दीवारें वनाई गई और खाइयां खोदी गई। राजपूत और भीलों ने उनकी रसद काटदी अतएव शाही सेना को वड़ी कठिनाई उठानी पड़ी। उस समय शिकार करके या आम खाकर ही सैनिकों को जीवन यापन करना पड़ता था। वादशाह की सेना की इस प्रकार की दुर्दशा के कारण मानसिंह को दोषी ठहराया गया। वादशाह इससे वहुत ही अप्रसन्न हुआ और कुछ दिनों के लिये उसकी ड्योढ़ी तक वन्द करदी गई। तवकात-इ-अकवरी के अनुसार जव सेना की इस दुर्दशा की जांच की गई तो मानसिंह को दोषी ठहराया गया और कहा गया कि सैनिक उस समय वड़ी विपत्ति में थे। उसने राणा के मुल्क को लूटने की आज्ञा नहीं दी थी। इससे वादशाह वहुत ही अप्रसन्न हुआ। इसी घटना को अवुल फजल ने भी अकवर नामे में भी वर्णित की है।

---

(३५) मुन्तखाव उत तवारीख भाग II पृ. २३२। तवकात इ अकवरी भाग प्रथम पृ. ३३३। राजप्रशस्ति सर्ग ४ श्लोक २३।

हल्दी घाटी के बाद

अकबर द्वारा दूसरे प्रान्तों की समस्याओं में अत्यधिक व्यस्त होने के कारण प्रताप को अपना खोया हुआ भाग वापस प्राप्त करने का अवसर हाथ लगा। उसने सेना एकत्रित की। बादशाह ने शाहबाज खां को वापस मेवाड़ भेजा। महाराणा उसके आते ही वापस पहाड़ों में चले गये। वह मेवाड़ में कोई खास सफलता प्राप्त नहीं कर सका और असफल होकर वापस लौट गया। बादशाह ने इसके पश्चात् १५८० ई० में अब्दुलरहीम खानखाना को अजमेर का सूबेदार बनाकर मेवाड़ विजय को भेजा। महाराणा के कुंवर अमरसिंह ने उसकी बेगमों को शेरपुरा पर आक्रमण कर बन्दी बना लिया किन्तु जब महाराणा ने यह सुना तो उसने बेगमों को सकुशल पहुंचाने की व्यवस्था करादी[36]। खानखाना भी उसी प्रकार असफल होकर लौटा।

इस प्रकार की परिस्थितियों से प्रभावित होकर राणा ने अपना खोया हुआ भाग वापस लेने की कोशिश की। उसने चाँवड पर आक्रमण कर छप्पनिये राठोड़ों को हराया। इनका राज्य सूरखंड आदि भू भाग पर था। महाराणा कुंभा के समकालीन कन्ह का एक शिलालेख वि. सं. १४६४ का मिला है। इस क्षेत्र से महाराणा प्रताप का शिलालेख भी मिला है।

बादशाह ने जगन्नाथ कछावा को मेवाड़ पर १५८४ ई० में आक्रमण करने भेजा। महाराणा ने उनकी सेना पर अचानक आक्रमण किया। एक बार चित्तौड़ पर भी आक्रमण किया और मुगलों के सामने आक्रमण कर पहाड़ों में सुरक्षित पहुंच गया। मुगल सैनिक उससे बहुत ही घबराते थे और प्रत्याक्रमण करने को तैयार नहीं होते थे।

गोगुन्दा में मुगल सेना की क्षत विक्षत स्थिति से प्रभावित होकर अकबर ने मेवाड़ संघर्ष के लिए दूसरी व्यवस्था की। प्रताप ने ईड़र के राजा नारायणदास सिरोही के राव सुल्तान एवं जालोर के

(३६) अमरेशः खानखानादाराणां हरणं व्यधात् ।३२।
सुवासिनीवत् संतोष्य प्रेषयामास ताः पुनः ।।
राज प्रशस्ति सर्ग ४

प्रशासक को अपनी ओर मिला लिया। इसलिये अकबर को उनके विरुद्ध भी आवश्यक कार्यवाही करनी पड़ी । प्रताप मेवाड़ के मैदानी भाग से हटकर पहाड़ी भागों में चला गया । वहां मुख्य २ मार्गों पर और महत्वपूर्ण स्थानों पर सैनिक नियुक्त कर दिये। इसलिए वजणारों तक का आना जाना वन्द हो गया और मुगलों का जो व्यापार दिल्ली आगरा से गुजरात की तरफ होता था वह प्रायः वन्द सा हो गया। अहमदाबाद जाने के लिए मुगलों ने मेवाड़ के मार्ग से होकर यात्रायें वन्द करदी।

अकबर स्वयं गोगुन्दा की ओर वढ़ा [37] । उसने अजमेर ११ अक्टूवर, १५७६ ई० को छोड़ा था । राजपूतों के अचानक आक्रमण का उसे भी वड़ा भय था । अतएव आगे २ वरावर सैनिकों की एक टुकड़ी जाया करती थी। वादशाह ने गोगुन्दा पहुंच कर उसे वापस अपने अधिकार में ले लिया और कुछ दिनों के लिये यहां मुख्यावास भी वनाकर मेवाड़ विजय और महाराणा को पकड़ने की योजनाएं वनाई जाने लगी । इस कार्य के लिये राजा भगवान दास, मानसिंह और कुतुवुद्दीन को लगाया । किन्तु यह दल महाराणा को पकड़ने में असफल रहा [38] । मेवाड़ के केन्द्रीय मैदानी भाग में वादशाह ने अपने सैनिक नियुक्त कर दिये। मोही (नाथद्वारा के पास) और मदारिया (सरदार गढ़ के पास) पहाड़ी भाग और मैदानी भाग को मिलाते हैं। अतएव यहां पर भी सैनिक चौकियां नियुक्त करली गई। उदयपुर में जगन्नाथ कछावा की नियुक्त की गई [39] । इस प्रकार वादशाह ने अपने साम्राज्य की सारी शक्ति मेवाड़ की ओर लगाई। उसकी इच्छा

(३७) डा० गोपीनाथ–मे० मु० पृ० ९५ मुन्तरव्वाव उत तवारीख भाग II पृ० २४० अकवर नामा भाग III पेज १९४

(३८) अवुलफजल ने लिखा है कि ये लोग महाराणा को जीत नहीं सके थे अतएव वादशाह ने इनकी डयोढी वन्द कर दी थी जो काफी प्रयत्न करने पर वापस वहाल की गई (जिल्द III पृ० २७४–७५

(३९) डा० गोपीनाथ–मे० मु० पृ० ९६–९७

राणा प्रताप को या तो जीवित पकड़ने या मरवा देने की थी ताकि हमेशा के लिए मेवाड़ में शान्ति स्थापित हो जावे । प्रताप के दृढ़ साहस और अटूट धैर्य का पता हमें उस समय मिलता है जबकि एक विशाल साम्राज्य के सामने वह बराबर अड़िग रहता है । मुगल सेना भी उसके नाम से भयभीत रहती थी । अकबर निराश होकर मालवा की तरफ चला गया और और मुगल सेनापति भी कुछ समय के बाद लौट गये । राणा ने वापस पहाड़ों से निकल कर मैदानी भागों के कुछ ठिकानों पर अधिकार कर लिया । अतएव भगवान दास मानसिंह और मीर बहादुर को वापस मेवाड़ में भेजा । महाराणा वापस पहाड़ों में जा छिपा एवं इसके द्वारा विजित क्षेत्रों पर वापस बादशाही सेना का अधिकार हो गया [40] ।

मेवाड़ समस्या का हमेशा के लिये हल करने के लिए शाहबाजखां को एक विशाल सेना के सहित मेवाड़ पर आक्रमण करने भेजा । इस सेना ने कुंभलगढ़ दुर्ग पर अधिकार कर लिया । रसद की कमी के कारण प्रताप को दुर्ग छोड़ देना पड़ा । भाण आदि राजपूत लड़ते हुए मारे गये [41] ।

भामाशाह द्वारा सहायता

भामाशाह और उसके भाई ताराचन्द ने मालवा में आक्रमण करके २०,००० मोहरे प्राप्त की थी । इसके अतिरिक्त कुछ धन उनके पास मेवाड़ राजकीय कोष का भी था । इस सारे धन को उसने महाराणा के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया । मेवाड़ में यह घटना इस प्रकार विख्यात है कि कुंभलगड़ छूट जाने के बाद महाराणा ढोलम गाँव में कुछ समय रहा । किन्तु मुसलमानों के बराबर आक्रमणों से वह कभी एक गांव तो कभी दूसरे गांव बराबर भागा करता था । इस प्रकार एक

(४०) उपरोक्त । ओझा उ. इ. पृ. ४४६ ।

(४१) शाहबाज खां को इस क्षेत्र में कुछ सफलता मिली थी । भोज चरित की वि. सं. १६३४ की प्रशस्ति से इसकी पुष्टि होती है ।

वार उसने मेवाड़ को छोड़कर हमेशा के लिए निर्जन स्थान में जाने की सोची । इसी समय भामाशाह ने अपने धन से उसकी सहायता की ।

महाराणा अमरसिंह और अकबर

महाराणा प्रताप की मृत्यु हो जाने पर अमरसिंह का राज्याभिषेक वि. सं. १६५३ माघ सुदी ११ (१९-१-१५९७) को हुआ था । महाराणा प्रताप के समय से ही भामाशाह इनका मंत्री था वह बराबर इसके समय तक चलता रहा । भामाशाह की मृत्यु वि. सं. १६५६ माघ सुदी ११ (११-१-१६०० ई०) को हो गई । महाराणा ने उसके पुत्र जीवाशाह को प्रधान बनाया ।

वि. सं. १६५७ में अकबर ने सलीम को मेवाड़ पर आक्रमण करने भेजा । इसके साथ मानसिंह आदि कई उल्लेखनीय सरदार भी थे । इस सेना ने मेवाड़ में प्रवेश करके कोशीथल,बागोर,ऊंठाला,मोही, मदारिया, मांडल, पुर आदि जीत लिये । इस प्रकार केन्द्रीय मेवाड़ के जीत लेने से महाराणा पहाड़ों में चला गया । शाहजादा ऊंठाला में ही डटा रहा । वहां सम्मसखां कायमखानी को नियुक्त कर दिया । क्यामखां रासो के अनुसार सादड़ी के थाने पर अलखां कायमखानी नियुक्त था और उंठाले में सम्सखां । राज प्रशस्ति के अनुसार कायमखानी की मृत्यु हो गई । डा० दशरथ शर्मा के अनुसार यह शुजातखां का पोता क्यामखां था[42] ।

उस समय तक मेवाड़ की सेना में चूंडावत और शक्तावतों का प्रभाव अधिक था । शक्तावतों की बढ़ती हुई शक्ति ने चूंडावतों से मुकाबला करना चाहा । उन्होंने चूंडावतों के स्थान पर मेवाड़ की सेना में हरावल में विद्यमान रहने का अधिकार अपने पक्ष में मांगा । महा-

(४२) दिल्लीपतेर्भृत्यवरं जघ्ने कायमखानकं ।
ऊंठालायां मालपुरा नगं चक्रेन-दंडकम् ।।४।। राजप्रशस्ति महाकाव्य । क्यामखां रासो पद्यांक ६९१ पृ. ५९ एवं १२२ ।

राणा ने बड़ी चतुरायी से यह निर्णय दिया कि जो ऊंठाले के किले में पहले प्रवेश कर जायेगा वही हरावल में रहने का अधिकारी हो सकेगा तदनुसार दोनों पक्षवाले रवाना होकर वहां जा पहुंचे। शक्तावत पहले जा पहुंचे और उन्होंने दरवाजे के आसपास अपने आदमी इकट्ठे कर लिए। चूंडावत भी शीघ्र वहाँ आ पहुंचे। उन्होंने सीढी लगाकर अन्दर जाने की कोशिश की। वीर जैतसिंह के जब अन्दर जाने की तैयारी में गोली लगी तो उसने चिल्लाकर के कहा कि मेरा सिर काट करके किले में फेंक दो। तदनुसार यही कार्य किया गया और चूंडावतों को सदैव के लिए हरावल में रहने का अधिकार प्राप्त हो गया। चूंडावतों और शक्तावतों दोनों ने मिलकर कायम खानियों पर आक्रमण करके किला जीत लिया। ऊंठाला की लड़ाई के बाद महाराणा की सेना शाही छावनियों को लूटती हुई मालपुरे तक जा पहुंची। कई शाही अधिकारी मारे गये और आक्रमण विफल रहा[43]।

वि. सं. १६६० में दशहरे के अवसर पर सलीम को मेवाड़ आक्रमण के लिये भेजा। जगन्नाथ कछावा बीकानेर नरेश रायसिंह रामपुरा का चन्द्रावत दुर्गा, बून्दी का राजा भोज आदि सरदारों को साथ दिया गया। किन्तु सलीम मेवाड़ आक्रमण का अनुभव कर चुका था। अतएव उसने इस प्रश्न को टालना ही अधिक उपयुक्त समझा। वह फतहपुर सीकरी आकर के रुक गया और इलाहाबाद चला गया।

बादशाह अकबर की मृत्यु वि. सं. १६६२ कार्तिक सुदी १४ को हो गई एवं इसके पश्चात् जहांगीर बादशाह बना।

जहांगीर और मेवाड़

जहांगीर ने गद्दी पर बैठते ही ११ शब्बान हि. सं. १०१६ तदनुसार १६६५ वि. में परवेज को राणा पर चढ़ाई करने भेजा। उसे एक जड़ाऊ तलवार मस्त हाथी खास घोडा जड़ाऊ जीन अंका झंडा ३०० तोपे और सहस्त्र दो अस्पा सवार दिये और आदेश दिया

(४३) ओझा-उ. इ. पृ. ४७६-७७। वी. वि. भाग २ पृ. २१७-१८।

कि राणा स्वयं आजावे या उसके पाटवी वेटे को सेवा में भेज दे तो युद्ध न करके, उसका देश उसे छोड़कर आ जाना।[44] उसके साथ जाने वाले सरदारों में विशेष उल्लेखनीय आसफखां वजीर, अब्दुलरज्जाक मामूरी, मुख्वाररेज जगन्नाथ कछावा राजा सगर आदि थे। महाराणा ने वदनोर, मांडलगढ़, और चित्तौड़गढ़ तलहटी के शाही भू-भाग पर आक्रमण करके शाही छावनियों को लूटा। शाही सेना में भी अलग २ स्थानों पर लड़ने के वजाय एक स्थान पर ही लड़े ऐसा निश्चित किया गया और सारी सेनाए ऊंठालां और देवारी के आस पास एकत्रित कर ली गई। पानडवा के सरदार पूंजा के पुत्र रामा ने हजारों भील सहित इस सेना पर आक्रमण कर दिया इसलिए शाही सेना को वहां से हटाकर मांडल चला जाना पड़ा।[45]

तुजके जहांगीरी में वह लिखता है कि आसफखाँ वजीर के साथ राणा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र के स्थान पर वाघा को भेज दिया किन्तु खुसरों के विद्रोह के कारण सुलह नहीं हो[46] सकी। मेवाड़ के इतिहास में इस घटना का उल्लेख नहीं है। यह बात निसंदेह गलत है। जहांगीर यह लिखता है कि जब पर्वेज सीमा पर पहुंचा उसी समय राणा ने अपने बड़े पुत्र को कई प्रसिद्ध हाथी तथा रत्नों के साथ उसके पास मार्ग में ही भेज दिया। इसके साथ प्रार्थना पत्र में स्वंय न आने का निवेदन करते हुए लिखा कि सर्वदा अकबर के समय भी अपने बड़े पुत्र को दरबार में भेजता आया हूं। और स्वंय जंगल के एक कोने में कालयापन करता हूं।[47] यह वर्णन अतिशयोक्ति है। क्योंकि अकबर के समय मेवाड़ के किसी

(४४) तुजके जहांगीरी का हिन्दी अनुवाद पृ० ४६
(४५) ओझा उ०इ०पृ० ४८०/डा० गोपीनाथ —मे०मु०पृ०११०
(४६) तुजके जहांगीरी का हिंदी अनुवाद पृ० ४६/उ० इ० पृ० ४८०–८१
(४७) तुजके जहांगीरी पृ० ४६-५०

राजकुमार का उसकी सेवा में भेजना गलत है।[48] टाड ने अमर सिंह को युद्ध के लिये प्रोत्साहित करने का श्रेय चूंडावत सरदार को दिया है किन्तु वस्तुस्थिति इसके भिन्न है। उसने अकबर के समय युद्ध करके बतला दिया था कि वह भी अपने पिता के पद चिन्हों पर चलने को तैयार है।

सगरा को चितौड देना

बादशाह ने सगरा को जो राणा उदयसिंह का बेटा था चितौड़ की जागीरी इसी उद्देश्य से दी थी कि राजपूतों में फूट हो जायगी और कई सरदार उसके पक्ष में भी हो जायेंगे। इससे अमरसिंह की शक्ति कम हो जावेगी। नागौर और उज्जैन में भी बादशाही सेवाओं में यह रह चुका था। अतएव इसे सादड़ी, बेगूं, बागौर, फूलिया, कपासन और चितौड़ का भूभाग दिया गया। कर्नल टॉड का लिखना ठीक प्रतीत होता है कि चितौड़ के सिंहासन पर सगरा को बिठाकर बादशाह जहांगीर ने समझा था कि मेवाड़ के राजपूत सगरा को राजा मान लेगें परन्तु ऐसा नहीं हुआ। मेवाड़ की प्रजा इस सगरा से घृणा करती थी। क्योंकि यह अकबर से मिल गया था। अभिषेक के अवसर पर कोई स्थानीय आदमी उसके पास नहीं गया। स्वंय सगरा ने चितौड़ में रहकर यह अनुभव कर लिया कि लोग मुझे पापी मानते है।[49]

महावत खाँ की चढ़ाई

परवेज़ का आक्रमण विफल हो जाने पर बादशाह ने महावत खां के साथ एक विशाल सेना भेजी।[50] इसमें १२,००० सवार, ५०० अहदी (विशेष सैनिक), २००० बन्दूकची, ६० हाथी ७०–८० तोपें और २० लाख रुपये भी दिये गये। इस सेना में जाफर खाँ शुजाअतखां राजवीर सिंह बुन्देला, नारायण दास कछवाहा आदि कई प्रतिष्ठित

---

(४८) ओझा उ० इ० पृ० ४८१/मि० मु० पृ०– ११२

(४९) तुजके जहांगीरी पृ० ५३/उ० इ० पृ० ४८१/वी० वि० भाग २ पृ० २२२-२३

(५०) तुजके जहाँगीरी पृ० २१६

सरदार थे। इस सेना ने कई स्थानों पर अधिकार कर लिया और कंठाल को अपना केन्द्र बनाया। बेगूवालों के पूर्वज गोविन्द दास का बेटा मेघा ने अपने राजपूतों के साथ मुगल सेना पर भीषण आक्रमण किया। ऐसा प्रसिद्ध है कि उसने रात के अवसर पर खरबूजे बेचने वाले का भेष बनाकर आतिश बाजी का सामान भरकर कुछ भेंसों को शाही केम्प में ले गया। भेसों के सीगों पर मशाले लगा दी और आतीश बाजी में अचानक आग लगा दी जिससे शाही सेना में घबराहट फैल गई। और कई लोग हार कर भाग गये। इसके बाद भी मुगल सेना ने कई छोटी मोटी लड़ाइयां की किन्तु कोई खास सफलता नहीं मिली।

अब्दुला खां का मेवाड़ पर भेजा जाना।

हि. स. १०२८ रवि उल अखिर (जून १६०९–१६६६ विक्रमी) में अब्दुलाखां को फीरोज जंग का खिताब देकर मेवाड़ भेजा गया। इस सेना की कार्यवाही का विवरण बादशाह के पास भेजते हुए उसने लिखा कि विद्रोही राणा का पहाड़ी भाग और बीहड़ स्थानों में पीछा करता हुआ उसके बहुत से हाथी और पकड़े है। रात्रि होने के कारण वह कठिनाई से भाग निकला। लेकिन उम्मीद है कि वह शीघ्र पकड़ा जावेगा। लगभग १५ दिन बाद उसने पुनः बादशाह को सूचना दी कि कुछ उत्साही युवकों ने राणा के साथ युद्ध करने में विशेष उत्साह दिखाया है। इनमें गजनी खां जालोरी था इसका मनसब डेढ हजारी ३०० सवार था। इसका मनसब बढाया जावे। इसी शिफारिश के अनुसार बादशाह ने इसका मनसब पांच सदी ४०० कर दिया।

वीर विनोद में दिये गये वर्णन के अनुसार राजकुमार कर्ण ने बादशाही खजाने को जो अहमदाबाद से आगरा की तरफ जा रहा था। लूटने का असफल प्रयास किया। उसके साथ वीरमदेव शार्दूल सिंह आदि राजपूत थे उसको माद्राजून का सरदार से जो नाडोल के थाने पर गुजरात और आगरे के मार्ग की रक्षा के लिये नियुक्त था युद्ध करना पड़ा।

वि. स. १६६८ में राणकपुर की घाटी के युद्ध में अब्दुला खाँ की बुरी तरह से हार हुई। इस युद्ध में देवगढ़ का दूदा सांगावत, सोनगरा नारायण दास, सूरजमल आसकरण पूर्णमल शक्तावत हरीदास राठौड़ झाला देदा केसरीदास कछावा आदि कई सरदार काम आये और विजय मेवाड़ के हाथ में रही।[51] केलवा के पास पुनः इस सेना को मुकन्द दास राठौड़ ने हरा दिया अतएव अब्दुलाखां को हटाकर उसके स्थान पर वसु को भेजा गया। राजकुमार कर्ण ने मालवा गुजरात अजमेर और गोडवाड़ के इलाके लूटे।[52]

वसु का आक्रमण

राजा वसु का मनसव ५०० सवार बढ़ाकर उसे मेवाड़ पर आक्रमण करने वाली सेनाओं का अध्यक्ष बनाया। उसकी सहायता के लिए सफदरखां आदि को भेजा गया। इस सेना को कोई सफलता नहीं मिली और असफल ही लौटना पड़ा।

बादशाह द्वारा स्वयं आक्रमण का संचालन करना

बादशाह ने अपने साम्राज्य की सारी शक्ति मेवाड़ के विरुद्ध लगा दी थी वह स्वयं तारीख २ शव्वान हि० स० १०११ (वि० स० १६७० आश्विन सुदि ३ को आगरे से प्रस्थान कर तारीख ५ शव्वाल (मार्ग शीर्ष सुदी ७) अर्थात २ महिने में अजमेर पहुंचा। उसने अजमेर से शाहजादे की अधीनता में एक विशाल सेना मेवाड़ के विरुद्ध

(५१) वी, वि. भाग २ पृ. २२६-२७। उ. इ. पृ. ४८३-५। मे. मु. पृ. ११५।

(५२) पुत्रोस्य कर्णसिंहाख्य सिरोजं मालवाभुवम्।
घंघोराख्यं वभंज च दंडंचक्रे तिलूटनम्
पुत्र श्री अमरेश भूपतिमणेरग्रे सरोग्रे रणे-
रूढो म्लेच्छ बलैः संसगरकरेः श्री कर्णसिंहभिधः। अमरकाव्य वंशावली डा. गोपीनाथ-मे. मु. पृ. ११५ फुटनोट ४३ राजप्रशस्ति सर्ग ५ के श्लोक ५ में भी ऐसा ही वर्णन हैं।

भेजी। इसमें कई उल्लेखनीय सरदार भी सम्मलित थे। जोधपुर का राजा सूरसिंह, राजा किशनसिंह, राव रतन हाडा बून्दी, वसु का वेटा सूरजमल तंवर, नवाजिसखां, शौफ खां आदि सरदार भी इसमें सम्मलित हुए! इनके अतिरिक्त मालवे से खानआजम और गुजरात से अब्दुल्ला खां अपने २ मनसव दारों सहित आ गये। दक्षिण से भी वीरसिंह बून्देला महमूद खां याकूव खां आदि सरदार आ गये। इस प्रकार विशाल सेना निरंतर आगे वढ़ती गई। मांडल के थाने पर जमाल खां तुर्की को कपासन पर दोस्त वेग और ख्वाजा मुहसिन को, ऊंठाले पर सैय्य दहाजी, नाहरी मगरे पर अरव खां आदि को नियुक्त किया। शाहजादा और खान आजम के बीच वैमनस्यता हो जाने के कारण उसे हटाकर अजमेर भिजवा दिया गया। महाराणा भी अपने सरदारों को एकत्रित करके मेवाड़ के पहाड़ी भाग में चला गया। अब्दुला खां ने महाराणा का पीछा करता हुआ महाराणा का प्रसिद्ध हाथी आलम गुमान पकड़ लिया। इसे अन्य १७ हाथियों सहित बादशाह के पास अजमेर पहुंचा दिया। कुंवर भीम ने अब्दुला के ऊपर आक्रमण किया और लड़ता २ डयोढी तक जा पहुंचा। अब्दुला घवरा गया और उसने कई दिनों तक युद्ध नहीं किया।

शाहजादा खुर्रम वड़ा परिश्रमी और कुशल सैनिक था। उसने वड़े परिश्रम से ऐसे २ पहाड़ी स्थलों पर थाने नियत किये जहां पहुंचना भी कठिन था एक तरफ तो अकेला मेवाड़ का राणा जो भी निरन्तर वर्षों से मुगलों से लड़ता आ रहा था दूसरी तरफ मुगल साम्राज्य की सारी शक्ति लगी थी [53]। इस प्रकार इसका मुकावला करना भी असंगत सा था फिर भी जो टेक राणा ने रक्खी थी वह इतिहास में सदैव उल्लेखनीय रहेगी। स्वयं जहांगीर लिखता है कि वास्तविक वात तो यह थी कि राणा अमरसिंह तथा उसके पूर्वजों ने अपने पार्वत्य देश

---

(५३) वीर विनोद भाग २ पृ. २३०-३५। उ. इ. पृ. ४६०-४६७। मे. मू. पृ. ११७-११८।

तथा निवास स्थानों की दुर्गमता के घमंड में में हिन्दुस्थान के किसी राजा की आधीनता स्वीकार नहीं की [54] । परन्तु हमारे राज्य काल में वैसा होना संभव नहीं था । अपने पुत्र की प्रार्थना पर राणा के दोषों को हमने क्षमा कर दिया और एक फरमान भेजा । एक जगह वह इस प्रकार भी लिखता है कि उसने राणा अमरसिंह और उसके पुत्रों की मूर्तियां भी बनाई थी । महाराणा और बादशाह के बीच जो शर्त हुई उनमें एक यह भी थी कि चित्तौड़ के दुर्ग की मरम्मत नही कराई जावेगी । ज़हांगीर ने कर्णसिंह का बहुत ही अधिक संम्मान किया था ।

राणा सगरा से चित्तौड़ वापस लेना

राणा सगरा को चित्तौड़ महाराणा अमरसिंह के विरोधी होने के कारण ही दिया गया था । जब अमरसिंह और बादशाह के मध्य संधि हो गई तो चित्तौड़ का दुर्ग और इसके आसपास का भू-भाग जो उसे दिया था इससे वापस छीन लिया । सगर को कुछ समय के लिये नागौर जागीर में दिया था । वहां से इसके समय के शिलालेख भी मिले हैं । क्यामखां रासों में भी इसका उल्लेख है [55]

महाराणा राजसिंह और मुगल संघर्ष

महाराणा कर्णसिंह का शासन काल शान्ति का काल था । वह मुगल सम्राट जहांगीर और शाहजहां से व्यक्तिगत सम्पर्क में रहा था । अतएव उसके शासनकाल में मेवाड़ मुगल सम्राटों के अधिक निकट आ गया । उसका उत्तराधिकारी जगतसिंह था । मुगल सम्राट उसके बांस-वाड़ा, डूंगरपुर, सीरोही आदि पर आक्रमण करने से अप्रसन्न था ।[56] किन्तु वह भी नहीं चाहता था कि दीर्घकाल तक युद्ध करने के पश्चात् मित्र हुए मेवाड़ को वापस शत्रु बनाया जाय अतएव महाराणा ने

---

(५४) तुजके जहांगीरी पृ. ३४१ ।
(५५) सरदार म्युज़ियम रिपोर्ट सन्.....पृ.....। एवं क्यामखां रासो पृ. ६४ पद्यांक ७६० ।
(५६) ओझा उ. इ. पृ. ५२३-५२५ ।

बादशाह के पास झाला कल्याण को स्पष्टीकरण कराने हेतु भेजने पर उसने भी क्षमा कर दिया। किन्तु महाराणा ने संधि की शर्तों की अवहेलना करते हुए चित्तौड़ दुर्ग की मरम्मत कराना शुरु कर दिया था। इससे बादशाह अप्रसन्न हो गया। इसी अवसर पर उसकी मृत्यु हो गई और उसका पुत्र राजसिंह शासक हुआ। इसने भी दुर्ग की मरम्मत जारी रक्खी। अतएव बादशाह ने इसकी जांच के लिए अब्दाल बेग को नियुक्त किया और उसके प्रतिवेदन पर वजीर सादुल्लाखां को एक बड़ी सेना लेकर भेजा। इस विशाल सेना में कई मनसबदार भी सम्मलित थे[6] इन्साए ब्राह्मण के लेखक मुंशी चन्द्रभाण की मध्यस्थता से संघर्ष टल गया[57]। राजप्रशस्ति महाकाव्य में दिये गये वृतान्त के अनुसार महाराणा ने मधुसूदन भट्ट और रायसिंह झाला को सादुल्लाखां के पास भेजा सादुल्लाखां ने महाराणा द्वारा संधि विच्छेद करने और गरीबदास को जो बादशाह से बिना आज्ञा लिये ही आ गया था रखने का दोष लगाया सादुल्लाखां ने पूछा तुम्हारे पास सेना कितनी है। मधुसूदन ने उत्तर दिया कि २६,००० सवार। सादुल्लाखां ने गर्व से कहा बादशाह के पास १ लाख सवार है तुम उसका मुकाबला नहीं कर सकते हो। मधुसूदन ने कहा कि २६,००० सवार ही काफी हैं। इस प्रकार काफी तनातनी हो गई किन्तु चन्द्रभाण के बीच बचाव के कारण समझोता हो गया[58]।

---

(५७) उपरोक्त पृ. ५३४। मे मु. पृ. १३५।

(५८) श्रुत्वा राजसिंहेन्द्रश्चित्रकूटे समागतं।
नसादुल्लहखानाख्यं दिल्लीश्वरमन्त्रिणं ।१२।
प्रेषयामासतत्पार्श्वे भट्टतुमधुसूदनं।
व्यंठोडीवंश तैलंग सगतः खानसन्निधौ ।१३।
खानेनोक्तंसत्यमेतत् पुनः खानस्तस्तोवदत्।
राणेशस्याश्वयाराणां संख्यांकथ य पंडित ।१८।
षटविंशति सहस्त्राणि भटनोक्तंस उक्तवान्।
दिल्लीशस्याश्वावाराणां लक्ष संख्याति तत्कथं ।१६।
राज प्रशस्ति महाकाव्य सर्ग ६

महाराणा ने जिस समय शाहजहां के पुत्र उत्तराधिकार के युद्ध में व्यस्त थे वादशाह से अपना खोया हुआ क्षेत्र वापस लेने की योजना बनाई। महाराणा वेसाख सुदी १० वि. सं १७१५ को चित्तौड़ से सेना लेकर दरीवा, मांडल, फूलिया, जहाजपुर, वनेडा, शाहपुरा आदि को जीतता हुआ मालपुरा जा पहुंचा। उसे लूटा और वहां से टोड़े गया। जहां रायसिंह शासक था जो यद्यपि मेवाड़ वालों का ही वंशज था किन्तु चित्तौड़ की बुर्जे गिराने में वादशाही सेना का साथ दिया था अतएव वहां से ६०,००० जुर्माने के लेकर टोंक, साँभर, लालसोट आदि को लूटता हुआ वापस उदयपुर आ गया। इस प्रकार उसने टीका दौरे की रस्म पूरी की [59]। इसी समय दिल्ली में औरंगजेव शासक हुआ। महाराणा ने अपने पुत्र को भेजकर उसको विजय की वधाई दी और वदले में उसने भी महाराणा को खिलअत और फरमान भेजा। किन्तु शीघ्र ही महाराणा ने रूपनगर की राजकुमारी चारूमती से जिसका विवाह बादशाह के साथ होने वाला था उसे महाराणा ने वलात् अपने यहां ले गया [60]। वससे वादशाह वहुत ही अप्रसन्न हुआ और बसावर और ग्यासपुर के परगने वापस ले लिये। इस समय से दोनों के मध्य झगड़े की जड़े स्थापित हो गई थी।

मुगल दरवार के दो मुख्य हिन्दू राजा मिर्जा राजा जयसिंह और जसवन्त सिंह के मर जाने पर औरंगजेव ने हिन्दुओं पर जजिया कर १ रवि उल अव्वल हि. स. १०९० (१७३६ वेशाख सुदि २) से शुरू किया था। यह घटना जसवन्त सिंह की मृत्यु के ४ माह

(५९) राज प्रशास्ति के अध्याय ७ श्लोक १९–४२
एवं राज विलास का ६ ठा विलास दृष्टव्य है।
शते सप्तदशे पूर्णवर्षे सप्रदशे ततः

(६०) गत्वा कृष्णगढ दिव्यो महत्या सेनयायुतः (२९)
दिल्लीशार्थं रक्षिताया राजसिंह नरेश्वरः
राठौड़ रूपसिंह श्चपुत्र्याः पाणिग्रहं व्यधात् ॥३०॥ राज प्रशस्ति राज विलास का ७ वां विलास

याद की है। महाराणा ने एक लम्बा पत्र भी लिखकर बादशाह के पास भेजा किन्तु उसने ध्यान नहीं दिया। मेवाड़ राज्य से पुर मांडल और बदनौर के परगने जजिया कर के बदले में मुगल सम्राट को देने पड़े। यद्यपि महाराणा द्वारा पत्र लिखे जाने के सम्बन्ध में विवाद है किन्तु राजस्थान के इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान डा० गोपीनाथ जी की मान्यता है कि यह पत्र प्रारम्भ में शिवाजी द्वारा और उसका संक्षिप्त रूप राजसिंह द्वारा लिखा गया था।[61]

मुगल बादशाह औरंगजेब के साथ संघर्ष का तात्कालिक कारण जोधपुर के अजीत सिंह दुर्गादास आदि को मदद देना था। जसवंतसिंह की मृत्यु वि. स. १७३५ की पोष में जमरुद (काबुल) में मृत्यु हो गई। दुर्गादास आदि राठौड़ उसकी रानियों को दिल्ली ले गये। औरंगजेब ने मारवाड़ के राज्य को मुगल साम्राज्य में मिला लिया इसी समय दिल्ली के कोतवाल फोलाद खां को कुछ सेना लेकर महारानियों और राजकुमार को पकड़ लाने को भेजा। राजपूत लोग कुशलता पूर्वक मेवाड़ चले आये जहां उन्हें केलवा ग्राम में रखा गया। जब यह समाचार बादशाह को मालुम हुआ तो उसने ता. ७ शबान हि. स. १०९० अर्थात माह सुदि ८ वि. स. १७३६ में विशाल सेना मेवाड़ के विरुद्ध भेजी। इसमें शाहाजादा अकबर, तहव्वरखान आदि सम्मलित थे। महाराणा को जब इसकी सूचना मिली तो उसने भी अपने सब सरदार एकत्रित किये इनमें विशेष उल्लेखनीय डूंगरपुर का महारावल, जसवन्तसिंह, राणावत भावसिंह, गरीब दास का पुत्र मनोहर सिंह, महाराणा का भाई अरि सिंह, बेदला का सबलसिंह चौहान, झाला चन्द्र सेन, रावत केसरी सिंह, पंवार बेरीसाल, रावत माहा सिंह, रावत रुकमाङ्गद दुर्गादास सोनग आदि थे। पुरोहित गरीब दास की परामर्श के अनुसार महाराणा ने उदयपुर छोड़कर पहाड़ों में चला जाना[62] उपयुक्त समझा। यह घटना ४ जनवरी के आसपास हुई।

(६१) डा० शर्मा मे. मु. पृ. १४४
(६२) ओझा उ. इ. पृ. ५५६/मे. मु. पृ. १४९ राज विलास का विलास १०

ता० १ शव्वाल (२७ अक्टूबर) को वादशाह ने अकवर और तहव्वार खां को रवाना किया। कुल युद्धों की सूची मआसरे आलमगिरी के अनुसार इस प्रकार है[63]

(१) ४ जनवरी १६६०– शाहाजादा अकवर का देवारी पहुँचना राणा का उदयपुर छोड़ जाना– आजम का उदयपुर शहर में जाना और मन्दिरों को नष्ट करना राणा का पीछा करने हेतु हसन अलीखां को भेजना।

(२) १६ जनवरी १६६० अकबर का उदयपुर जाना वहां से हसन अली खां को राणा का पीछा करने को भेजना और मन्दिरों को नष्ट करने के बाद वापस लोट आना और ता० २६ जनवरी को वापस आना।

(३) २४ जनवरी को स्वयं वादशाह का उदयसागर आना और ३ मन्दिरों को नष्ट करना।

(४) २३ फरवरी को वादशाह का चित्तौड़ आना और वहां ३६ मंदिरो को नष्ट करना।

(५) ४ मई को अकवर को चित्तौड़ जिले का अधिकारी नियुक्त करना।

(६) ६ मार्च को वादशाह का चित्तौड़ छोड़कर अजमेर २२ मार्च को पहुंचना।

(७) १४ जून को आजम को चित्तौड़ पर नियुक्त करना और अकवर को मारवाड़ भेजना।

चित्तौड़ में शाहाजादा अकबर की स्थिति

शाहाजादा अकवर के सहायक हसन अली खाँ और तहव्वरखाँ थे। मुगल सैनिक राजपूतों के इस क्षेत्र में जो पहाड़ों और जगंलो से आच्छादित था जाने से डरते थे। शाही थानों की थानेदारी तक लेने

(६३) सरकार– औरंगजेब भाग ३ के पृ.

में लोग आशंकित रहते थे। हसन अली खां स्वयं भी इतना आशंकित था कि पहाड़ो में जाने से डर गया था। एक बार नैंनवाड़ के पास इसका सामना रावत महासिह (वंगू वाले) रावत रतन सिंह (सलूम्बर का) और पार सोली के राव केसरी सिंह से हुआ। वहुत परेशानी के बाद १ शाही सैनिक सकुशल लोट सके थे। इससे वे चित्तौड़ गये जैसा कि ऊपर वर्णित है। यहां बानसी के केसरी सिंह शेखावत के पुत्र गंगदास ने चैन की सांस नही लेने दी। मुगल सेना का लूटी और ६ हाथी छीनकर महाराणा को भेट किये। दयालदास ने मालवा और भीमसिह ने गुजरात में लूटमार शुरू कर दी। राजपूतों का उत्साह कम नहीं हुआ। धीरे २ सारे थानों से बादशाही अमल उठ गया था। केवल चित्तौड़ अभी तक महाराणा के पास नहीं आ सका था। वि. सं. १७३७ में कुंवर जयसिंह ने शाहाजादा अकबर के खजाने को लूट लिया। उसके तम्बू तोड़ डाले और नक्कारा छीन लिया।[64] राज विलास के वर्णन के अनुसार अकबर ने भाग कर चान वचाई। इस युद्ध में चन्द्रसेन झाला सवलसिह चौहान. रतनसिह चूंडावत गंगदास शक्तावत आदि ने बड़ी वीरता दिखाई। यह घटना २२ मार्च सन् १६६० को सम्पन्न हुई थी।

---

(६४) झालाख्य चद्रसेनेन चोहानेन चमूभृता ॥
तथा सवलसिहेन रावेणरण सूरिणा ॥२१॥
केसरीसिह नाम्ना तद्धात्रा रावेण शोभितः
राठोड़ गोपीनाथेन अरि सिह सूनुना ॥२२॥
संगे गृहीत्वा प्रययौ चित्रकूतटि प्रति।
ततस्तेठक्कुरा रात्रौ संगरं चक्रु सन्मदाः ॥२५॥
सहस्त्र संख्यान्दिल्लीशलोकान् जघ्नुर्गजमयं।
ये नागतास्तांस्तुरगान्निः गृतस्तदकव्वर : ॥२६॥
पंचास तुरगान्वीरा गृहीत्वा तान्नयवेदयन्।
कुमार जयसिहाय जयसिहोनुदंदधे ॥२७॥ राज सर्ग २२

शाहजादा आजम और चित्तौड़

कुछ दिनों के पश्चात् आजम को चित्तौड़ भेजा इसकी सहायता के लिए भदारिया का राजा उद्योतसिंह को भेजा[65] जो दिसम्बर १६६० ई. में वहां पहुंचा। इसी समय महाराणा राजसिंह की मृत्यु २२ अक्टूबर १६८० को हो गई। और उनके स्थान पर उनके राजकुमार जयसिंह महाराणा बना। फारसी तवारीखों से पता चलता है कि राजपूतों ने मुअज्जम को जो उदयपुर के पास था अपनी ओर मिलाने का उद्योग किया था। इसके लिए केसरी सिंह चौहान रावत रतनसिंह चूडावत आदि को भेजा। उस समय शाहजादा उदयसागर के पास ठहरा हुआ था। उसके पास राजपूतों के वकीलों के आने की सूचना जब अजमेर पहुंची जो उसकी मां नवाववाई ने उसको सावधान करके लिखा कि तुम इन मक्कार लोगों के चक्कर में मत आना। इससे उसने उनका वहां आना वन्द करवा दिया। इससे इन लोगों ने अकवर से मेल करने की कोशीश की। इसकी सूचना उसने वादशाह को दी तो उसने विश्वास नहीं किया और कुरान की एक आयत "हाजा वुहतानुन" (यह झूठ है) लिखकर भेजा। ता० १७-१-१६८१ को अकवर के विद्रोह के समाचार सुने तो लड़ाई का स्वरुप ही वदल गया। उस समय वादशाह के पास केवल मात्र कुछ निजी सेवकों के अतिरिक्त थोड़े सैनिक थे। मुअज्जम शीघ्र ही सेना सहित अजमेर चला गया। ३ दिन में ८० कोस की यात्रा उसने वड़ी कुशलता से पूरी की। खफी खां के अनुसार वादशाह ने उसका विश्वास नहीं किया और कहलाया कि अगर नेक नियत से आये हो तो अपने२ दोनों वेटों को लेकर अकेले चले आओ उसने ऐसा ही किया।

आजम की फोज का जो चित्तौड़ में ठहरी हुई थी एक वार दयाल दास के साथ संघर्ष हुआ। दयालदास ने रात्री को अचानक शाहजादे पर आक्रमण किया। इस पर शाही फोज ने भी प्रत्याक्रमण

(६५) "भागो सादजादा गयो गढ़ अजमेर अनिट्ठ" राज विलास १८/९७ ओझा उ. इ. पृ० ५८२

किया। इसमें संघर्ष बड़ा प्रवल हुआ। दयालदास को विवश होकर भागना पड़ा। उसकी वीर पत्नि ने मुसलमानों के कहीं न पड़जाये अपने हाथ से उसे मारने को कह दिया। किन्तु दुर्भाग्य से भागते हुए दयालदास की एक पुत्री को मुसलमान उठा ले गये। आजम ने संधि के लिए श्याम सिंह को भेजा और इसकी सलाह के अनुसार महाराणा ने चौहान रुक्माङ्गद राव केसरी सिंह आदि के साथ अर्जी लिखकर बादशाह के पास भेजा। बादशाह ने संधि की बातचीत को स्वीकार कर ली। इस संधि के अनुसार महाराणा को पुर मांडल और बदनौर के इलाके बादशाह को देने पड़े। शेष सारा भाग वापस महाराणा को मिल गया। यह घटना १८ जुलाई सन् १६८१ को हुई थी।

महाराणा जयसिंह और राजकुमार अमरसिंह में झगड़ा

महाराणा जयसिंह और राजकुमार अमरसिंह में परस्पर विरोध हो जाने के कारण अमरसिंह उदयपुर छोड़कर चित्तौड़ की तरफ चला गया और वहां दुर्ग पर अधिकार कर लिया। उसके साथ रावत केसरसिंह, रावत महासिंह महाराज सूरतसिंह, झला सज्जा आदि सरदार भी गये। महाराणा ने भी सेना लेकर चित्तौड़ की ओर प्रस्थान किया। यह समाचार मिलते ही राजकुमार चित्तौड़ छोड़कर चला गया। कुछ समय बाद महाराणा और राजकुमार के मध्य समझौता हो गया।

मेवाड़ मराठा सम्बन्ध

महाराणा जयसिंह के बाद अमरसिंह II उत्तराधिकारी बना इसने डुंगरपुर बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ वालों को मेवाड़ के वापस अधीन बनाया। सवाई जयसिंह और अजीतसिंह को सहायता देकर महत्वपूर्ण कार्य किया। इसका उत्तराधिकारी महाराणा सांगा II हुआ। शाह ने इसके समय में मेवाड़ में अपना राजदूत भेजकर मालवा और गुजरात के सूबों से चौथ के अधिकार के लिए बादशाह को लिखने को

६६. ओझा– उ. इ. भाग २ पृ.

हां ।[67] इस महाराणा को मालवे में मराठों के संभावित भय काआभास ो गया था । इसने सवाई जयसिंह को भी इससे सूचित किया था । ोनों की धारणा थी कि मराठों को मालवे में १० लाख की जागीर दे ना चाहिये । जयसिंह को मालवे से मोह था । अतएव उसने बादशाह इसकी सूबेदारी प्राप्त की और महाराणा के साथ एक इकरार भी किया गया जिसमें आमदनी का विभाजन मेवाड़ और जयपुर में :२ का किया गया था । लगभग १ वर्ष के बाद ही सन् १७३३ में जयसिंह की मन्दसौर में मराठों के हाथ हार हो गई और मराठों को भारी रकम आदि देनी पड़ी ।[68] संग्रामसिंह ने रामपुरा का परगना बादशाह से प्राप्त कर लिया था । इसकी व्यवस्था के लिए प्रारम्भ में राठौड़ दुर्गादास को लगाया । बाद में इसे सवाई जयसिंह के पुत्र और मेवाड़ के भानजे माधोसिंह को संवत् १७८६ चैत्र सुदि ६ गुरुवार को दे दिया गया ।[69]

संग्रामसिंह के बाद मराराणा जगतसिंह उत्तराधिकारी हुआ । इसके समय में हुरड़ा में एक सम्मेलन राजपूत राजाओं का वि. १७९१ श्रावण वदि १३ (१७३४ ई.) को किया गया ।[70] इसका कोई फल नहीं निकला । बाजीराव पेशवा उत्तरीभारत की यात्रा करते समय फरवरी १७३६ ई० में उदयपुर आया । इसने बनेड़ा के परगने की मांग की । महाराणा ने ८ वर्ष के लिए एक संधि करके बनेड़ा की आमदनी को पेशवा को देना स्वीकार किया । इस संधि के अन्तर्गत कुल १२,२५,०० की राशि दी गई नी । जयपुर गृहयुद्ध में मेवाड़ की अत्यधिक शक्ति

(६७) पूर्व आधुनिक राजस्थान पृ. १५६ । मेवाड़ एण्ड दी मराठा रिलेसन्स (डा० के० एस० गुप्ता का अप्रकाशित शोध निबंध पृ. ४६)

(६८) के. एस. गुप्ता–मराठा एक रिलेशन (अप्राशित) पृ. ४८ से५१

(३६) शोध पत्रिका वर्ष ६ अंकर पृ.१६३

(७०) उ.इ. भाग २ पृ. ७२६/पूर्व आधुनिक राजस्थान पृ. ६६३

लगी ।[71] जगतसिंह के वाद महाराणा राजसिंह II इसका उत्तराधिकारी व्यवहार के कारण अधिकांश सरदार उससे अप्रन्न हो गये और उसे हटाने के लिये प्रयत्न करने लगे। महाराणा राजसिंह II के पुत्र रत्नसिंह का पक्ष लेकर कई सरदार उसको राजगद्दी से हटाने का प्रयत्न करने लगे। मल्हारराव होल्कर मेवाड़ पर वि. १८२० में आक्रमण कर एक वड़ी राशि लेकर लोटा।

चित्तौड़ के लिये अरसी और रत्नसिंह के पक्ष वालों में युद्ध

रत्नसिंह के पक्ष वालों ने कुंभलगढ़ पर अधिकार कर लिया। मेवाड़ में नियुक्त मराठा सरदार यशवन्तराव वावले और सदाशिव गंगाधर को अपने पक्ष में कर लिया। दोनों ही पक्ष वालों ने सरदारों को अपने २ पक्ष में करने के लिए वड़े प्रयत्न किये। २६ नवम्वर १७६५ को वनेड़ा के रायसिंह को एक पत्र महाराणा के पक्ष वालों की तरफ से लिखा गया और वह उदयपुर भी शीघ्र चला गया। शाहपुरा के राजा को काछोला का परगना देने पर वह महाराणा के पक्ष में हो गया। झाला झालमसिंह महाराणा के पक्ष मे होकर उदयपुर आ गया [72]

मराठों को भी दोनों पक्ष वाले अधिकाधिक राशि देकर अपने पक्ष में करना चाह रहे थे। इसमें महाराणा ने अपने जागीरदारों से भी हिस्सा लिया था। सन् १५६४ में मराठों को दी जाने वाली राशि के मामले में देलवाड़ा के राघवदेव से महाराणा का झगड़ा भी हो गया था। सन् १७६५ मार्च में महादजी सिंधिया को महाराणा ५ लाख रुपया देकर आक्रमण टालना पड़ा। दिसम्बर १७६७ में जावद के पास मोरवन में होल्कर और सिंधिया की सेनायें एकत्रित हुई। महाराणा ने भी अमरचंद महता और झाला झालमसिंह की अध्यक्षता में सेना भेजी। वनेड़ा का राजा रायसिंह भी जावद आकर इस सेना में

---

(७१) मेवाड़ ऐण्ड मराठा रिलेसन्स (अप्रकाशित) पृ. ६०

(७२) वनेड़ा संग्रहालय के अभिलेख की भूमिका।

सम्मलित हो गया। किन्तु युद्ध नही होकर दोनों ही पक्ष में संधि हो गई और सिंधिया अजमेर की तरफ चला गया। रतनसिंह के पक्ष हुआ। इसका शासन काल अल्प कालीन था। इसके पश्चात् महाराणा जगतसिंह का अरिसिंह द्वितीय मेवाड़ का उतराधिकारी बना। इसके कटु वालों ने मराठों को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया किन्तुम हाराणा ने पेशवा से सिंधिया के प्रतिनिधियों को उसकी सहायता करने का पत्र लिखवा दिया। रतनसिंह के पक्ष वालों ने उसे लेकर उज्जैन में महादजी के पास चले गये। सिंधिया खुद २ मील तक उनकी अगवानी को आया और ३० लाख रुपयों की एवज में सिंधिया ने सहायता का आश्वासन दिया। महाराणा को इससे दुःख हुआ और अपनी सेना इनके विरुद्ध भेजी। १३ जनवरी १७६९ को क्षिप्रा के तट पर युद्ध हुआ।[73] इसमें मेवाड़ की प्रारंभ में तो विजय हुई किन्तु जयपुर से महापुरुषों की सेना आ जाने से हार हो गई। महादजी ने चित्तौड़ जीतकर वहां मेहता सूरतसिंह को लगाया वहीं से उदयपुर पर भी चढ़ाई की। युद्ध कई दिनों तक चलता रहा। सिंधिया को कोई विशेष सफलता नही मिली वह भी संधि का इच्छुक था। संधि की बात शुरू की। रकम की बात लम्बी वार्ता के बाद पूरी हो गई। २५,७५,००० राशि नगद दी गई बाकी की रकम की एवज में जावद जीरण नीमच और मोरवन की व्यवस्था महाराणा और सिंधिया द्वारा सामूहिक की जाने लगी और ६० गांव मराठों को दे दिये गये।[74]

मराठों से निपटने के बाद महाराणा ने रावत भीमसिंह के साथ फोज भेजकर चित्तौड़ पर वापस अधिकार कर लिया। यह घटना १२ नवम्बर १७७१ ई० को हुई।

---

(७३) पूर्व आधुनिक राजस्थान पृ. १८३/मेवाड़ एक मराठा रिलेसन्स (अप्रकाशित) पृ. ११९–१२०

(७४) उक्त पृ. १३३

बेगूं की लड़ाई

महाराणा अरिसिंह कीमृत्यु के बाद महाराणा हमीर II गद्दी पर बेठा। बेगूं का ठाकुर मेघसिंह महाराणा के विरुद्ध होकर उत्पात करता था। इसके विरुद्ध सिंधिया से सहायता मांगी। सिंधिया ने बेगूं को घेर लिया और नो लाख तिरेसठ हजार रुपये लेकर संधि की गई। इसमें से ४,२१,००० नगद दिये गये बाकी के लिये सिंगोली और भिंडोर परगने के कुछ गांव दिये गये। बेगूं को कोटा राज्य ने सहायता दी थी [75]।

सिंधी सिपाहियों का उपद्रव और चित्तौड़ की लड़ाई

मेवाड़ आन्तरिक झगड़ों के कारण बड़ा कमजोर हो गया था। मराठों को नियमित रूप से भारी रकमें चुकानी पड़ रही थी। इसलिए सिंधी सिपाहियों का वेतन समय पर नहीं चुकाया जा सका। इन सिपाहियों ने ४० दिन तक राज महल घेरे रक्खा। इसपर राजपूत सरदार भी महाराणा की सहायतार्थ आये। कुरावड़ से अर्जुन सिंह को बुलाया। उसने सिंधियों को समझाया। उन्होने किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति को ओल में रखने को कहा। इसपर राजकुमार भीमसिंह को ओल में रखा गया। ये लोग चित्तौड़ की ओर बढ़े। इस समय बहिरजी ताकपीर नामक मराठा सेना नायक ने मेवाड़ में आक्रमण किया और गांवों को लूटने लगा। राजकुमार भीमसिंह के कहने पर सिंधी सिपाहियों ने मराठों को हराकर भगादिया।[76]

निम्बाहेड़ा आदि का भाग मराठों को देना

सिंधिया को जीरन आदि का भू भाग जब मेवाड़ से मिला तो अहिल्या बाई ने भी मेवाड़ से उतना ही हिस्सा मांगा। इस पर निम्बाहेड़ा का परगना होल्कर को देना पड़ा। अगले वर्ष बहिर जी ताकपीर ने मेवाड़ पर आक्रमण किया और बकाया की राशि चाही।

(७५) उ. इ. पृ. ६६८/कोटा का इतिहास पृ. ४८५
(७६) उ. इ. पृ. ६६८

इस पर रामपुरा परगने के कुछ गांव दिये गये। अगले वर्ष वह सिंधिया की इच्छा के विरूद्ध मेवाड़ में चढ़ आया अतएव उसे हटाने के लिये लाल जी वल्लाल को भेजा गया।[77]

मराठों को मेवाड़ से निकालने का प्रयास करना

महाराणा हमीर II की बाल्यावस्था में ही मृत्यु हो गई। अतएव उसके छोटा भाई भीमसिंह को मेवाड़ का महाराणा बनाया। महाराणा ने देवगढ़ के रावत राघव दास को अपनी ओर मिला लिया। मेवाड़ में उस समय चूडावतों और शक्तावतों में एक सामूहिक रुप से मराठों से लड़ने का प्रयास किया जाने की बातचीत चलरही थी। मराठे भी ईस्टइंडिया कम्पनी से लड़ाई में व्यस्त थे। महाराणा ने सोमचन्द गांधी को प्रधान बनाया। मराठे १७८७ ई० में लाल सोट में हार चुके थे। अतएव सोमचन्द ने कोटा की सेना की सहायता से निम्बाहेडा, तिकुम्भ, जीरण आदि स्थानों पर वापस मेवाड़ का अधिकार स्थापित कर लिया। किन्तु यह विजय क्षणिक ही रही। होल्कर और सिंधिया ने वापस आक्रमण कर इस भाग को जीत लिया।[78]

चूंड़ावतों का चित्तौड़ पर अधिकार

चूंडावतों ने सोमचन्द गांधी की हत्या कर दी। इसके बाद चूंडावत चित्तौड़ की ओर बढ़कर वहां के किले को अपने अधिकार में ले लिया। महाराणा ने चूंडावतों से चित्तौड़ को अधिकृत करने के लिये पुष्कर में महादजी सिंधिया के पास झालिम सिंह झाला तथा अपने मंत्रियों को भेजा। सिंधिया से यह तय हुआ कि चूंडावतों को चित्तौड़ से हटाकर कुल ६४ लाख रुपया दंड के रूप में लिया जायगा जिसमें से ४८ लाख महादजी लेगा शेष महाराणा। झालिमसिंह और अम्बाजी इंगलिया चित्तौड़ की ओर बढ़े। मार्ग में हमीरगढ़ पर अधिकार कर

(७७) डा० गुप्ता मेवाड़ एण्ड मराठारिलेसन्स (अप्रकाशित) पृ. १३५–४६
(७८) उपरोक्त पृ. १५७–६२

लिया। महादजी स्वयं महाराणा से मिल कर के चित्तौड़ आया। चूंडावत भीमसिंह के अधिकार में उस समय चित्तौड़ दुर्ग था। उसने संयुक्त सेना देखकर कहलाया कि वह चित्तौड़ खाली करने को तैयार है बशर्ते कि महाराणा झालिमसिंह को वापस कोटा भेज देवें। महाराणा ने इसे स्वीकार कर लिया।[79] महाराणा ने वहां जयचन्द गांधी को लगाया।

घोसुंडा की लड़ाई

अम्बाजी इंगलिया को महादजी ने अपनी ओर से मेवाड़ में नियुक्त किया था। इसने कुछ व्यवस्था सुधारी किन्तु शीघ्र ही इसको पूर्वी भारत में नियुक्त कर दिया। तब इसने अपनी ओर से गणेशपंत को नियुक्त किया। दोलतराव सिंधिया ने मेवाड़ में लकवा दादा को लगाया था। दोनों पक्षों में बराबर युद्ध होता रहा। गणेशपंत लावा से हारकर चित्तौड़ की ओर भागा। फिर एक अन्य लड़ाई में हारने के कारण उसे हमीर गढ़ के किले में शरण लेनी पड़ी। कुछ समय अम्बाजी का पुत्र व भाई बालेराव झाला झालिमसिंह भी सेना आदि लेकर आये किन्तु गणेशपंत और बालेराव के मध्य परस्पर झगड़ा हो जाने के कारण युद्ध नहीं हो सका और लकवा दादा का पक्ष प्रबल हो गया।[80]

अन्य घटनायें

महाराणा भीमसिंह के अन्तिम दिनों में मराठों का उत्पात बढ़ता रहा। कृष्णा कुमारी के झगड़े को लेकर बड़ा विवाद चला। अन्त में उसे आत्म बलिदान करना पड़ा। अमीरखां पिंडारी और बापू सिंधिया ने बड़े अत्याचार किये। १३ जनवरी सन् १८१८ में मेवाड़

---

(७९) उपरोक्त पृ. १६६ से १८०/टॉड भाग १ पृ. ५१७। उ. द. ६८० ८२/वी. वि. भाग २ पृ. प्रकरण १५/पूर्व आधुनिक राजस्थान पृ.

(८०) उ. द. पृ. ६८१

को अंग्रेजों से संधि करनी पड़ी। इससे उजड़े हुए मेवाड़ को वापस वसाने में बड़ी सहायता मिली। कर्नल टॉड इसी समय मेवाड़ में रहा एवं सरदारों और महाराणा के मध्य वापस अच्छे सम्बन्ध स्थापित करा आन्तरिक व्यवस्था में बड़ा सुधार किया।

इसके पश्चात् चित्तौड़ क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय घटनाएं नहीं हुई।

महाराणा सज्जनसिंह और चित्तौड़

महाराणा सज्जन सिंह के समय में चित्तौड में एक उल्लेखनीय दरवार हुआ। इसमें भारत सरकार की ओर से गवर्नर जनरल लार्डरिपन स्वयं आया और २३।११।१८८१ ई० को एक समारोह में महाराणा को उक्त गवर्नर जनरल ने जी० सी० एस० आई० के खिताब का चोगा हार आदि पहनाया। चित्तौड़ दुर्ग के प्रचीन स्थान देखे। किले के प्राचीन स्थानों की मरम्मत आदि के लिये २४००० प्रति वर्ष स्वीकृत किये। कीर्ति स्तम्भ का उपरी भाग विजली के कारण गिरा पड़ा था उसे वापस ठीक करवाया।

महाराणा फतहसिंह और चित्तौड़

महाराणा फतहसिंह के समय सबसे उल्लेखनीय घटना चित्तौड़ उदयपुर रेल्वे का बनना है। रेल्वे बनाने की योजना महाराणा सज्जन सिंह के समय शुरु हो गई थी किन्तु बीच में काम बन्द हो गया। सन् १८८३ में कर्नल टॉमसन की निगरानी में चित्तौड़ से देवारी तक रेल वनी जिसे सन् १८९९ में उदयपुर तक वढ़ा दिया गया। सन् १९०३ में सम्पन्न दिल्ली दरवार में दिल्ली स्टेशन से लोटकर आने में इन महाराणा ने वड़ी निर्भीकता दिखाई।

विजोलिया में १९२२ ई० में ठिकाने के जबरन कर उगाहने के विरुद्ध आन्दोलन शुरु हुआ। यह आन्दोलन कई वर्षों तक चला। इसमें श्री पथिक, माणिक्यलाल वर्मा आदि ने उल्लेखनीय कार्य किया।

सन् १६२६ में मेवाड़ सरकार ने भूमि सम्बन्धी कई सुधारों की घोषणा की। इससे काश्तकारों को लाभ हुआ।

महाराणा भूपालसिंह और भगवतसिंह

महाराणा भूपालसिंह मेवाड़ के उल्लेखनीय शासकों में से थे। इनके समय में कई सुधार हुये। चित्तौड़ में भूपाल महल और फतह प्रकाश महल पूर्ण हुये। इनके शासनकाल में राजस्थान बना उस समय मेवाड़ राज्य का भू भाग इसमें सम्मलित हो गया और इन महाराणा साहब को "महाराज प्रमुख" का पद दिया गया जो किसी नरेश को नहीं दिया गया। इस समय सबसे उल्लेखनीय घटना गाडुलिये लुहारों का चित्तौड दुर्ग पर प्रवेश कराना है। यह कार्य भारत के प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरु की अध्यक्षता में ६–४–१६५६ को सम्पन्न हुआ। इसमें माणिक्यलाल वर्मा ने प्रधान भूमिका अदा की।

महाराणा भूपालसिंह के उत्तराधिकारी महाराणा भगवतसिंह हुये। ये बडे कला प्रेमी और सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने वाले हैं। इस प्रकार सैंकडो वर्ष प्राचीन गुहिल राजवंश का यहां अधिकार रहा है।



चौथा अध्याय

चित्तौड़ क्षेत्र वलिदान के लिये जगत विख्यात है। यहां के राजपूतों ने वीरता पूर्वक शत्रुओं से सदैव लोहा लिया है और यहां की स्त्रियों ने जौहर की ज्वाला में कूद कर अपना नाम अमर कर लिया है। साहित्य के क्षेत्र में भी चित्तौड़ किसी तरह पीछे नहीं है। पूर्व मध्यकाल में यह विद्या का बहुत बड़ा केन्द्र था। इस स्थल पर भवानी के साथ सरस्वती की साधना भी अद्वितीय रही है। यहां कई उल्लेखनीय साहित्यकार शिल्पशास्त्री संगीतकार दार्शनिक लेखक व भक्त हुये जिनका महत्व अन्तर्राष्ट्रीय है। जिनमें सबसे उल्लेखनीय सिद्धसेन दिवाकर, हरिभद्र सूरि महाकवि माघ का वंशज आयुर्वेदाचार्य माहुक, दिगम्बर विद्वान एलाचार्य, हरिषेण, जिनवल्लभ सूरि मंडन जिनहर्ष,मीरावाई आदि उल्लेखनीय है जिनका वर्णन इस प्रकार है।

जैन साहित्य-(श्वेताम्बर)

१-सिद्धसेन दिवाकरः—

सिद्धसेन दिवाकर के पिता का नाम देवर्षि और माता का नाम देवश्री बताया जाता है। इनका जन्म स्थान वर्तमान उज्जैन के आस पास कहीं था और ये चित्तौड़ में दीर्घकाल तक रहे थे। ये विद्याधर आम्नाय के थे और पादलिप्त सूरि परम्परा में हुये स्कन्दिलाचार्य के पट्टधर थे। इनके आविर्भाव काल के सम्वन्ध में मतभेद है। अधिकांश ग्रन्थों में इन्हें विक्रमी संवत के प्रवर्तक विक्रम से सम्वन्वित [1] माना है।

---

(१) उन कथाओं में उज्जैन में पार्श्वनाथ प्रतिमा के प्राकट्य सम्वन्वी, विक्रम को जैन धर्म में दीक्षित करने और वड़े संघ निकालने का उल्लेख है। इनकी प्रेरणा से उक्त राजा ने शत्रुञ्जय का उद्धार किया था—

संपइ विक्कम वाहड़ सालपलित्ता मदत्तरायाइ।
तं उद्धरिहिंति तयं सिरि सत्तुंजय महातित्थं।–(शत्रुञ्जय महातीर्थ कल्प)

किन्तु इनके ग्रथों के अन्तर्साक्ष्य के आधार पर यह अप्रमाणित सिद्ध होता है। हरिभद्र सूरि ने अपने पंच वस्तु में इनका स्मरण [2] किया है। जिनदास महत्तर ने नन्दिचूर्णि में जिसे वि०सं० ६३५ में पूर्ण [3] किया था इनका उल्लेख कई स्थानों पर किया है। हर्मनजेकोबी और जुगल किशोर मुख्तार इन्हें बौद्ध आचार्य धर्मकीर्ति के आसपास हुआ मानते हैं। इनका आधार सिद्धसेन के न्यायावतार ग्रंथ में धर्मकीर्त के प्रमाण समुच्चय में प्रयुक्त "भ्रान्त अभ्रांत" स्वार्थ और पदार्थ आदि शब्दों का होना है। इसी प्रकार समन्त भद्र के रत्नकरंड श्रावकाचार का भी इन पर प्रभाव माना जाता है। इनका श्री सुखलाल सिंघवी ने अपने द्वारा सम्पादित सम्मति प्रकरण की भूमिका में सविस्तार से उत्तर दिया [4] है। जिन विजय जी ने इन्हें ५३३ ई के आस पास हुआ माना[5] है। जिसे अधिकांश विद्वान ठीक मानते हैं।

ऐसी मान्यता है कि आचार्य सिद्धसेन एकवार घूमते घूमते चित्तौड़ आये यहां एक चैत्य के पास विचित्र स्तम्भ देखा जिसमे कई ग्रंथ संग्रहित थे। इन्होने शासनदेवता की कृपा से कई ग्रंथ प्राप्त कर लिये। इनके द्वारा विरचित ग्रंथों में न्यायावतार सम्मति प्रकरण और कल्याण मंदिर स्तोत्र प्रमुख है।

---

(२) भण्णइ एगतेणं अम्हाण कम्मवायणो इट्ठो। णयणो सहावबाओ सुअकेवलिणा जओ भणिअं ॥१०४७॥ आयरिय सिद्ध से रोण सम्मइए पइट्ठि अजसेणं। दुसमणि सादिवागर कप्पत्तणाओ तद्क्खेणं ॥१०४८॥ (पंचवस्तु)

(३) "सकराजतो पंचसुवर्षशतेषु नंद्यध्ययन चूर्णिसमाप्ता"

(४) अनेकान्त वर्ष ६ किरण ११–१२ में प्रकाशित "सन्म ति सूत्र और सिद्ध सेन" और जैन सत्य प्रकाश क्रमांक १०० पृ. १०८

(५) जैन साहित्य संशोधक खंड १ अंक १। पी. एल. वैद्य ने न्यायावतार की भूमिका में इनका काल निर्धारण ई. स. ७०३ के आसपास माना है।

"नय काण्ड" है। दूसरा काण्ड जीव काण्ड भी कहा जाता है इसे ज्ञान काण्ड और कहीं २ उपयोग काण्ड भी कहते हैं। श्री वेचरदास के अनुसार जीवकांड नाम गलत है क्योंकि इसमें जीव का कहीं वर्णन नहीं है। उसके विपरीत श्री जुगलकिशोर मुख्तार की धारणा है कि जीव द्रव्य से भिन्न ज्ञान और दर्शन की कहीं कोई सत्ता नहीं है। तीसरे काण्ड का नाम मिलता नहीं हैं सम्भवतया इसका नाम अनेकान्त काण्ड रहा होगा।[6]

न्यायावतार :—यह तर्क शास्त्र का प्रसिद्ध ग्रंथ है और संस्कृत में पद्यवद्ध है। इसमें की गई तर्कशास्त्र की कई व्याख्यायें आज भी अखंडित है। इसी- लिये इन्हें जैन तर्कशास्त्र का आदि पुरुष कहा जाता है। इस ग्रंथ के बारे में बहुत मतभेद है। दिगम्बर विद्वान इसे सिद्धसेन दिवाकर के एक शताब्दी वाद विरचित हुआ मानते हैं। इनका कहना है कि न्यायवतार का सिद्धसेन सम्मति प्रकरण के सिद्धसेन से भिन्न है एवं इन पर समन्त भद्र, पत्र केसरी, धर्मकीर्ति आदि का प्रभाव है। इनके विपरीत श्वेताम्बर विद्वानों की मान्यता है कि प्रो० टूची ने वौद्ध न्यायाचार्यों का वर्णन किया है कि जो धर्मकीर्ति के भी पहले हुये है और जिनके ग्रंथ अव नष्ट हो चुके हैं किन्तु उनके चीनी और तिब्बती अनुवाद आज भी उपलब्ध है। अतएव धर्मकीर्ति का प्रभाव नहीं माना जा सकता है।[7]

इनके अन्य ग्रंथों में कल्याण मंदिर स्तोत्र और द्वात्रिंश द्वात्रिशंका मुख्य है। कल्याण मंदिर स्तोत्र में कई जगह कुमुद चन्द्र नाम आता है। श्वेताम्बरों की मान्यता है कि सिद्धसेन का प्रारम्भिक नाम कुमुद चन्द्र था जबकि दिगम्वर विद्वान् इसे एक भिन्न आचार्य मानते हैं। द्वात्रिंश–द्वात्रिंशका में ३२–३२ पद्यों की ३२ कृतियां है

---

(६) श्री वेचरदास और सुखलाल सिंघवी द्वारा सम्पादित "सम्मति प्रकरण" की भूमिका। अनेकान्त वर्ष ६ किरण ११–१२ में जुगल किशोर मुख्तार का लेख

(७) "जैन लोजिक विफोर सिद्धसेन" न्यायावतार की भूमिका

इनका क्रम मुद्रित क्रम से भिन्न होना चाहिये । इसमें कई पद ऐसे हैं जो सिद्धसेन दिवाकर से सम्बन्धित नहीं जान पड़ते हैं ।

आचार्य सिद्धसेन के ग्रंथों का बहुत सन्मान किया गया है । मेरूतुगांचार्य ने प्रबन्ध चिन्तामणि के विक्रम प्रबन्ध, भरतेश्वरसूरि कृत प्राकृत कथावली, प्रभाचन्द्रसूरि कृत प्रभावक चरित, राजशेखर कृत चतुर्विंशति प्रबन्ध आदि में प्रसंगवश इनका वर्णन किया है ।

आचार्य हरिभद्र सूरिः—

आचार्य हरिभद्र सूरि बहुश्रुत विद्वान थे । इनका जन्म स्थान कहां था ? इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है । "कहावली" नामक ग्रंथ में इसे पिवंगुई नाम दिया है । यह स्थान कहां है यह ज्ञात नहीं हो सका है । निःसंदेह ये चित्तौड़ से सम्बन्धित थे । ऐसी मान्यता है कि ये चित्तौड़ के राजा जितारि के राजपुरोहित थे । गणधर सार्द्ध शतक की सुमतिगण की वृत्ति में स्पष्टतः इन्हें ब्राह्मण वंश में उत्पन्न वर्णित किया है । इसी प्रकार का उल्लेख प्रभावक चरित में भी है । इनके अविर्भाव काल के सम्बन्ध में भी मतभेद है । विचार श्रेणी में मेरुतुंग ने इन्हें ५८५ विक्रमी में हुआ माना है । मुनिसुन्दर कृत गुर्वावली में इन्हें मानदेव सूरि का समकालिक माना है जो पांचवी शताब्दी में हुये थे । उपमिति भवप्रपंच कथा के लेखक सिद्धर्षि ने इन्हें अपना गुरु बताकर एक कठिनाई पैदा करदी है क्योंकि इनका ग्रंथ विक्रमी सं. ९६२ में पूर्ण हुआ था । इसके पूर्व कुवलय माला ग्रंथ में जो विक्रमी सं. ८३५ में पूर्ण हुआ है हरिभद्र सूरि को स्मरण किया गया है । अतएव इनका जन्म उसके पूर्व निश्चित रूप से होना चाहिये । सिद्धर्षि की प्रशस्ति का विवेचन करते हुये जिनविजय जी ने लिखा है कि' वहाँ "अनागतम् परिज्ञाय" का अर्थ "अनागत मम वृतान्त परिज्ञाय" या

---

(८) जैन साहित्य संशोधक अंक १ खंड १ में जिन विजय जी का लेख । धर्म संग्राहिणी की भूमिका । एच. जेकब—समराइच्च कहा कि भूमिका । उपमिति भव प्रपंच कथा की भूमिका । के. बी. अभ्यंकर—विशंति विशंतिका की भूमिका

"अनागत मां परिज्ञाय" अर्थ लेना चाहिये जिसका अर्थ यही हो सकता है मानो हरिभद्र ने ललितविस्तरा ग्रंथ की रचना सिद्धर्षि के लिये ही की हो। अतएव इनका आविर्भाव काल कुवलय माला के पहले ही रक्खा जाना चाहिये जो आठवीं शताब्दी विक्रमी के लगभग होता है। जिन विजय जी द्वारा मानी गई तिथि को आज प्रायः सभी विद्धान ठीक मानते हैं।

इनके विरचित ग्रंथों में समराइच्च कहा और धूर्त्ताख्यान बड़े प्रसिद्ध हैं। समराइच्च कहा में राजा समरादित्य के ९ भवों का उल्लेख है। पूर्व जन्म में इस राजा का नाम गुणसेन था और अग्निशर्मा इसके पुरोहित का पुत्र था। गुण सेन बाल्यावस्था में इसे बहुत चिड़ाया करता था। अन्त में वह तंग आकर बन में तपस्या के लिये चला गया। कालान्तर में गुणसेन राजा हुआ। इसने अग्निशर्मा को ३ बार भोजन के लिये आमंत्रित किया किन्तु परिस्थितिवश खाना नहीं खिला सका। उस समय वह इस प्रकार का उपवास किये हुये था कि एक महिने में एक ही दिन खाना खाता था। अतएव तीसरे पारणे के दिन बहुत ही क्रोधित हो बदला लेने की ठानी। इस प्रकार वह ९ ही भवों में उसका विरोधी बना रहा। धूर्त्ताख्यान चित्तौड़ में विरचित किया गया था।[9] इसमें ५ धूर्त्तों का उल्लेख है। दर्शन और योग के क्षेत्र में भी इनका योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दर्शन सम्बन्धी इनके ग्रंथ उल्लेखनीय हैं। यथा षड दर्शन समुच्चय और शास्त्रवार्त्ता समुच्चय। सिद्धसेन की कृतियाँ पद्यवद्ध है किन्तु व्याख्या के अभाव में कई स्थल अब भी अस्पस्ट हैं जबकि हरिभद्र की कृतियां पाठ भेद की दृष्टि से एक दम स्पस्ट हैं। षडदर्शन समुच्चय में केवल मात्र ८७ पद्यों का संग्रह है। शास्त्रवार्ता समुच्चय में कर्मवाद पर विशेष जोर दिया गया है। अनेकान्त जयपताका धर्म संग्रहिणी में अन्य दर्शनों का खंडन किया गया हैं। योग सम्वन्धी कई ग्रंथ मिले हैं। यथा योग शतक, योग विंशिका योग दृष्टि समुच्च योग बिन्दु आदि।[10]

---

(९) धूर्त्ताख्यान की गाथा १२३ एवं १२४। इसमें "चित्तउड्ड दुग्ग" का उल्लेख है।

(१०) समदर्शीहरिभद्र चौथा और पांचवा व्याख्यान

प्रद्युम्न सूरि

महारावल अल्लट ने हूणों की सहायता से चित्तौड़ विजय किया। सोमदेव के नीतिवाक्यामृत में हूणों के चित्तौड़ आक्रमण का उल्लेख है। इस राजा की रानी हूण कुल की हरिया देवी थी। ऐसी मान्यता है कि उसे रेवती दोप था जिसे बलभद्र सूरि ने दूर किया था। अतएव उनका बड़ा सन्मान हो गया। इसी समय प्रद्युम्न सूरि बड़े विख्यात हुये। इन्होंने चित्तौड़ में चैत्यवासियों, और दिगम्बरों को शास्त्रार्थ करके हराया फिर भी दिगम्बरों और चैत्यवासियों का प्रभाव बना रहा।[11]

जिन वल्लभ सूरि

ये प्रारम्भ में चैत्यवासी थे और आसिका दुर्ग के कुर्चपुरीय गच्छ के जिनेश्वर सूरि के शिप्य थे। ये पाटण में अभयदेव सूरि के पास शिक्षार्थ आये थे। इन्होने चैत्यवासिग्रों की शास्त्र विरोधी प्रक्रियाओं से अप्रसन्न होकर इसे त्याग दिया और अभयदेव सूरि के पास दीक्षा ग्रहण की। यह घटना वि. सं. ११३८ के पश्चात् सम्पन्न हुई थी। उस संवत में लिखी विशेषावश्यक टीका की एक प्रति में इन्हें जिनेश्वर सूरि का शिप्य वर्णित किया है।[12]

गुजरात से ये चित्तौड़ में आये। यहां एक चंड़िका के मठ में आकर रात्रि को ठहरे। उस समय यहां चैत्य वासी अधिक थे। इन्होने उनकी बहुत आलोचना की और विधि चैत्यों की संस्थापना पर जोर दिया। ये कई शास्त्रों के ज्ञाता होने के कारण धीरे २ इन की ख्याति

---

(११) वादं जित्वाल्लुक क्ष्मापसभायां तलपाटके। आर्त्तंकः पट्टोयस्तं श्री पद्युम्नपूर्वजे स्तुवे" (समरादित्यसंक्षेप का प्रस्तावना श्लोक)

(१२) "सं. ११३८ पोषवदि ७। कोटाचार्यकृता टीका समाप्तेति ॥छ॥ ग्रंथाग्रमस्यां त्रयोदशसहास्त्राणि सप्तशताधिकानि १३७००। पुस्तकं चेदं श्री जिनेश्रसूरिशिप्यस्य जिनवल्लभगणेरिति (अप-भ्रंशकाव्यत्रयी की भूमिका)

बढ़ने लगी और इनके कई उपासक हो गये। इनमें सबसे उल्लेखनीय श्रेष्ठि बहुदेव, साधारण आदि थे। इन्होने चित्तौड़ में विधि चैत्यों की संस्थापना कराई। यहां से एक प्रशस्ति वि.सं. ११६४ की हाल ही में अहमदाबाद में प्रतिलिपि की हुई मिली है। इसमें मालवे के राजा नरवर्मा का उल्लेख है। स्मरण रहे कि उस समय मालवे पर नरवर्मा का अधिकार था जिसका अधिकार चित्तौड़ पर भी था। इन्होंने मन्दिरों में होने वाले शास्त्र विराधी कार्यों की निन्दा की। संव पट्टक की एक २ प्रति चित्तौड़ नरवर नागोर आदि में शिलाओं में खुदवा कर लगाई।

ऐसा प्रसिद्ध है कि एक बार उक्त नरवर्मा के दरबार में एक समस्या "कण्ठे कुठार, कमठे ठकार" एक दक्षिणी पंडित ने भेजी। इसकी पूर्ति वहां नहीं हो सकी इसलिए वहां से पूर्ति हेतु जिनवल्लभ सूरि के यहां चित्तौड़ भेजी गई। सूरिजी ने शीघ्र ही पूर्ति करके भिजवा दी। इससे नरवर्मा बड़ा प्रसन्न हुआ। जब जिनवल्लभ सूरि घूमते २ धारा पहुंचे तो राजा ने इन्हें अपने यहां बुलाया तथा २ लाख मुद्रा देने को कहा। इस पर ये लेने से इन्कार हो गये और कहा कि वे साधु हैं इनकी उन्हें आवश्यकता नहीं है आदि। केवल चित्तौड़ में नव निर्मित मंदिर के लिये कुछ व्यवस्था करने को कहा।[13]

अभयदेव सूरि अपने बाद इन को अपना पट्टधर बनाना चाहते थे किन्तु ये प्रारम्भ में चैत्यवासी थे अतएव लोगों का बड़ा विरोध था। इसीलिए इन्होने इसकी सूचना प्रसन्नचंद्राचार्य को दी। प्रसन्न चद्राचार्य ने इनकी सूचना देवभद्राचार्य को दी। लोगों का विरोध होने के कारण उस समय तो अभयदेव के बाद वर्धमान सूरि को पट्ट धर बनाया। थोड़े दिनों बाद वि.सं. ११६७ में इन्हें अभय देव सूरि के पद पर नियुक्त करने के लिये चित्तौड़ में बडा महोत्सव किया

(१३) खरतरगच्छ पट्टावली पृ. १३/ इसमें "चित्रकूट मण्डपिकातस्तत् शाश्वतदानं भविष्यतीति कृतम्" वर्णित है। अपभ्रंश काव्यत्रयी की भूमिका पृ० २६

गया। इसमें देवभद्राचार्य ने सोमचंद्र पंडित आदि को आमंत्रित किया। उस समय जिनवल्लभ सूरि नागौर में थे वहां से इन्हें बुलाया गया। वि. सं. ११६७ की कार्तिक वदि १२ को इनका चित्तौड़ में देहावसान हो गया। इनके उत्तराधिकारी जिनदत्त सूरि को चित्तौड़ में पट्ट घर बनाया[14]

जिनवल्लभ के द्वारा विरचित किये गये ग्रंथों में संघ पट्टक, धर्म शिक्षा द्वादश कुलक रूप प्रकरण, पिण्ड विशुद्ध पौषवविधि आदि बड़े प्रसिद्ध हैं।

रत्नप्रभ सूरि

१३वीं शताब्दी में रत्नप्रभ सूरि एक उल्लेखनीय आचार्य हुए हैं। ये चैत्रागच्छ के थे। ये भुवन चंद्र सूरि के शिष्य थे। घाघसा की वि.सं. १३२२ की प्रशस्ति की रचना इन्होंने ही की थी। शिलालेख में स्पष्टतः उल्लेख है कि रत्नप्रभसूरि को मेवाड़ के महारावल तेजसिंह का सम्मान प्राप्त था। इनके द्वारा विरचित एक अन्य और प्रशस्ति वि.सं. १३३० की चीरवा गाँव की मिल चुकी है। चैत्रागच्छ में भद्रेश्वर सूरि देव भद्र सूरि, सिद्धसोन सूरि जिनेश्वर सूरि विजयसिंह सूरि भवन सिंह सूरि रत्न प्रभ सूरि हुए थे।[15]

वि.स. १३२४ का एक शिलालेख चित्तौड़ की तलहटी में गंभीरी नदी के पुल के नीचे ६ वें कोठे में लग रहा है। इस लेख के अनुसार महाराजा तेजसिंह के प्रधान राजपुत्र कांगा ने रत्नप्रभ सूरि के आदेश से महावीर चैत्य की प्रतिष्ठा कराई[16] थी। यह मंदिर शहर में रहा होगा।

---

(१४) खरतरगच्छ पट्टावली पृ. १८

(१५) चीरवा की प्रशस्ति श्लोक ४५ से ४७

(१६) "संवत् १३२४ वर्षे इह श्रीचित्रकूट महादुर्गतहलट्टिकायाँ पवित्र-श्रीचैत्रगणव्योमाँगण तरणिस्वप्रपितामहप्रभुश्रीहेमप्रभसूरिनिवेशि-तस्य—प्रतिभासमुद्रकविकुंजरपितृतुल्यातुल्यवात्सल्य पूज्य श्री रत्नप्रभसूरिणामादेशात् राज भगवन्नारायणमहाराज श्रीतेजः-सिंहदेवकल्याण विजयिराज्येविजयमान प्रधानराजपुत्रकांगापुत्र-परनारीसहोदर—(वी० वि० भाग १ पृ० ३६६)

१५वीं और १६वीं शताब्दी के जैन साहित्यकार

महाराणा कुंभा के समय मेवाड़ में बड़ी उन्नति हुई। चित्तौड़ में इस समय कई महत्वपूर्ण ग्रंथ विरचित हुए थे। जैन साहित्यकारों में सोमदेव वाचक, चारित्ररत्न गणि, जिन हर्ष गणि, हीरानन्द सूरि आदि विशेष उल्लेखनीय है। सोमदेव वाचक तपागच्छ के थे। उन्हें राणकपुर मंदिर के महोत्सव के समय "वाचक" पद दिया गया था। महाराणा कुंभा इनका बड़ा सम्मान करता था। सोमसौभाग्य काव्य से पता चलता है कि ये बड़े विद्वान् और कई ग्रन्थों के लेखक थे। ये जब वाद-विवाद में उतर जाते थे तब इनके सामने कोई ठहर नहीं सकता था। गुरु गुण रत्नाकर में भी इसी प्रकार उल्लेखित है कि महाराणा कुंभा इनकी कवित्व कला के कारण इनका बड़ा सम्मान करता था।[17] जिन हर्ष गणि ने १४९७ में चित्तौड़ में वस्तुपालचरित और प्राकृत में रयण सेहरी कहा लिखे जो बड़े उल्लेखनीय हैं। चारित्ररत्न ने वि० सं० १४९५ में महावीर प्रसाद प्रशस्ति की रचना की थी। इसमें महाराणा कुंभा और उनके पूर्वजों का बड़ा सुन्दर वर्णन हो रहा है। आचार्य हीरानन्द के सम्वन्ध में "कामराज रतिसार" नामक हस्त लिखित ग्रंथ में वर्णन प्रस्तुत किया गया है। नाहटाजी के अनुसार ये राजस्थानी भाषा के भी विद्वान् थे। इनकी कलिकालरास (१४९६ वि०) आदि रचनायें हैं। कामराजरतिसार में महाराणा कुंभा ने "श्रीहीरानन्द सूरि दत्तोपदेशेन" वर्णित किया है। यह ग्रन्थ वि. सं. १५१८ में लिखा गया था। महाराणा कुंभा इन्हें गुरु मानता था।" "विजयन्ते गुरवः श्री हीरानन्द सूरीन्द्राः" उक्त महाराणा की सभा में इनका बड़ा सम्मान था। उसने इन्हें कविराजा की उपाधि भी दी थी। ये सम्भवतः कामशास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। वि०सं० १५१२ में जयकीर्ति के शिष्य ऋषि वर्द्धन ने नलदमयन्ती रास नामक ग्रंथ चित्तौड़ में लिखा था।[18]

---

(१७) सोम सोभाग्य १०/३८/गुरु गुण रत्नाकर काव्य १/१०७/महाराणा कुंभा पृ० २१३

(१८) महाराणा कुंभा पृ० २११ से २१८

महाराणा साँगा के समय चित्तौड़ में कुछ जैन साहित्यकारों का परिचय मिलता है। शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार प्रवन्ध में चित्तौड़ में धर्मरत्न सूरि और उनके शिष्य विनयमण्डन का उल्लेख मिलता है। धर्मरत्न सूरि ने महाराणा सांगा की सभा में पण्डित पुरूषोत्तम से शास्त्रार्थं किया और उसे हराया था इनके शिष्य विनयमण्डन दीर्घकाल तक चित्तौड़ में रहे थे।[19]

दिगम्बर जैन साहित्यकार

श्वेताम्बरों के साथ साथ दिगम्बर विद्वानों का भी उल्लेख मिलता है। इनमें आचार्य ऐलाचार्य और वीरसेन विशेष उल्लेखनीय हैं। इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार से पता चलता है कि वीरसेनाचार्य ने चित्तौड़ में शिक्षा प्राप्त की थी और गहाँ से जार वड़ौदा में धवला टीका[20] पूर्ण की थी। षडागम की कुल ६ टीकायें मानी जाती हैं जिनमें धवला अन्तिम है। इसमें ६२००० श्लोक हैं। इसी प्रकार "कषाय प्राभृत" की जयधवला टीका इन्होंने प्रारम्भ की थी। जिसे उनके शिष्य जिनसेनाचार्य ने पूरी की थी। धवला की अन्तिम प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि ये अच्छे विद्वान् थे। ये छन्दशास्त्र ज्योतिष और प्रमाण न्यायशास्त्र के ज्ञाता थे।[21] हरिभद्र सूरि भी प्रमाण न्याय शास्त्र के विद्वान् थे। इस प्रकार चित्तौड़ उस समय दर्शन के अध्ययन का अच्छा केन्द्र वन गया था।

धवला में कहीं कहीं कहीं अस्पष्टता रख दी है। जहाँ अर्थ स्पष्ट नहीं हो सका अथवा अन्य ग्रंथों से विरोध पाया गया वहाँ इन्होंने अपनी ओर से कोई निर्णय नहीं दिया है। वहां यह कह कर टाल दिया है कि इसका निर्णय आगाम में निष्णाँत आचार्य करें या यह कहकर

---

(१९) शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार प्रवन्ध भूमिका पृ० ११

(२०) इन्द्रनन्दि कृत श्रुतावतार श्लोक १७६ से १७६ से १७८

(२१) सिद्धंत–छन्द–जोइस–वायरण–पमाणसत्थ–णिवुणेण।
भड़ारएण टीका लिहिया एसा वीरसेणेण।५। धवला की प्रशस्ति

मी टाल दिया है कि इस सम्बन्ध में गौतम गणधर से पूछा जावे। इस ग्रन्थ की परिसमाप्ति शक सं० ७३८ कार्त्तिक शुक्ला १३ को हुई।

महाकवि डड्ढा

महाकवि डड्ढा श्रीपाल के पुत्र थे। इसका लिखा हुआ प्राकृत ग्रन्थ "पञ्च संग्रह" बड़ा प्रसिद्ध है। आचार्य अमितगति ने इसका संस्कृत अनुवाद किया था। पं० हीरालालजी ने प्राकृत पञ्च संग्रह को आर्वाचीन बतलाया है किन्तु डा० कैलाशचन्द्र शास्त्री के अनुसार यह अर्वाचीन नहीं है और अमित गति के पूर्व की रचना है। दोनों विद्वानों की धारणा है कि डड्ढा की रचना मूल गाथाओं के अधिक निकट है और कई स्थलों पर यह अमितगति से अधिक सुन्दर है।

इस ग्रंथ के अवलोकन से प्रतीत होता है कि इसने कई पूर्वाचार्यों के ग्रंथों का अवलोकन किया था। उदाहरणार्थ शतक प्रकरण में पृ० ६८३ पर जो मिथ्यात्व के पाँच भेदों के स्वरूप गद्य में लिखा है वह पूज्यपाद की स्वार्थसिद्धि (वि० वी० ६ठी शताब्दी) के अध्याय आठ सूत्र एक से प्रभावित है। सप्ततिका के अन्त में पृ० ७३७ में "उक्ते च" कह कर जो कारिका वर्णित है वह अकलंकदेव के लघीयस्त्रय प्रकरण के ७वें परिच्छेद की चतुर्थ कारिका है। जीवन समास प्रकरण पृ० ६६७ वीरसेन की धवला टीका से लिया गया है। इस प्रकार उस समय यह नगर विद्या का बड़ा केन्द्र रहा प्रतीत होता है।[22]

इसने सिर्फ एक श्लोक में अपना संक्षिप्त परिचय दिया है। इसमें सिर्फ यही वर्णित है कि चित्रकूट का रहने वाला प्राग्वाट जैन था। इसका नाम डड्ढा और पिता का नाम श्रीपाल था।[23]

---

(२२) राजस्थान जैन साहित्य परिषद (६९–६८) के वार्षिक अधिवेशन की पत्रिका मे कैलाशचन्द्र शास्त्री का लेख पृ० ४९ से ५२

(२३) श्रीचित्रकूट वास्तव्य प्राग्वाट वणिजो कृते।
श्रीपालसुतडड्ढेण स्फुटः प्रकृति संग्रह (उक्त पृ० ५३)

हरिषेण:—

हरिषेण के पिता का नाम गावर्धन और माता का नाम धनवती था। ग्रंथ कर्त्ता ने अपना परिचय देते हुये वर्णित किया है कि उसका दादा हरि मेवाड़ देश के चित्तौड़ नगर का रहने वाला था और सिरिउजयपुर के धक्कड़ कुल का था। धक्कड़ वंश में धनपाल भी हुआ था जो हरिषेण की तरह विद्वान था। इस हरि के गोवर्द्धन नामक एक पुत्र हुआ जिसकी पत्नि का नाम धनवती था। इनके हरिषेण उत्पन्न हुआ था। इसने अपना धर्मपरीक्षा ग्रंथ वि.सं. १०४४ में पूरा किया था। यह ग्रंथ अद्यावधि अप्रकाशित है।

धर्म परीक्षा की कई प्रतियां मिलती हैं। इससे प्रतीत होता है कि इस ग्रंथ का वहुत प्रचार रहा था। आमेर शास्त्र भण्डार में भी इसकी कई प्रतियां हैं। इस ग्रंथ में कुल ११ संधियां हैं जिनमें २३८ कडवक हैं संधिवार इनका विभाजन इस प्रकार है: -

१–संधि २० कडवक, २–संधि २४ कडवक,
३–,, २२ ,, ४–,, २४ ,,
५–,, ३० ,, ६–,, १९ ,,
७–,, १८ ,, ८–,, २२ ,,
९–,, २५ ,, १०–,, १७ ,,
११–,, २७ ,,

ग्रंथ कर्त्ता ने इसकी रचना का प्रयोजन और उपादेयता का वर्णन करते समय इसे धर्म अर्थ काम और मोक्ष का फल दाता वर्णित किया है। ग्रंथ वनाने का प्रयोजन यह दिया है कि कवि के मन में एक दिन विचार आया कि जव तक कोई श्रेष्ठ रचना नहीं करली जावे तव तक मनुष्य वुद्धि का पाना ही वेकार है। अतएव उसने इसकी रचना करली। इसी भाव को दृष्टिगत रखते हुए कवि कहता है।

मणुए–जम्मि वुद्धिए किं किज्जइ।
मणहरजाइ कव्वु ण रइज्जइ।
तं करत अवियाणिय आरिस।
होसु लहहिं मड़-रणि गय-पोरिसा।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में कवि ने पुष्पदंत्त चतुर्मुख और स्वयंभू को स्मरण किया है। पुष्पदंत्त ने भी स्वयंभू और चतुर्मुख को अपनी कृतियों में स्मरण किया है। अतएव प्रतीत होता है कि इन कवियों का चित्तौड़ में व्यापक रूप से अध्ययन होता रहा है।

वर्ण्य विषय :—ग्रन्थ के आरम्भ में "सिद्धि-पुरंधिहि कंतु सुद्धे तणुमय वयणे। मत्तिए भिणु पणवेवि चिंतिउ बुह हरिसेणे", कह कर स्तुति की गई है। इसमें कई कथाएं दी हुई हैं। प्रारम्भ में जम्बू प्रान्त में भरत क्षेत्र का सुन्दर वर्णन है। वैजयंती नगरी का वर्णन उल्लेखनीय है।

इस कवि पर अभी विस्तृत अध्ययन नहीं हुआ है। इसको प्रकाश में लाने का सर्व प्रथम उद्योग श्री ए. एन. उपाध्याय ने किया है। इन्होंने हैदरावाद में आयोजित ओरियन्टल कान्फ्रेन्स में हरिषेण पर एक निवंध पढ़ा था किन्तु इसमें कवि के ऊपर अध्ययन के स्थान पर इसका अमितगति पर क्या प्रभाव था इसका अधिक विस्तृत विवरण किया है। अपभ्रंश साहित्य में सर्व प्रथम श्री हरिवंश काछेड ने अवश्य प्रकाश डाला है। किन्तु अब तक विस्तृत अध्ययन नहीं हुआ है।[२४]

अन्य दिगम्बर विद्वान :—

रामकीर्ति ने वि. सं. १२०७ की समिद्धेश्वर की प्रशस्ति की रचना की थी। ये दिगम्बर सम्प्रदाय के थे और उस समय चित्तौड़ में रहते थे। मैंने अपने शोध पत्रिका में प्रकाशित निवन्ध "चित्तौड़ और दिगम्बर जैन सम्प्रदाय" और वीर वाणी में प्रकाशित "गंगराल के प्राचीन दिगम्बर जैन लेखों" में यहां के दिगम्बर जैन आचार्यों का विस्तृत उल्लेख किया है। काष्टासंघ के लाट वागड़ की गुर्वावली में प्रभाचन्द्र नामक दिगम्बर जैन आचार्य का उल्लेख किया गया है। इसने चित्तौड़ में राजा नरवाहन की सभा में शैवों को हराया था। सौभाग्य से वि. सं.

---

(२४) वीरवाणी के राजस्थान के जैन साहित्य सेवी विशेषांक के पृ. ५२ से ५५ में मेरा लेख—"हरिषेण"।

१०२८ के शिला लेख में भी इस घटना का उल्लेख है। चित्तौड़ के आचार्य श्री कीर्ति का उल्लेख मिलता है। ये यात्रा करते हुए पाटन में रुके थे तब वहां के राजा ने इन्हें मण्ड़लाचार्य की उपाधि दी थी। अपभ्रंश कथा कोश के रचियता श्रीचन्द्र ने अपनी गुरु परम्परा में श्रीकीर्ति का उल्लेख किया है जो राजा भोज से सम्मानित थे।[25] स्मरण रहे कि चित्तौड़ पर भोज का अधिकार रहा था।

आचार्य सकल कीर्ति और भुवन कीर्ति मेवाड़ के वड़े उल्लेखनीय दिगम्बर विद्वान् थे। इनका सागवाड़ा और बागड़ से भी विशेष संबंध रहा प्रतीत होता है। इन्हीं की परम्परा में ज्ञानभूषण भी हुए।

चित्तौड़ के पश्चात् कालीन दिगम्बर जैन विद्वानों में भट्टारक शुभचन्द्र विशेष उल्लेखनीय हैं। इनका पट्टाभिषेक दिल्ली में वि०सं० १५७१ में हुआ था। ये अलौकिक वाक्–शक्ति के कारण पुरुषों को शीघ्र आकर्षित कर लेते थे। भट्टारक बनने के बाद इन्होंने अपनी गद्दी दिल्ली से चित्तौड़ में स्थानान्तरित करदी। इनके द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमायें मिलती हैं।

ये बड़े साहित्य प्रेमी थे। इन्होंने राजस्थान में कई स्थानों पर घूम-घूम कर शास्त्र भण्डार देखे और प्राचीन ग्रन्थों की कई प्रतिलिपियां कराई। इनके समय के लिखे कई धर्म ग्रन्थ आज भी उपलब्ध हैं। आंवा के लेख में इनकी बड़ी प्रशंसा की गई और इन्हें "प्रचंड पंडिताग्रणी" लिखा है।[26]

जैनेत्तर साहित्य

महाकवि माहुक

महाकवि माहुक माघ का वंशज था। इसने हरमेखला नामक ग्रन्थ

(२५) शोधपत्रिका वर्ष ११ अङ्क.........में प्रकाशित मेरा लेख "चित्तौड़ और दिगम्बर जैन सम्प्रदाय"

(२६) डा० कस्तूरचंद कासलीवाल–राजस्थान के जैन संत–व्यक्तित्व और कृतित्व पृ० १८४–१८६

चित्तौड़ में लिखा था। ग्रन्थ में अपना परिचय देते हुए लिखा है कि माघ महाकवि कुञ्जर था तो माहुक कुञ्जर कलश। यह भीनमाल का रहने वाला था। इसके पिता का नाम माधव और दादा कविवर मण्डन थे। संभवतः माहुक भीनमाल से चित्तौड़ चला आया था। इस कवि के ग्रन्थ हर मेखला और इसकी जीवनी को प्रकाश में लाने का श्रेय डा. दशरथ जी शर्मा को है जिन्होंने इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस में एक निबन्ध पढ़ा और विश्वम्भरा में एक लेख प्रकाशित कराया है।[27]

हर मेखला पाँच परिच्छेदों में विभाजित है। प्रथम परिच्छेद ज्ञात नहीं हो सका है। दूसरे परिच्छेद में उन प्रयोगों का वर्णन है। जिनसे दुष्ट कुट्टनियों को दण्ड दिया जा सकता है। प्रेम के विघटन प्रीति के पुनरुत्पादन, केश शुक्लीकरण, तुरंगाधिकरण आदि के लिए अनेक योग और प्रयोग दिये गये हैं। इनसे प्रतीत होता है कि माहुक कालीन जनता का तन्त्र मन्त्रों में काफी अधिक विश्वास रहा होगा। चौथे परिच्छेद में आयुर्वेद के अनेक सुप्रसिद्ध प्रयोग हैं। जिनमें से कुछ को चक्रपाणिदत्त ने भी अपने ग्रन्थ चक्रदत्त में अपनाया है। पांचवे परिच्छेद में गन्ध शास्त्र का वर्णन है। इसमें यवन निर्मित गन्ध शास्त्र के प्रयोगों का भी वर्णन मिलता है।

माहुक के पिता माधव और दादा मण्डन के केवल हमें नाम ही मिले हैं। उनके विषय में अन्य कोई जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है।

इस सम्बन्ध में डा. दशरथ शर्मा के "विश्वम्भरा में प्रकाशित "महा-

(२७) तस्य निजजीवदयितशिष्यः श्री भिल्लमालपुरनिलयः।
माघ महाकवि कुञ्जरकलभो माहुको नामः॥
धरणी वराह-रज्जे कवि-मण्डण-तणअ-माहव सुएण
रइआ चित्तउड़े माहुएण हरमेखला।
एत्थरसाए असुराए समाहमासाम्नि।
सत्तामदिणे समत्ता विअ–ब्रह्मजण–मुणिअ-परमत्था॥
(विश्वम्भरा)

कवि माघ के वंशज कविवर मण्डन, मायत्र, माहुक और वाइल" एवं प्रोसिडिंग्ज ऑफ इण्डियन हिस्टोरिकल कांग्रेस १९६१ में प्रकाशित" धरणी वराह ऑफ चित्तौड़" नामक लेख दृष्टव्य है।

वेदशर्मा

यह महारावल समरसिंह का समकालीन राजकवि था। यह नागर जाति का था और चित्तौड़ का रहने वाला था। इसके पिता का नाम प्रियपटु था। इसकी बनाई हुई २ प्रशस्तियां मिली हैं। (१) चित्तौड़ की रसिया की छत्री की प्रशस्ति वि. सं. १३३१ की और (२) आबू की वि. सं. १३४२ की प्रशस्ति। वि. सं. १३३१ की प्रशस्ति अधूरी ही एक पट्टिका मिली है जिसमें ६० श्लोक हैं। इसमें आगे "अनन्तर वंश वर्णनं द्वितीय प्रशस्तौ वेदितव्यं" है। वेदशर्मा कवि अक्रे प्रशस्ति द्वितयीमिमां' वर्णित है। आबू की वि. सं. १३४२ की प्रशस्ति में स्पष्टतः वर्णित है कि उसी वेदशर्मा ने अचलेश्वर के मन्दिर की प्रशस्ति की रचना की जिसने चित्तौड़ में समाधीश और चक्रस्वामी के मन्दिर समूह की प्रशस्ति की रचना की थी। (२८) इस प्रशस्ति में कई ऐतिहासिक भूलें होने से ज्ञात होता है इसका ऐतिहासिक ज्ञान विशेष नहीं था।

महाराणा कुम्भा—(साहित्यकार के रूप में)

महाराणा कुम्भा भवानी के साथ-साथ सरस्वती का भी उपासक था। मैंने महाराणा कुम्भा पुस्तक में इस सम्बन्ध में विस्तार से प्रकाश डाला है। कुम्भा की रची हुई कई पुस्तकें ज्ञात हुई हैं। इन ग्रन्थों में संगीतराज, गीतगोविन्द की रसिकप्रिया और मेवाड़ी टीकायें, चण्डी शतक की वृत्ति, सूड प्रवन्ध आदि उल्लेखनीय हैं। कुम्भा स्वयं लेखक नहीं होकर मुख्य सम्पादक ही रहा प्रतीत होता है। इनके लिखने में कई पण्डितों का योगदान अवश्य था।

संगीतराज अपने ढंग का अनूठा और अपूर्व ग्रन्थ है। दुर्भाग्य से

(२८) आबू की प्रशस्ति श्लोक सं० ६० (वी. वि. भाग १ पृ० ४०१)

मध्यकाल में इस विशालकाय ग्रन्थ का प्रचार नहीं के बराबर हुआ था। संगीतराज का उल्लेख १७वीं शताब्दी में लिखे सोमनाथ के राग विबोध में अवश्य उल्लेख किया गया है। संगीतराज की कुछ प्रतियाँ कालसेन नामक राजा द्वारा विरचित की हुई भी मिलती हैं। यह राजा संभवतः कोई दक्षिणी भारतीय राजा था। मूलग्रन्थ चित्तौड़ में लिखा गया था। कुम्भा की मृत्यु के बाद कोई पण्डित इसे दक्षिण में ले चला गया ऐसा प्रतीत होता है। संगीतराज में सम सामयिक कुंभलगढ़ एवं कीर्ति स्तम्भ प्रशस्तियां एक लिंग माहात्म्य के कई पद आत्मसात किये हुए हैं। पाठ्यरत्न कोश की कुम्भावाली प्रति में जो वंश वर्णन है वह अन्य प्रशस्तियों से मिलता हुआ है। अतएव यह कहना अधिक उपयुक्त है कि इसका रचनास्थल मेवाड़ ही था। यह क्लासिकल म्युजिक का अपूर्व ग्रन्य है।

इस ग्रन्थ को ५ भागों में विभक्त किया है जिन्हें रत्नकोश कहा गया है। इन रत्नकोशों को उल्लासों में और उनको फिर परिक्षणों में विभक्त किया गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ ८० भागों में विभक्त किया है। इसकी रचना शैली शास्त्रीय परम्परा लिए हुए है। ४० से भी अधिक पूर्वाचार्यों का इसमें स्मरण किया गया है।

संगीतराज के बाद विशेष उल्लेखनीय गीत गोविन्द की रसिक प्रिया टीका है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें सर्वप्रथम गीत गोविन्द के प्रत्येक पद की गाये जाने वाली राग रागनियों को निश्चित किया है। सूड़ प्रवन्ध भी संगीत से ही सम्वन्धित ग्रन्थ है। चण्डी शतक की विस्तृत टीका प्राप्त हुई है। गीतगोविन्द की मेवाड़ी टीका की कई प्रतियाँ मिलती हैं। जो अधिकांशतः १७वीं शताब्दी की लिपी की हुई हैं। इनके अतिरिक्त कामराज रतिसार, संगीत रत्नाकर, संगीत क्रम दीपिका आदि ग्रन्थ भी इसके द्वारा विरचित कराये हुए माने जाते हैं।

कुम्भा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसे आजीवन मालवा गुजरात और नागौर के सुल्तानों से युद्ध करना पड़ा था। मध्यकाल में

सरस्वती की उपासना के स्थान पर भवानी की उपासना को अधिक महत्व दिया जाता रहा है। कुम्भा का साहित्य प्रेम अतएव अनूठा है।[29]

सूत्रधार मंडन

महाराणा कुम्भा का आश्रित सूत्रधार मंडन बड़ा उल्लेखनीय विद्वान् था। इसके पिता का नाम खेता था। इसके द्वारा विरचित ग्रन्थों में देवतामूर्ति प्रकरण, प्रासाद मंडन, रूप मंडन, वास्तु मण्डन, वास्तु शास्त्र आदि ग्रन्थ हैं। देवता मूर्ति प्रकरण और रूप मंडन मूर्ति कला से सम्बन्धित है। देवता मूर्ति प्रकरण में ८ अध्याय हैं। पहला अध्याय शिला परीक्षण सम्बन्धी है। दूसरा अध्याय मूर्तियों के मान से सम्बन्धित है। तीसरा अध्याय देव प्रतिमाओं के संस्थापन से सम्बन्धित है। चौथे में ब्रह्मादि देव, सूर्य, दिक्कपाल और ग्रहों की प्रतिमाओं का वर्णन है। पाँचवाँ अध्याय विष्णु प्रतिमाओं से सम्बन्धित है। छठे अध्याय में शिव प्रतिमाओं का उल्लेख है। सातवें अध्याय में जैन प्रतिमाओं और ८वें में देवी प्रतिमाओं का वर्णन है। रूपमंडन के दूसरे अध्याय में ब्रह्मादि देवताओं की, तीसरे अध्याय में विष्णु प्रतिमायें, चौथे अध्याय में शिव प्रतिमायें, पाँचवे अध्याय में मातृ शक्तियों की प्रतिमायें और छठे अध्याय में जैन प्रतिमाओं का उल्लेख है। प्रासाद मंडन में आठ अध्याय और राजवल्लभ में १४ अध्याय हैं। प्रासाद मण्डन में मन्दिर निर्माण का विस्तृत वर्णन है मन्दिरों के भाग जैसे पीठ, मडोवर, गर्भग्रह, शिखर कलश, ध्वज दण्ड आदि का इसमें सविस्तार उल्लेख है। राजवल्लभ मंडन में राजमहल तालाब, कूप, बावड़ी, गृहनिर्माण का उल्लेख है। ([29]A)

बाडी पार्श्वनाथ भंड़ार पाटन नव तत्वार्थ चूरि ग्रन्थ संग्रहति है। इसे वि.सं. १५१० में मण्डन ने चित्तौड़ में लिपिबद्ध किया था। यह मण्डन कौन था ? संभवत: सूत्रधार मण्डन से मिला रहा हो।[30]

---

(२९) महाराणा कुम्भा पुस्तक के पृ. २२४ से २४३। संगीतराज की भूमिका।

(२९ए) महाराणा कुम्भा की पुस्तक का ११वाँ अध्याय

(३०) "इति नव तत्व विचार संपूर्ण लिखत:। सं० १५१० वर्षे मार्गशीर्ष मासे श्री चित्रकूटमहानगरे श्री मण्डनेन पठनार्थं।
(श्री शाह—प्रशस्ति संग्रह पृ० ९६)

दशोरा जाति के विद्वान्

दशोरा जाति के विद्वान बड़े प्रसिद्ध हुए हैं। दक्षिणद्वार की प्रशस्ति में इनके वंश का विशेष परिचय दिया हुआ हैं। इसमें उल्लेख है कि भृगुगोत्री वसंतयाजी सोमनाथ नामक एक विद्वान् हुआ। इसका पुत्र नरहरि हुआ। यह अन्वीक्षिका (न्यायशास्त्र) में निपुण होने के कारण "इलातल विरंची" कहलाया। इसका पुत्र कीर्तिमान केशव हुआ। इसे झोटिंग भट्ट भी कहते हैं। उपदेश तरंगिणी मे उल्लेखित है कि यह मलिक कबीरुदीन के पास खंभात में कुछ समय रहा था। महाराणा लाखा ने इसे पिप्पली गाँव दान में दिया था। इसका पुत्र अत्रि हुआ। इसने कीर्ति स्तम्भ की प्रशस्ति की रचना प्रारम्भ की थी किन्तु वह पूरी नहीं कर सका जिसे उसके पुत्र महेश्वर ने पूरी की थी। महेश्वर की लिखी कई प्रशस्तियाँ और भी मिली हैं। कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति का भाग, खड़ावदा की मलिक वहरी की प्रशस्ति, जावर की प्रशस्ति, दक्षिणद्वार की प्रशस्ति, घोसुंड़ा की श्रृङ्गारदेवी की प्रशस्ति आदि। मेवाड़ के महाराणाओं ने इसे बहुत दान में दिया था। कुम्भा ने दो हाथी, सोने के डंडी वाले चंवर ओर दो श्वेत छत्र दिये थे। महाराणा रायमल ने इसे रतनखेड़ा गाँव दिया था।[31]

दूसरा दशोरा जाति का विद्वान् परिवार एकनाथ का था। इसकी वि.सं. १४८५ की समिद्धेश्वर की प्रशस्ति प्राप्त हुई है। यह भट्टविष्णु का पुत्र था। उक्त प्रशस्ति के श्लोक ७५ के बाद इसने अपना परिचय दिया है इसमें "श्री मद्दशपुरज्ञातिभट्टविष्णोस्तनूद्भवः। नाम्नैक एक-नाथ....." आदि वर्णित है। यह महाराणा मोकल का समकालीन था।

महाराणा साँगा का समकालीन पंडित पुरुषोत्तम भी दशोरा जाति का था। इसका उल्लेख शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार प्रवन्ध में है। हाल ही में मुझे एकलिंग जी के मठ के ऊपर वि.सं. १५९३ का एक अप्रकाशित लेख[32]

---

(३१) महाराणा कुम्भा पुस्तक का प्रशस्तियां नामक अध्याय

(३२) "दशपुर ज्ञातीय पं० पुरुपोत्तम कृतेयं प्रशस्ति" उल्लेखित है।

मिला है। इसकी रचना पंडित पुरुषोत्तम ने की थी जो दशोरा जाति का था। इस प्रकार इस परिवार का मेवाड़ में विशेष उल्लेखनीय योगदान रहा प्रतीत होता है।

अन्य विद्वान्

महाराणा कुम्भा का समकालीन कन्हृव्यास विशेष उल्लेखनीय है। इसने इसने एकलिंग माहात्म्य और सम्भवत: कुम्भलगढ़ प्रशस्ति की रचना की थी। उक्त प्रशस्ति की दूसरी शिला में चित्तौड़ का सविस्तार उल्लेख होने से ज्ञात होता है कि यह विद्वान् अधिक समय तक चित्तौड़ में रहा था। मैंने महाराणा कुम्भा ग्रन्थ के पृष्ट २२३ में इसका विस्तृत उल्लेख किया है। वि. सं. १५०० की कड़िया की प्रशस्ति का रचियता पं० मुरारी का पुत्र कल्याण था। इसे साहित्यकार आदि कई विशेषण दिये गये हैं। इस लेख की शैली देखने से ज्ञात होता है कि यह भी विद्वान् पुरुष था।

मीरा बाई

मीरा बाई का नाम भारत में बहुत प्रसिद्ध हैं। ऐसा शायद ही कोई हिन्दू होगा जो इनके नाम से अपरिचित हो। मन्दिरों, हरि कथाओं, भजनों, सत्संगों आदि में इनके भजन, प्रेम और श्रद्धा से गाये तथा सुने जाते हैं। वह परम भक्त थी। उसके चरित्र में निर्भयता, पवित्रता, शान्ति, वैराग्य, प्रेम और लगन का प्राधान्य था। भगवद्भक्ति के कारण ही वह विश्वविख्यात हो गई है। साधारण गृहस्थों के कुलों में वड़े-वड़े नर पुंगव महात्मा वीर और आदरणीय पुरुष जन्म लिया करते हैं परन्तु राजघरानों के एश्वर्य में पले हुए मनुष्य वहुत ही कम इस श्रेणी में पहुँच पाते हैं। भारत में ही नहीं वल्कि संसार के इतिहास में मीरा के समान उच्च राजकुल में उत्पन्न नारी जिसने इस प्रकार भक्ति-पूर्ण जीवन व्यतीत किया हो, वहुत ही कम है।

मीरा शब्द की उत्पत्ति :—मीरा शब्द की व्युत्पति को लेकर कई प्रकार के तर्क प्रस्तुत किये गये हैं। पीताम्वरदत्त वड्थवाल ने मीरा शब्द

को उपनाम[33] माना है। इन्होंने कबीर के तीन दोहों में आए मीरा शब्द का अर्थ परमात्मा या ईश्वर लगाया है और बाई का अर्थ पत्नी लगाकर ईश्वर की पत्नी माना है। श्री बड्थवाल ने इसके लिए कई भाषाओं के कोषों का सहारा भी लिया है। किन्तु यह उपनाम वाली धारणा गलत प्रतीत होती है। पं० केशवराम काशीराम शास्त्री मीरा शब्द को मिहिर सूर्य आदि शब्दों से उत्पन्न मानते हैं। प्रो. नरोत्तम स्वामी मीरा शब्द को बीराँ शब्द से उत्पन्न हुआ मानते हैं।[34] स्व. हरिनारायण जी पुरोहित मीरा शब्द को अजमेर के मीरा साहब की मनौती से उत्पन्न माना है।[35]

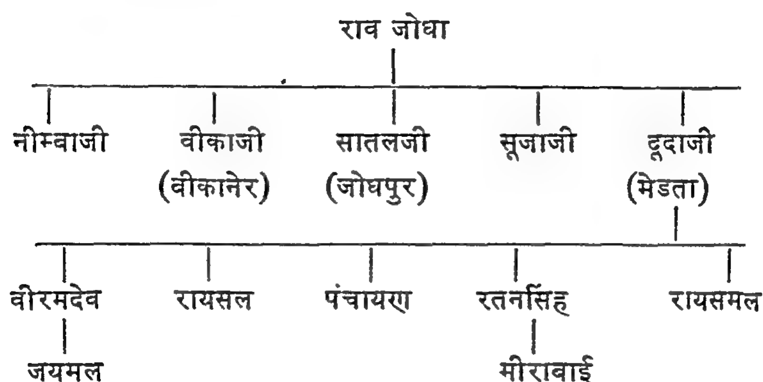
मीरा शब्द की व्युत्पत्ति पर आज भी कई विद्वान् विभिन्न मत प्रस्तुत करते हैं। कुछ आधुनिक विद्वान् मीरा कवियत्री को ही मुसलमान कुलोत्पन्न मानकर राठौड़वंश में उत्पन्न मीरा से भिन्न मानते हैं। किन्तु यह गलत है। ऐसे नाम उस समय में भी रक्खे जाते थे। मीरा की समकालीन राव मालदेव की एक पुत्री का नाम भी मीरा था।

वंश परिचय :—जोधपुर नगर के संस्थापक राव जोधा के पांचवे पुत्र राव दूदा के चौथे राजकुमार राव रतनसिंह की पुत्री मीराबाई थी। राव दूदा अपने राजकुमार रतनसिंह को कुडकी, चौकड़ी, बाजोली आदि गाँव जागीर में दिये थे।[36] कहते हैं कि रतनास रतनसिंह ने मीराबाई के

---

(३३) श्री महावीरसिंह गेहलोत—मीरां–जीवनी और काव्य पृ.१२-१३
(३४) राजस्थानी साहित्य वर्ष १ अङ्क २
(३५) मीरा हुसैन खंगसवार जिन्हें मीरा साहब भी कहते हैं अजमेर में हुए थे। इनकी कब्र आज भी मौजूद है। अकबर ने सन् १५१८ में इस कब्र के दर्शन किये थे तब साधारण रूप से थी (शारदा अजमेर हिस्टोरिकल एण्ड डिस्क्रेप्टिव पृ. ५६) लेकिन उसके पूर्व भी पूजा अवश्य प्रचलित रही हो इसका कोई आधार नहीं है।—(ऐतिहासिक संकीर्ण निबन्ध खण्ड ६ पृ. १६ से २०)
(३६) श्री कल्याणसिंह शेखावत के सौजन्य से प्राप्त।

जन्मोत्सव के उपलक्ष में मीसण जाति के चारणों को भेंटस्वरूप दिया था, जिसका पट्टा आज भी उनके पास है। इसके पिता की वंश परम्परा इस प्रकार है :–



जोधा के पुत्र दूदाजी ने मेड़ता परगना जीतकर वहां अपना राज्य स्थापित किया था। मेड़ता को जो उस समय ऊजड़ गाँव सा था और जो प्रचीन नगर था इसने फिर से समृद्धिशाली बनाया।

दूदाजी का बड़ा पुत्र वीरम उसके बाद मेड़ता का अधिकारी हुआ। इसे महाराणा रायमल की पुत्री व्याही गई थी। मीरा के पिता रतनसिंह इस का छोटे भाई था। जो कुडकी विजोली आदि गांवों की जागीर भोगता था। विस० १५६६ में इन्होंने वाजोली गाँव को मिसण(मिश्रण) गोत के एक चारण को दान में दिया था। मीरा का जन्म विजोली में ही हुआ था।[37]

मीराबाई की जन्मतिथि—मीरा के ग्रन्थों में कहीं भी सविस्तार वंशपरिचय और कोई तिथियां नहीं मिलती है। भारत के प्रायः सब ही भक्तों और कवियों के बारे में भी यही बात कही जा सकती है। मीरा की माता का नाम वीर कुंवरी था जो झाला वंश की थी।

(३७) उपरोक्त

मीरा की जन्मतिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्यता नहीं है। कुछ विद्वान् इसे विस० १४७५ के लगभग उत्पन्न हुआ मानते हैं। इनमें कर्नल टॉड ग्रियर्सन आदि मुख्य हैं। टॉड ने इसे रावदूदा की पुत्री और राणा कुम्भा की पत्नी माना है। राणा कुम्भा राजगद्दी पर विस० १४९० में बैठा था और राव दूदा का जन्म १४९७ आषाढ़ सुदि १५ (१५ जून, १४४० ई०) में हुआ था। अतएव मीरा से कुम्भा के विवाह की बात अमान्य है। महाराणा कुम्भा स्वयं कृष्ण भक्त था अतएव उसका किसी प्रकार का कृष्ट देना असंगत है। मीरा के पति की मृत्यु के पश्चात् उसके देवर द्वारा कष्ट देना वर्णित है। कुम्भा ने ३५ वर्ष तक राज्य किया था एवं उसके बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र ऊदा गद्दी पर बैठा था। कुम्भा के सम्बन्ध में यह भ्रान्ति चित्तौड़ में कुम्भ श्याम और वराह मन्दिरों को देखकर के हुई है। ये मन्दिर महाराणा कुम्भा के बनाये हुए हैं।[38] छोटे वराह मन्दिर को मीरा बाई का मन्दिर मी कहते हैं। यह मन्दिर मुख्य मन्दिर के पास होने से और कुम्भा द्वारा बनाया हुआ ज्ञात होने से टॉड ने यह कल्पना की जो माननीय नहीं है।

सर्व श्री रामचन्द्र शुक्ल मिश्रबन्धु ग्रीव्ज आदि इसकी विवाह तिथि वि० स० १५७३ को जन्म संवत मान लेते हैं। जहां तक ज्ञात हो सका है कि मीरा के पति राजकुमार भोजराज की मृत्यु वि० स० १५८० के लगभग हो गई थी। अतएव अगर यह जन्मतिथि सही मान ली जावे तो इसका अर्थ यह होगा कि मीरा ७ वर्ष की अवस्था में ही विधवा हो गई जो अमान्य है।[39]

राठौड़ों के राणी मंगा भाटों (ब्रह्म भट्टों) की हस्तलिखित वहियों से पता चलता है कि मीरावाई राठौड़ का जन्म वि० स० १५५५ श्रावण सुदि १ शुक्रवार (ता० २०-७-१४९८ ए. डी.) को हुआ था तथा मृत्यु

(३८) महाराणा कुम्भा पृ० २७९-२८१ की० प्र० श्लोक ३१
(३९) ऐतिहासिक संकीर्ण निवन्ध भाग ६ पृ० १६ से २०

१६०५ चैत्र शुक्ला ३ (१२–६–१५४८) को हुई थी। श्री गौरीशंकर ओझा[40] और मुन्शी देवी प्रसाद भी वि. स. १५५५ के आसपास ही मीरा की जन्मतिथि मानते हैं।[41] एक दूसरी वही में यह संवत १५६१ श्रावण सुदी १ शुक्रवार (सन् १५०४ ता. १२ जुलाई) लिखा मिलता है। यह संवत अधिक उपयुक्त ठहरता है। इतिहास इसके लिए सहायक है। दूदाजी का ज्येष्ठ पुत्र वीरमदेव का जन्म वि. स. १५३४ मिगसर सुदि १४ (१६–११–१४७७) बुधवार को हुआ था। यह देखते हुए इनके चौथे पुत्र का जन्म वि. अ. १५४० (१४८३ ई.) के आसपास होना चाहिए। रतनसिंह के मीरा ही एक मात्र संतान थी। अतएव पहली सन्तान के लिए लगभग २० वर्ष की आयु रही होगी। अत्तएव वि० सं० १५५५ के स्थान पर वि० सं० १५६१ वाली तिथि अधिक मान्य है। इसके साथ भोजराज की तिथि से मिलान करें तो ज्ञात होगा कि दोनों का विवाह वि. स. १५७३ में हुआ था। राजपूतों के मध्यकाल में १४ वर्ष की लड़की की शादी प्रायः कर देते थे। इसके अतिरिक्त राणा सांगा की जन्मतिथि वि. सं. १५३६ वैशाख वदि ६ (१२ अप्रेल १४८२) शुक्रवार को है। अतएव उसके ज्येष्ठ पुत्र की जन्म तिथि १५५६ अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है। मीरा से यह २ वर्ष उम्र में अधिक रहा होगा। मीरा के चचेरा भाई जयमल का जन्म वि. स. १५६४ आश्विन सुदि ११ (१७ सितम्बर १५०७ ई.) को हुआ। यह मीरा से छोटा था। अतएव वि. स. १५६१ वाली तिथि ही ऐतिहासिक तिथि प्रकट होती है।[41A]

मीराबाई का बाल्यकाल—मीरा के मातापिता उसे बड़े लाड़-प्यार से रखते थे। परन्तु उसके भाग्य में मातृ सुख नहीं लिखा था। अभी मीरा बच्ची ही थी कि उसकी माता उसे छोड़ कर स्वर्ग चली गई। दूदाजी ने उसे अपने पास बुला लिया और वह मेडता में रहने लगी। ऐसी मान्यता है कि उसने देवनागरी, संगीत शास्त्र, छन्दशास्त्र और

(४०) ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ पृ. ३१८–६०
(४१) मुन्शी देवी प्रसाद श्रीमती मीराबाई का जीवन चरित्र पृ. ३१
(४१)A–ऐतिहासिक संकीर्ण निबन्ध पृ. १६ से २०

संस्कृत भाषा का अध्ययन किया था। इनके विद्यागुरु का नाम गजाधर था।[42] मीरा के पति भोजराज की शीघ्र मृत्यु हो जाने से उसे वैधव्य जीवन ही अधिक समय तक व्यतीत करना पड़ा था। उसको सन्तों के साथ उठने-बैठने से विषपान भी कराया गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। मीरा द्वारा पूजी जाने वाली प्रतिमा को लेकर बड़ा विवाद है।

काव्य—मीरा के पद बड़े प्रसिद्ध हैं। इनके द्वारा विरचित कई ग्रन्थ मिलते हैं।

(१) गीतगोविन्द की टीक
(२) नरसी जी को माय
(३) फुटकर पद
(४) राग सोरठ पद संग्रह
(५) राग गोविन्द
(६) मीरा का मलार
(७) गरबा गीत

इनमें से कुछ कृतियों के सम्बन्ध में संदिग्धता है। मीरा की सर्व-प्रसिद्ध रचना उसके फुटकर पद है। इनमें मीरा की प्रेम साधना को व्यक्त किया गया है। यह किसी सम्प्रदाय या आम्नाय से सम्बन्धित

---

(४२) पं गजाधर व्यास गुर्जरगौड़ जाति का ब्राह्मण था। उसका गोत्र कांठिया तिवारी था। वह मीरा को लिखना पढ़ना सिखाने के साथ-साथ कथा पुराण भी सुनाया करता था। देवार्चन तथा पूजा-पाठ भी सिखाता था। विवाह होने के वाद जब मीरा चित्तौड़ गई तो गजाधर भी उसके साथ चला गया। विधवा होने पर चित्तौड़ में मुरलीधरजी का मन्दिर वनवा कर सेवा पूजा का कार्य इन पंडित जी को सौप दिया एवं उनको पुर और मांडल में पीवल जमीन भी दी।

(श्री सुखवीर सिंह गेहलोत के सौजन्य से प्राप्त)

रही प्रतीत नहीं होती है। इस पर निर्गुण संतों और सगुण भक्तों का समान रूप से प्रभाव दृष्टिगत होता है। इसने अपने आपको सांवलिया की पत्नि व्यक्त किया है। यह पद इस भाव को स्पष्ट करता है—

मेरे प्रीतम प्यारे राम कुं लिख भेजू रे पाती
स्याम सनेसो कवहूं न दीन्हों जानि बूझ गुझ वाती।
उगर बुहारु पंथ निहारु जोड़-जोड़ अखिया राती।।
राति दिवस मोहि कल न पडत है हीयों फटत मेरी छाती।।
मीरा के प्रभु कवरे मिलोगे पूरव जन्म का साथी।।

इस प्रेमी और रसिक पति को प्रसन्न करने के लिए वह नृत्य को भी तत्पर है—

श्री गिरधर आगे नाचूंगी
नाचि नाचि पिव रसिक रिझाये प्रेमी जन को जाचूंगो
प्रेम प्रीति की बांध घूंघरू सूरत की कछनी काचूंगी।
लोकलाज कुल मरजादा या में एक न राखूंगी।
पिव के पंलगा पौढूंगी मीरा हरि रंग राचूंगी।

नृत्य करते-करते इतनी मस्त हो जाती है कि लोग उसे पागल समझने लगते है। समाज वाले कुल में कलंक मानकर जहर का प्याला भेजते हैं किन्तु वह इतनी मुग्ध हो गई है कि नारायण की स्वतः दासी हो गई है—

पग घुघरू बांध मीरा नाची रे।
मैं तो मारा नारायण री आप ही हो गई दासी रे।

— — — — — — — — —

मैं तो सांवरिया के रंग रांची
साजि सिणगारं बांध पग घुघुरू लोकलाज तजि नाची।

उसका वर्ण्य विषय कृष्ण को आत्मनिवेदन है। भावातिरेक और अभिव्यक्ति की कुशलता से काव्य में जो स्वरूप आया है वह यथार्थ सा

है। विनय सम्बन्धी उसके पद सामान्य है। उदाहरणार्थ—"वसो मेरे नैनन में नन्दलाल आदि-आदि

इसी प्रकार मीरा का आविर्भाव एक महत्वपूर्ण घटना है। उत्तरी भारत में ही नहीं अपितु दक्षिण तक इसके पदों को भक्त लोग बड़े प्रेम से गाते है। मीरा और प्रताप के देश के नाम से चित्तौड़ और मेवाड़ को जानते हैं। इस पर हमें भी गर्व है।



पांचवां अध्याय

भारत धर्म प्रधान देश है। यहां मानव ने ऐन्द्रिक सुख को त्याज्य समझकर अध्यात्म चिन्तन की ओर बढ़ने का सतत् अभ्यास किया है। चित्तौड़ क्षेत्र अति प्राचीन काल से ही कई धर्म और संस्कृतियों का केन्द्र रहा है। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैं।

वैष्णव धर्म

नगरी के समीप घोसुंडी के एक लेख में जो, द्वितीय शताब्दी ई. पू. का है, संकर्षण और वासुदेव की पूजा[1] का उल्लेख है। इस लेख में नारायण वाटक स्थान पर पूजा शिला प्राकार बनाने का उल्लेख है। संकर्षण और वासुदेव की पूजा का उल्लेख समसामयिक अन्य कृतियों में भी मिलता है। काशिका में भी संकर्षण वासुदेव का उल्लेख है। नाना घाट के प्रसिद्ध लेख में प्रारम्भ में संकर्षण की स्तुति[2] की गई है। प्रस्तुत लेख में सर्वेश्वर पद भी प्रयुक्त है जो विशेष उल्लेखनीय इसलिए है कि इनको विष्णु के तुल्य माना गया है। इससे कहा जा सकता है कि उस काल तक कृष्ण और बलराम की उपासना प्रचलित हो चुकी थी। "पूजाशिला प्राकार" पंक्ति पर ध्यान देना आवश्यक है। वस्तुतः नारायण वाटिका में एक पूजा शिला पट्ट और दूसरा उस स्थान को घेरने वाली दीवार है जो प्राकार कहलाई है। डा. भण्डारकर[3] ने जब वहां उत्खनन कराया तो यहां ईंटों का एक छोटा सा चबूतरा सा स्थंडिल

---

(१) "भगवदभ्यां संकर्षण–वासुदेवाभ्यां (अनहितभ्यां सर्वे श्वरभ्यां) पूजा शिलाप्राकारोनारायणवाटका"

(२) (ओ–नमो प्रजापति) नो धम्मस नमो ईंदस नमो संकसन वासुदेवानम् (आ० स० वे० इ० भाग ५ पृ ६५)

(३) डी० आर० भण्डारकर दि आर्कियोलोजिकल रिमेन्स एण्ड एक्स केवेशन्स ऐट नगरी पृ० १२०।

(४) शोधपत्रिका वर्ष ४ अंक ३ पृ० ४१–४३

प्राप्त हुआ था और उसी पर पूजा शिला रक्खी जाती रहीं प्रतीत होती है। नगरी की नारायण वाटिका इस प्रकार अपने ढंग[4] का सबसे प्राचीन वैष्णव मन्दिर है। इसमें मूर्ति के स्थान पर केवल मात्र शिला को ही पूजने को रखने का उल्लेख[5] है। प्राचीन बौद्ध स्तूपों का स्वरूप भी इसी प्रकार ही था। वहां भी बुद्ध मूर्ति नहीं रक्खी जाती थी। उस समय तक मूर्तियां अवश्य बन चुकी थी अथवा नहीं इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता है किन्तु खारवेल के लेख में जैन मूर्ति का उल्लेख होने से यह कहा जा सकता है कि उस समय तक जैन मूर्तियां अवश्यमेव बन चुकी थी।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि जैन और बौद्ध धर्मो की प्रतिक्रिया के रूप में वैदिक धर्म का पुनरुत्थान होकर पुराणों ने इसे नये रूप में देखा था। अब इन्द्र के स्थान पर विष्णु, संकर्षण और वासुदेव की पूजा अधिक प्रचलित हो गई थी। बौद्धों ने इन्द्र को शक्र के रूप में देख कर जातक कथाओं में कई प्रकार की कल्पनाएं की थी। इनका विकसित रूप हिन्दू पुराणों में किया गया है। यज्ञों की परम्परायें पुनः चल पड़ी। यहां तक कि जैन राजा खारवेल तक ने राजसूय यज्ञ किया था। मेवाड़ में सबसे उल्लेखनीय यज्ञ नान्दशा में हुआ था। नान्दशा चित्तौड से लगभग ३२ मील उत्तर पश्चिम में है जहां वि० सं० २८२ का स्तंभ लेख मिला है। इस लेख में पोरप[6] सोम का उल्लेख है। जो मालव वंश

---

(५) आर० सी० अग्रवाल राजस्थान में विष्णु पूजा (राजस्थान भारती वर्ष ४ अंक ४ पृ० २–३

(६) ·········एकषष्टिरात्रमतिसत्रमपरिमितवर्म्ममात्रं समृद्धृत्य पितृपैतामहीं 'धुरमावृत्य सुविपलं द्यावापृथिव्योरंतरमनुत्तमेन यशसा स्वकर्मसम्पदया विपुलां समुपगतामृद्धिमात्मसिद्धिवितत्य मायामिवं सत्रभूमौ सर्वकामौघधारां वसोर्द्धारा ब्राह्मणाग्निवेश्वानरेषु हुत्वा ब्रह्मेन्द्रप्रजापतिमहर्षिविष्णुस्थानेषु कृतावकाशस्य········ (नान्दशा का शिलालेख)।

में उत्पन्न हुआ था। इस लेख में वर्णन इस प्रकार है कि सोम ने अपने बापदादाओं की धुरी का समुद्धार करने के लिये जिसका यश द्यावा पृथ्वी के अन्तराल में छा गया था व जिसने सत्र भूमि में अपने कार्य कर्म (पितृ पैतामहि धुरी के समुद्धरण) की सम्पदा के कारण प्राप्त ऋद्धियों को अपनी सिद्धियों के समान, सब कामनाओं के समूह की धारा की तरह विस्तार कर उसके वसु की धारा की तरह ब्राह्मणों अग्नि और वेश्वानर के लिये हवन किया था। मालवगण के उक्त प्रदेश में एक षष्टिरात्र के यज्ञ को चन्द्र के प्रथम दर्शन के समान अवतरण कराया उस समय महा तड़ाग में जो दान में दी लाखों गायों के सींगों भी रगड़ लग जाने से संकुल हो, जाने से पुष्कर को भी पीछे रखता था यज्ञ यूप खड़ा कराया।

इससे प्रकट होता है कि यज्ञों की परम्परा का सुन्दर ढंग से विकास हो चुका था। नगरी से प्राप्त अन्य लघुलेखों के अनुसार वाजपेय यज्ञ और अश्वमेघ यज्ञ किये[7] गये थे। अश्वमेघ करने वाला सर्वतात के वंश का पता नहीं चला है।

नगरी के वि० स० ४८१ के लेख में भगवान[8] विष्णु के मन्दिर बनाने का उल्लेख है। यह शिलालेख अजमेर संग्रहालय में संग्रहित है। इस लेख में सत्यसूर्य श्री गंध दास और वसु आदि निर्माण कर्ताओं का नाम है। इससे विदित होता है वहां विष्णु पूजा प्रचलित थी। ६ठी शताब्दी के एक अन्य लेख में वराह के पौत्र विष्णुदत्त के पुत्र ने जो

---

(७) तेन सर्वतातेन अश्वमेघं एवं 'स्य यज्ञेवाजपेये यूपो तस्य पूत्रैर्यु पो "........" नगरी के लघुलेख।

(८) –"जयति भगवानविष्णु-कृतेपु चतुपुवर्पशतेप्वेकाशीत्युत्तरेप्वस्यां मालवपूर्व्वायां, (४००) ८०१ कार्त्तिकशुक्लपञ्चम्यामाभ्यां भगनान्महापुरुपपादाभ्यां प्रासादः–हितः सत्यशूरेण स्त्रुगन्धेन दासेन भातृभिरेभिर्धनीश्वरैर्ज्जय सुत्पुत्रैर्विष्णुचर पौत्रैवृद्धि वौद्–प्रपोत्रैर्व्वासू प्रसूतेः पुण्य यशो–" (नगरी का लेख)

मालवा और चित्तौड़ क्षेत्र का राजस्थानीय था जिसका नाम शिलालेख में नष्ट हो गया है विष्णु का एक मन्दिर बनाया।[9] राजस्थानीय शब्द प्रशासक के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतएव विश्वास किया जाता है कि इसको मानने वाला कोई उल्लेखनीय राजपुरूष रहा होगा। एक अन्य लेख में मनोहर स्वामी के मन्दिर बनाने का उल्लेख है।

गुप्तों के साम्राज्य के अन्तर्गत वैष्णव धर्म की अभूतपूर्व प्रगति हुई। मेवाड़ के अन्य भागों में भी कई वैष्णव मन्दिरों के निर्माण का उल्लेख मिलता है। गुहिल वंशी राजा अपराजित के सेनापति वराह की स्त्री लक्ष्मी ने यौवन और धन को क्षणिक समझकर विष्णु का मन्दिर बनाया। वि०स० १००१ के आहड़ के लेख में वराह की मूर्ति संस्थापित कराने का उल्लेख है। वि० स० १०१० के सारणेश्वर के लेख से भी इसी प्रकार वराह के मंदिर बनाने का उल्लेख है।

चित्तौड क्षेत्र में विष्णु मन्दिरों में प्राचीन मन्दिर उपलब्ध नहीं हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि इस पर कई बार आक्रमण हुए और आक्रमणकारियों ने भीषणत्तम आक्रमण करके यहां के देव मन्दिरों को नष्ट कर दिया। कुम्भ श्याम मन्दिर का नीचे का भाग बहुत प्राचीन बना हुआ है। इसमें लगी कई मूर्त्तियां विशेष उल्लेखनीय है ब्रह्मा अग्नि (स्थानक) राम–लक्ष्मण की धनुष बाण सहित प्रतिमाए, जंघा, पंक्ति में हरिहर की प्रतिमा आदि। कुमार पाल के समय के एक अप्रकाशित लेख में वैष्णव मन्दिर बनाने का उल्लेख है। कीर्ति स्तम्भ के आगे पूर्वी भाग में एक प्राचीन विष्णु मन्दिर है जिस पर वि०स० १३२७ का एक लघु लेख हैं। हमीर से ही राजाओं ने देव मन्दिरों का जिर्णोद्धार करना प्रारम्भ किया प्रतीत होता है। महाराणा लाखा ने इस कार्य में विशेष रुचि लेकर मन्दिरों का जिर्णोद्धार कराया। महाराणा मोकल ने चित्तौड़ में द्वारकाधीश का मन्दिर

---

(९) ए० इ० भाग ३० पृ० ३४ पृ०

(१०) वी० वि० भाग १ पृ० ३०८/ओझा–उ० इ० प्र० २६१

बनाया।[11] विष्णु मन्दिर के लिए सोने का गरूड़[12] बनाकर भेंट किया। एवं सोने का तुलादन कर उसकी सारी[13] राशि पुष्कर के आदि वराह के मन्दिर में लगा दी। कुम्भा के समय बने वैष्णव मन्दिरों में सबसे उल्लेखनीय कुम्भ श्याम का देवालय है। इस देवालय का विस्तृत विवरण अन्यत्र कर दिया गया है। इस देवालय में वराह[14] की मूर्ति पूजा के निमित स्थापित की गई की गई प्रतीत होती है। इस मन्दिर में कुंभा के समय बनी अन्य कई मूर्तियां भी विशेष उल्लेखनीय है। इनमें तुलसी माधव नृसिंह अवतार त्रिविक्रम आदि की है जो सभा मंडप में लगी हुई है। त्रिविक्रम विष्णु का एक स्वरूप है जो वराह अवतार के पश्चात् भगवान विष्णु ने जब पृथ्वी को नापने के लिए पांव उठाये थे उस समय का स्वरूप[15] है। मन्दिर के बाहर मंडोवर में भी कई देव प्रतिमाएं बनी हुई हैं। अनन्त की १४ हाथ की प्रतिमा है। आबू के अचलेश्वर के कुंभ श्याम के मन्दिर में भी इसी प्रकार की अनन्त[16] की प्रतिमा हैं। ठीक पीछे के पार्श्व में ८ हाथ वाली वैकुण्ठ की प्रतिमा हैं। उत्तरी पार्श्व में १४ और १६ हाथ वाली अनन्त और त्रैलोक्य मोहन की प्रतिमाएं हैं।

---

(११) आसाद्यातिथिमाश्रयं त्रिजगतां श्रीद्वारिकानायकं, प्रासादं २ चितो पचारमकरोद्भूमिपतिमोकलः (चित्तौड़ की वि० स० १४८५ की प्रशस्ति।

(१२) पक्षिराजमपि चक्रपाणये हेमनिर्मितमसौ दधौ नृपः ।। २२५
य: सुधांशुमुकुटप्रियागणेवाहनं मृगपत्ति मनोरमं।
निर्मितं सकलधातुभक्तिभिः पीठरक्षणविधाविव व्यधात् ।।

(१३) ऋंगी ऋषि का लेख पंक्ति १७।

(१४) विष्णुयत्र विराजते स भगवाद्यवराहाकृति (कुंभलगढ़ प्रशस्ति)

(१५) गोपीनाथ राव—इलेमेन्ठस आफ हिन्दू इकोनोग्राफी
भाग १ खण्ड १ पृ० १६४

(१६) राजस्थान पत्रिका मार्च, १९६३ पृ० १०६

शृंगार चंवरी महावीर जैन मन्दिर आदि में विष्णु के कई रूपों की प्रतिमाएं अलंकरण हेतु बनी हुई हैं। जैन मन्दिरों में विष्णु की इस प्रकार की प्रतिमाएं होना उल्लेखनीय है।

कीर्त्तिस्तम्भ में विष्णु के कई रूपों की प्रतिमाएं हैं। इसमें जो मूर्तियों का स्वरूप है वह रूप मंडन से बिल्कुल भिन्न है। रूप मंडन में जो मूर्तियों का स्वरूप दिया गया है वह प्राचीन शास्त्र विशेषकर अपराजित पृच्छा के अनुरूप है। कुछ मूर्तियां सम्मिलित भावों की भी है। इनमें हरिहर, हरिहर पितामह, चन्द्रार्क पितामह आदि की मूर्तियां है। विष्णु की १० अवतार की प्रतिमाएं भी बनी हुई है। इन प्रतिमाओं की विशेषता यह है कि इन्हें अपने ढंग से ही बनाया है। बुद्ध प्रतिमा को हिन्दू ढंग से बनाया गया है। मीरांबाई का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। यह परम भक्त थी। इसके गीत आज भी सर्वत्र गाये जाते है। दुर्ग पर अन्य मन्दिरों में चारभुजा का मन्दिर वि० स० १५७४ का बना हुआ है।

महाराणा उदयसिंह से लेकर अमरसिंह I तक के काल में लगातार युद्ध होने के कारण निर्माण कार्य प्रायः नहीं सा हुआ। महाराणा कर्णसिंह जगतसिंह और राजसिंह के शासन काल में पुनः मन्दिर निर्माण कराये गये।

पूर्व मध्यकाल में प्रचलित वैष्णव कथायें—

धूर्त्ताख्यान और धर्मपरीक्षा ग्रंथ चित्तौड़ में जैनों द्वारा लिखे गये थे। इनमें जगह जगह वैष्णवों में प्रचलित कथाओं का मजाक उड़ाया गया है। इनमें से कई महत्वपूर्ण बातें ज्ञात होती है। उस समय रामायण, महाभारत और पुराणों का वैष्णवों में अत्यधिक प्रचार रहा प्रतीत होता हैं। धूर्त्ताख्यान में जो ८ वीं शताब्दी की रचना है, कई स्थलों पर इनका उल्लेख है। जन साधारण में इस काल में जो विश्वास प्रचलित थे सामान्यतः उतना ही इन ग्रंथों में उल्लेख है। लोगों में मंत्र तंत्रों पर बड़ी श्रद्धा थी। हरमेखलाकार में भी कई मंत्रों तंत्रों का उल्लेख किया हैं।

नीचे लिखी कथायें मुख्य रूप से उल्लेखनीय की है—

(१) ब्रह्मा के शरीर से ४ वर्गों की उत्पत्ति (२) गंगा का भगवान शंकर की जटा में रहना (३) तिलोत्तमा द्वारा ब्रह्मा की तपस्या भंग करना (४) हनुमान का समुद्र लांघना (५) केशव का देवकी को विराट रूप दिखाना (६) जटायु का विशाल काय शरीर (७) रेणुका का पुनर्जीवन प्राप्त करना (८) जरासंघ के शरीर का गठन (६) सुण्ड और निषुण्ड की कथा (१०) वराह द्वारा पृथ्वी को लांघना (११) कुम्भ-कर्ण का भोजन (१२) कृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण करना (१३) सेतु निर्माण के लिए बन्दरों का पत्थर लाना (१४) कुन्ती के सूर्य द्वारा पुत्र होना (१५) अहिल्या की कथा (१६) हनुमान की लम्बी पूंछ से लंका जलाना आदि। ये कथायें निश्चित रुप से उस समय प्रचलित रही होगी।[17]

शैव धर्म

शैव धर्म का प्रचलन किस समय से इस क्षेत्र में हुआ था इसका तिथि-वद्ध वर्णन नहीं दिया जा सकता है किन्तु वि०स० ५४० के छोटी सादड़ी के लेख में अर्द्धनारीश्वर का उल्लेख होने से यह मान्यता है कि उस समय तक इसकी उपासना व्यापक रूप से चलती रही होगी।[18] मान-मोरी ने शंकर घंटा में शिव मन्दिर बनवाया था। बाप्पारावल का हरीतराशि नामक पाशुपत्ताचार्य का शिष्य[19] होना विख्यात है। बापा ने गुहिलोत शासकों में प्रथम बार चित्तौड़ विजय किया था। उसने भी वहां कोई मन्दिर अवश्य बनाया होगा।

---

(१७) धूर्त्तख्यान (ए. एन. उपाध्यें) द्वारा सम्पादित की भूमिका।

(१८) श्री महाराज गौरिः। तेनैषःशशिहरकुन्दधवलशैलेन्द्रश्रृंगोन्नतः प्रासादोऽद्ध्रु द रिशनः (दर्शनः) कृतमयम देव्याः प्रासदार्थिना। (ए० इ० भाग ३० पृष्ट १२०–७)

(१६) ·········१३३५ वर्षे वैशापसुदी ५ गुरौ श्रीएकलिंगहरारावनपाशु-पताचार्य हारीत राशि-क्षत्रिय गुहिलपुत्रसिंह लब्धमहोदय (वरदा वर्ष ६ अंक १ पृ० ६२–६३)

दुर्ग पर शिव मन्दिरों में सबसे प्राचीनतम मन्दिर कुकडेश्वर का शिव मन्दिर और मोकलजी का मन्दिर हैं। कुकडेश्वर शिवमन्दिर का निर्माता राज कुकड़ेश्वर (वि० स० ८११) ही हो तो इसका निर्माण काल ८ वीं शताब्दी हो सकता है। मोकलजी का मन्दिर परमार राजाभोज का बनाया हुआ[20] माना जाता है। कुमारपाल जब अर्णोराज को विजय करके लौट रहा था तब वि० स० १२०७ में इस मन्दिर में दर्शन करके एक ग्राम[21] भेटकिया था। दिगम्बर साधु जय कीर्ति के शिष्य राम कीर्ति ने एक प्रशस्ति बनाई थो जो अब भी उपलब्ध है महारावल समर सिंह के समकालीन तलारक्ष मदन के लिए चीरवा के लेख में वर्णित किया है कि वह भोज द्वारा बनाये गये समिद्धेश्वर मन्दिर में उपासना करता था। वि० स० १३५८ में महारावल पाता[22] के बेटे धारसिंह ने इसका जीर्णोद्धार कराया था और इसका अन्तिम जीर्णोद्धार वि० स० १४८५ के पूर्व महाराणा मोकल ने कराया था।[23]

इनके अतिरिक्त दुर्ग और आसपास के गांवों में कई प्राचीन शिव मन्दिर विद्यमान है। गंगरार के पंचकुण्डों पर शिव के २ मन्दिर और एक छोटा मठ है। यहां कई शिलालेख लग रहे हैं। जो अधिकांशतः सतियों के है। इससे प्रकट होता है कि वह स्थान बड़ा पवित्र माना जाता रहा होगा।

---

(२०) श्रीचित्रकूटदुर्गे तलारतां यः पितृ क्रमायातां
श्रीसमरसिंहराजप्रसादातः प्रापनिः पापः ॥ ३० ॥
श्रीभोजराजरचितत्रिभुवननारायनख्यदेवगृहे
यो विरचयतिस्म शिवपरिचर्यां स्व शिवलिप्सुः ॥३१॥
(चीरवा के लेख से)

(२१) श्री चित्रकूट गिरि पुष्पकलशोभां—श्री समद्धिश्वरदेवप्रसिद्ध जगतीं—कुमारपाल देवोदाद्‌गाभं (१२०७ का कुमारपाल का लेख)

(२२) वरदा वर्ष ९ अंक १ पृ०६४—६५ पर दिया गया लेख।

(२३) कु० प्र० श्लोक २२२। चित्तौड़ की वि. स. १४८५ की प्रशक्ति श्लोक।

दुर्ग और तहलटी में आज भी कई शिव मन्दिर विद्यमान हैं। इनमें शंकर घट्टा के शिव मन्दिर (८वीं शताब्दी) का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। जहां से राजा मान मोरी का शिलालेख मिला है। भीमलत के समीप स्थित अद्भुत शिवालय है जो रायमल के शासन काल में पूर्ण हुआ था। सूरजपोल के पास नीलकंठ का मन्दिर है जो भी प्राचीन मन्दिर है। दुर्ग पर शिवालयों में पातालेश्वर का मन्दिर वि० स० १६२२ आषाढ़ सुदी ६ का बना हुआ है।

लकुलीशमत

पाशुपत दर्शन के अन्तर्गत लकुलीश सम्प्रदाय का अत्यधिक महत्व था। यह शैवों की ही एक शाखा थी। इसके मानने वाले राजस्थान में प्रचुर मात्रा में थे। इसके मुख्य रूप से मेवाड़ मे एकलिंगजी मेनाल और चित्तौड़ केन्द्र थे। यह शिव का अन्तिम अवतार माना जाता है। इस मत का उद्भव काल काफी प्राचीन माना जाता है। लिंग पुराण और वायुपुराणों में लिखा है कि जब द्वैपायन व्यास और भगवान कृष्ण पैदा हुए थे उस समय ही शिव भी लकुल[24] लेकर पैदा हुए थे। इस मत का प्राचीनतम उल्लेख गुप्त सं० ६१ (वि० स० ४३७) के एक मथुरा के लेख में है। जिसमें इस सम्प्रदाय के आचार्य उदिताचारि का उल्लेख है जो कुशिक की ११ वीं पीढ़ि में हुआ था। अतएव इस सम्प्रदाय का उद्भव २ री शताब्दी में मान सकते है। गुप्तकाल तक यह अवश्य मेव विकसित हो चुका था। झालावाड़ के एक लघु लेख में 'इषानुजमुख्यातो लकुलीशइवाभवत्" पाठ है यह लेख काफी प्राचीन हैं। ८ वीं शताब्दी में चित्तौड़ में लिखे घूर्त्ताख्यान में शैवो का वर्णन है वहां पाशुपत नाम भी मिलता है।

शिव का यह अवतार कारवां नामक स्थान में होना माना जाता है जो भृगुकच्छ में है। एक लिंगजी के वि० स० १०२८ के लेख मे

(२४) मेरा लेख लकुलीश मत (शोध पत्रिका वर्ष ७ अंक २-३ पृ० ३२-३६ एवं जनरल बम्बई ब्रांच रायल एशियाटिक सोसाइटी अंक २२ पृ० १५६।

स्पष्टतः वर्णित है कि भृगुकच्छ देश में जहाँ मेकला की पुत्री नर्मदा वहती है शिव का अवतार हुआ था। इस शाखा के मुख्य ४ आचार्य हुए (१) कुशिक (२) गार्ग्य (३) कौरूप और (४) मैत्रेय।

लकुलीश की मूर्ति विशेष उल्लेखनीय[25] है। इस मूर्ति में एक हाथ में दण्ड और दूसरे हाथ में विजौरा फल होता है। लकुलीश योगियों का देवता है अतएव उर्द्ध रेता (जिसका वीर्य कभी भी स्खलित नहीं हुआ हो) भी माना जाता है। इस मूर्ति पर जैन तीर्थङ्करों की मूर्ति का प्रभाव स्पष्ट है। कारवां महात्म्य में लकुलीश के लिए तीर्थङ्कर शब्द भी प्रयुक्त किया हैं।[26] चित्तौड़ के कुंभश्याम और सूर्य मन्दिर में लकुलीश की उल्लेखनीय प्रतिमायें हैं जिनका वर्णन आगे किया जावेगा।

समराइच्च कहा के प्रारम्भ से अग्नि शर्मा जब आर्जव कोण्डिन्य के पास जाता हैं तब का वर्णन आता है इस प्रकार प्रतीत होता है कि आर्जव कौन्डिन्य मानो शैव साधु ही रहा हो। जटा जूट धारी दण्ड लिये त्रिपुण्ड लगाये, भस्मी रमाए, रुद्राक्ष की माला फेरते हुए साधु का वर्णन मिलता है।[27]

---

(२५) लकुलीशं उर्ध्वमेढ़ं पद्मासनसुसंस्थितम्
दक्षिणे मातुलिंगं च वामे दण्डप्रकीर्तितम् ॥ वस्तु शास्त्र।

(२६) श्री शिव पुराण पार्वती महेश संवादे तीर्थङ्कर मणिकायां
श्रीशूलपाणिजन्मपट्टवंधधिमाहात्म्यम्········।"
आ० स० रि० इ० १९०७–८ पृ० १८०

(२७) दिठ्ठो य तेण विक्कलवियड़ जड़ाजिणतिदण्डधारि य।
भूइ रयकति पुण्ड्रो आसन्न कमण्डलु सो भो ॥
भिसियाए सुहनिसण्णो कयली हरयन्तरंमि झाणगओ।
परिवत्तेन्तो दाहिणकरेण रद्दक्खमालं ति ॥
मन्तक्खर जवणेण य ईसिं वियलन्त कण्ठउठ्ठउड़ो।
नासाए निमियदिठ्ठि विणिवारिय सेसवावारो।
अयसिम यजोगपट्टयपमाणसंगय कयासण विसेसो।
तावसकुलप्प हाणो अज्जव कोडिण्ण नामोत्ति ॥
(समाराइच्चकहा–प्रथम भव)

गोमुख के पास एक गुफा बनी हुई है जो समिद्धेश्वर के मठ के नीचे हैं। ऐसी मान्यता है कि प्रारम्भ में यह शैव साधुओं के तपस्य करने के काम में आती थी। इसके पश्चात् कुछ जैन मूर्तियां महाराणा कुम्भा और रायमल के शासन काल में यहां स्थापित की गई थी।

मातृ शक्ति की उपासना

देवताओं के साथ साथ उनकी शक्तियों के भी नाम मिलते है उदाहरणार्थ कृष्ण के साथ राधा, राम के साथ सीता विष्णु के साथ लक्ष्मी आदि। शाक्तमतावलम्बियों का कथन है कि शक्ति के विना शिव भी शव के तुल्य हैं। इसका इतना अधिक प्रचार बढ़ा कि जैनों और बौद्धों ने भी देवियों की कल्पना की है।

इस क्षेत्र से कई प्राचीन देवी के मन्दिर मिलते है। वि० स० ५४७ के छोटी सादड़ी के लेख के अनुसार वहां एक देवी का मन्दिर बनाया गया था। राजपूतों के शासनकाल में देवी की उपासना अत्याधिक बढ़ी थी। खरतरगच्छ पट्टावली में जिन वल्लभ सूरि के वर्णन में चित्तौड़ में चंड़िका के स्थान का उल्लेख[28] आता है जहां उक्त मुनि कुछ समय के लिए ठहरे थे। मेवाड़ के महाराणाओं ने भी यहां कई देवी के मन्दिर बनवाये थे। महाराजा कुम्भा स्वयं देवी का भक्त था 'भगवती चरण किंकरेण नृप" शब्द उसका एक विरुद है। महाराणा हमीर, सांगा और बणवीर के बनवाये हुए देवी के मन्दिर दुर्ग पर विद्यमान है। अष्ट गौरी और नव दुर्गा की प्रतिमाएं विशेष रूप से बनती थी। कीर्तिस्तम्भ में कई कई देवी प्रतिमाऐं हैं। जिनके आयुध में भी प्रायः साम्यता मिलती है। इसीलिए शिल्पियों ने जनसाधारण की सुविधा के लिए उनके नीचे नाम भी दे दिये गये है ताकि उन्हे लोग जान सके। ये मूर्त्तियां ४थी मंजिल पर मुख्य रूप से हैं इनमें से कुछ के नाम ये हैं— त्रिखंडा, तोतला, त्रिपुरा,लक्ष्मी,नन्दा, क्षेमंकरी, सर्वती,महरंडा,आमणी, सर्वमंगला, रेवती,हरिसिद्धि, लीला,सुलीला,लीलांगी, ललिता, लीलावती

---

२८) खरतरगच्छ पट्टावली पृ० १०

उमा, पार्वती, गौरी, हिंगलाज आदि । मंडन ने १३ गौरियों की, ६ दुर्गा की. ८ अष्टमातृकाओं १२ सरस्वती भद्रकाली चण्डी आदि देवियों की मूर्तियों का उल्लेख किया है ।[29] चित्तौड़ के पास, झांतला माता, लालबाई, फूलबाई के मंदिर और आवोरी माता के मन्दिर बड़े प्रसिद्ध है। आज भी यहाँ प्रति वर्ष लाखों आदमी दर्शनार्थ जाते हैं। दुर्ग पर बने मन्दिरों में बाणमाता और अन्नपूर्णा के मन्दिर उल्लेखनीय हैं। यद्यपि इन मन्दिरों का वर्तमान भाग तो आधुनिक है किन्तु गर्भ गृह के बाहर लगे लेखों से इन मन्दिरों की प्राचीनता का आभास होता है। बाणमाता के मन्दिर के बाहर लेख की कुछ पंक्तियां पढ़ी जा सकती हैं। नीचे की तरफ वि०सं० १७८१ आषाढ़ सुदि का महाराणा जगतसिंह के समय का लघु लेख खुदा हुआ है। अन्नपूर्णा जी के मन्दिर काले पत्थर का एक लघु लेख खुदा हुआ है। यह अप्रकाशित है। इसके अनुसार महाराणा कुंभा ने मन्दिर के लिये कुण्ड़ला ग्राम, रायमल ने खेड़ी ग्राम सांगा ने चोगावड़ी और रत्नसिंह ने पनोत्या ग्राम भेंट में दिये थे।

अन्य उल्लेखनीय मन्दिरों में कालिका का मन्दिर है। यह प्राचीन सूर्य मन्दिर था। इसके स्तम्भों पर वि० सं० १८६३ के ३ लेख, १८६४ का एक लेख और वि० सं० १८४४ का एक लेख खुदे हुये हैं।

नाथ सिद्ध और पीरों की उपासना

नाथ सिद्ध और पीरों की उपासना यहां लम्बे समय से चल रही है। मध्यकाल तक नाथों का बड़ा जोर था। राजस्थान में गोरखनाथ को बहुत मान्यता दी गई है। इनके सम्बन्ध में कई कथाएं प्रचलित है। जनसाधारण में विश्वास प्रचलित है कि गोरखनाथ[30] अमर है। एवं इन्हें कई प्रकार की असाधारण सिद्धियां प्राप्त है। योग बल से इनके द्वारा गुरू को छुड़ाना और पूर्णमल और भर्तृहरि को आश्रय देना

(२९) महाराणा कुम्भा पृ० २९८

(३०) शोध पत्रिका वर्ष ७ अंक २–३ पृ० ७८ से १०४

बड़ा विख्यात है। संगीतराज[31] में देव पूजनार्थ अन्य देवताओं के साथ गोरखनाथ मीननाथ सिद्धनाथ आदि का उल्लेख है। अतएव पता चलता है कि महाराणा कुंभा के शासनकाल में इनकी पूजा का अत्यधिक प्रचार था। इनकी साधनाएं हठयोग से सम्बन्धित थी। इनके अनुसार सम्पूर्ण संसार में महा कुण्डलिनि नामक शक्ति परिव्याप्त हो रही है। व्यक्त होने पर इसे कुण्डलिनि कहते हैं। इसको जागृत करने के लिए योगिक साधनाएं आवश्यक हैं। शरीर में कई चक्र होते हैं। अन्तिम चक्र सहस्राधार चक्र है। जहां इड़ा पिंगला और सुषुम्ना मिलती हैं। सन्तमत में सुरति कमल नामक एक और चक्र की कल्पना की गई है। इस पंथ के मानने वालों ने स्मार्त आचारों की बड़ी निन्दा की है।

इनके अतिरिक्त तेजा जाट[32] को भी सिद्धों की श्रेणी में रक्खा है। इनके देवरों की पूजा सर्वत्र प्रचलित है। इनके अतिरिक्त कालाजी के देवरे भी प्रसिद्ध है। यह प्राचीन नागपूजा का रूपान्तर है।

वि० सं० १३०० से लेकर १५०० तक धार्मिक क्रांति का युग था। नाथों की उपासना से अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होकर सन्तमत का प्रादुर्भाव हुआ। कबीर, नामदेव छीपा, धन्ना जाट, रेदास आदि कई सन्त बड़े प्रसिद्ध है। मीराबाई चित्तौड़ में ही हुई थी। उस पर इन सन्तों का बड़ा प्रभाव था।

जैन धर्म

मेवाड़ का जैन धर्म से सम्पर्क अत्यन्त प्राचीन काल से था। बडली[33] के वीर संवत् ८४ के लेख में मध्यामिका नगरी का उल्लेख

---

(३१) संगीतराज नृत्यरत्नकोश प्रथम परीक्षण श्लोक १५७–१५८ पृ० १४

(३२) पाँच पीरों के नाम इस प्रकार मिलते हैं—

पाबू हरबू रामदे मांगलिया मेहा
पांचू पीर पधारजो मांगादे जेहा ।।

(३३) नाहर जैन लेख संग्रह भाग १ पृ० ९७

है। कल्पसूत्र स्थिरावली में मज्झिमिया शाखा[34] का उल्लेख है। मथुरा से प्राप्त लेखों में मज्झिमिआशाखा के साधुओं[35] का उल्लेख है। ऐसी मान्यता है कि आर्य सुस्थित और सुप्रतिबुद्धगणि से कोड़िय[36]गण निकला जिसके ४ कुल हुए और उनकी फिर शाखाए हुई। मज्झिमिआ शाखा भी एक हैं। अतएव प्रतीत होता हैं कि चित्तौड़ के समीप स्थित नगरी का सम्बन्ध मथुरा से था। एवं दिगम्बर साधु मथुरा से ही इस क्षेत्र में आए हों तो कोई आश्चर्य नहीं। अर्थुणां के वि० स० ११३६ वैशाख सुदि ३ के लेख में छत्रसेन[37] नामक एक साधु को मथुरान्वय कहा गया है। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार यहां कई उल्लेखनीय साधु हुए हैं। इनमें सिद्धसेन दिवाकर और हरिभद्र सूरि विशेष उल्लेखनीय है। जैनाचार्य देवगुप्त सूरि ७६ वि० पू०यज्ञदेव सूरि२१५ से २३५ वि० आदि का इस क्षेत्र में विचरण करने का उल्लेख मिलता हैं। किन्तु इनकी प्राथमिकता के सम्बन्ध में कोई निश्चित सामग्री उपलब्ध नहीं हैं।

दिगम्बर सम्प्रदाय,

दीर्घ काल तक चित्तौड़ विद्या का केन्द्र रहा है यहां प्रसिद्ध साधु

---

(३४) समदर्शी आचार्य हरिभद्र सूरि पृ० ६

(३५) विजयमूर्ती जैन लेख संग्रह भाग २ ले० सं० ६६

(३६) थेरेहिंतो सुट्ठियं सुप्पडिबुद्धे हिंतो कोडिय काकदएहिंतो बग्घा-
वच्चसगुत्तेहिंतो इत्थरण कोडियगणेणाम गणे णिग्गए। तस्सणं
इमाओ चतारि साहाओ चतारि कुलाइं एवमाहिज्जंति ॥
से किं तं साहाओ ? साहाओं एवमाहिज्जंति। तंजहा—
उच्चानागरी विज्जाहरी वइरी य मज्झिमिल्लाय ॥ (१ कल्पसूत्र)

(३७) यो माथुरान्वय नभस्तल तिग्गमभानो व्याख्यानरंजित समस्त
सभाजनस्य श्री छत्रसेनसुगुरोश्चरणारविंदसेवापरो भवदनन्य
मना: सदैव। ११

अर्थुणा का लेख-जैनहितेषी भाग १३ अङ्क ८ पृ० ३३२

एलाचार्य हुए जिनके पास शिक्षा प्राप्त करने के लिए वीरसेन[38] नामक साधु आए थे। चित्तौड़ से ही जाकर वड़ोदा में इन्होंने[39] धवला टीका पूर्ण की थी। इनके ही शिष्य जिनसेन और गुणभद्राचार्य हुए जो अत्यन्त प्रसिद्ध है।

चित्तोड़ के दिगम्वर साधुओं का सम्पर्क बरावर[40] दक्षिणी भारत से भी वना हुआ था। यहाँ बराबर दक्षिणी भारत से साधु आया जाया करते थे। प्राचीन दिगम्वर ग्रंथों में चित्तौड़ का उल्लेख कई स्थलों पर मिलता है। पउमचरिउ नामक[41] अपभ्रंश ग्रंथ में इसका उल्लेख कई स्थलों पर है। एक बार तो स्त्रियों के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए चित्तौड़ और उज्जैन की तुलना की गई थी। एक अन्य स्थल पर चित्तौड़ और दशपुर का साथ २ उल्लेख हैं। सोमदेव सूरि[42] कृत नीति वाक्यामृत में भी इसी प्रकार एक प्रसंग वर्णित है कि हुण राजा ने व्यापारी का वेष वनाकर धोखे से चित्रकूट पर अधिकार कर लिया। चित्रकूट नामक २ दुर्ग हैं (१) बुन्डेलखंड में और (२) मेवाड़। सौमदेव सूरि द्वारा वर्णित चित्रकूट मेवाड़ का चित्तौड़ है इस पर अन्यत्र विचार किया जा चुका है।

---

(३८) कालगते कियत्यपि ततः पुनश्चित्रकूटपुरवासी।
श्रीमानेलाचार्यो वभूव सिद्धान्ततत्वज्ञः ॥ १७६ ॥
तस्य समीपे सकलं सिद्धान्तमधीत्य वीरसेनगुरु।
उपरितमनिवन्धनायधिधाकारानष्टं लिलेख ॥१७७॥ श्रुतावतार

(३९) उपरोक्त श्लोक १७८–१७९

(४०) नागरी अक्षरों में वलगाम्वे (दक्षिणी भारत) में कन्नड का एक शिलालेख इस प्रकार है। इसमें चित्रकूटाम्नाय के साधुओं का उल्लेख है। स्वस्ति श्री चित्रकूटाम्नायदावलि मालवद शान्तिनाथ-देव-सम्वन्व श्री वलात्कार गण मुनिचन्द्र सिद्धान्त-देवर-शिसिनु-अनन्त-कोर्ति देवरु हेग्गडे केसव देवङ्ग धारापूर्वक माडि कोटेवु प्रविष्टे पुण्य सान्ति"
(इपि ग्राफिआ कर्नाटिका वोल्यूम III पृ० स० १३४)

(४१) उपरोक्त अध्याय १ फु० नो०-

(४२) श्रुयते किल हुणाधिपतिः पुप्यपुटावाहिभिः सुमटे चित्रकुटं जग्राह ८ (दुर्ग समुद्देश)

राजा अल्लट के शासनकाल में श्वेताम्बर सूत्रों के अनुसार एक वाद विवाद श्वेताम्बरों और दिगम्बरों[43] के मध्य सम्पन्न हुआ जिसमें श्वेताम्बर साधु प्रद्युम्नसूरि विजित हुए। इससे भी महत्वपूर्ण सूचना काष्ठासंघ के लाट वागड़ की गुर्वावली में मिलती है जिसमें वर्णित है कि चित्तौड़ में साधु प्रभाचन्द्र हुए जिन्होने चित्तौड़ में राजा नरवाहन की सभा में विकट दुर्जय शैवों को हराया था[44]। सौभाग्य से इसी घटना का उलेल्ख राजा नरवाहन के राज्यकाल[45] के वि० सं० १०२८ के एक लिंग जी के लेख में भी है। इन्होंने विविधाचार नामक ग्रंथ विरचित किया था।

इसी काल में श्री कीर्ति नामक एक और दिगम्बर आचार्य[46] का उल्लेख मिलता है। ये चित्तौड़ से नेमीनाथ की यात्रा को जाते समय पाटन में रुके थे। वहां के राजा ने इन्हें मंडलाचार्य का विरुद और सुखासन भेंट किया था। अप्रभंश कथा कोश के रचियता श्री चन्द्र ने अपनी गुरु

---

(४३) वादजित्वा उल्लुकक्ष्मा समायां तलपाटके।
आत्तोकं पटोयस्य श्रीप्रद्युम्नपूर्वजस्तुवं ॥
(समरादित्य संक्षेप का प्रस्तावनाश्लोक)

(४४) चित्रकूट दुर्गे राजानरवाहनसभायां विकटशैवादिवृन्दवन-दहनदावानलविविधाचारग्रंथकर्ताश्रीमत्प्रभाचन्द्र देव
(अनेकान्त वर्ष १५ कि० ३ पृ० ३८)

(४५) जरनल वम्बई ब्रांच रायल एशियाटिक सोसाइटी भाग २२ लेख सं० १०

(४६) श्री कीर्ति प्राप्यत्कीर्ति सूरि सूरिगुणं ततः ॥ १९ ॥
तदीयं देशना वारि सम्यग्-चित्रकूटाच्चचालसः
श्रीमन्नेमि जिनाधीशतीर्थयात्राकिमिततः ॥ २१ ॥
अणहिलपुरं रम्यमाजगाम-मुनिन्द्राय ददौ नृपः।
विरुदं मंडलार्यः स छत्रं सुखासनम् ॥ २३ ॥
अनेकान्त वर्ण १६ अङ्क २ पृ० ७२

परम्परा में श्री कीर्ति नामक एक आचार्य का उल्लेख किया है जिनके शिष्य आचार्य श्रुत कीर्ति परमार राजा भोज से सन्मानित थे। स्मरण रहे कि राजा भोज का राज्य चित्तौड़ भी रहा था।

चित्तौड़ में दिगम्बर जैन सम्प्रदाय की प्राचीनता सिद्ध करने वाली ३ कृतियाँ हैं (१) हरिषेण की धर्म परीक्षा और (२) जैन कीर्ति स्तंभ (३) महाकवि ड्ड्डा की कृतियां। इन कृतियों से पता चलता है कि उस समय दिगम्बरों का यहाँ बड़ा प्राबल्य था। काष्ठासंघ के लाटवागड़ के पुन्नाट गच्छ में महेन्द्र सेन नामक एक आचार्य का उल्लेख मिलता है जिन्होंने त्रिषष्टिशलाका पुरुष[47] चरित नामक ग्रंथ की रचना की थी जो अब उपलब्ध नहीं है। वि० स० १२०७ की चित्तौड़[48] की प्रशस्ति के रचयिता दिगम्बर साधु जयकीर्ति के शिष्य राम कीर्ति थे। इसके पश्चात् वि० सं० १३७५ और १३७६ के २ लेख निषेधिकाओं के मुझे हाल ही में गंगरार में मिले हैं जिन्हें मैंने वीर वाणी जयपुर में प्रकाशित कराये हैं। इसके अतिरिक्त २ लेख और वि० १३७५ और १३८८ के निषेधिकाओं[49] के मिले हैं। इनसे प्रकट होता है कि उस समय तक वहाँ दिगम्बर साधु रहते थे।

महाराणा सांगा के शासन काल तक दिगम्बर साधुओं का यहां उल्लेख मिलता है। उसके शासन काल में कई ग्रन्थों की यहां प्रतिलिपियाँ भी कराई गई जो अब राजस्थान के विभिन्न भण्डारों में है।

---

(४७) त्रिशष्टिपुराणपुरुपचरित्रकर्ता स्वकीयतपस्तपनप्रकटप्रभावान् मेदपाटदेशेप्रकटप्रभावक्षेत्रपालसंबोध्य सकलमहिमं उल्लेश्वष्वप्वाश्चयं चकार तेषाँ श्री महेन्द्र सैन देवाना (भट्टारकसम्प्रदाय पृ० २५१)

(४८) श्रीजयकीर्त्तिशिष्येण दिगम्बरगणेशिना। प्रशास्तिरीदृशीचके श्री रामकीर्त्तिनां (ए०इ० II सं० ३३)

(४९) शोध पत्रिका वर्ष ८ अङ्क १ और २ पृ० २३–२४। यह लेख चित्तौड़ से ६ मील दूर सैणवा ग्राम में लग रहा है। शिव मन्दिर में लगे हुए हैं ऐसा प्रतीत होता है कि निषेधिकाओं को शिव मन्दिर में बदल दिया गया था।

चित्तौड़ के समीप ही स्थित गंगराल ग्राम के मध्य प्राचीन दिगम्बर जन मन्दिर है। इसकी विशेपता यह है कि एक ही. जमती पर वैष्णव और जैन मन्दिर वने हुए हैं जो काफी प्राचीन है।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय :—

चित्तौड़ में श्वेताम्बरों में कई उल्लेखनीय विद्वान् हुए हैं। जैन परम्पराओ में कुछ जैनाचार्यों का इस क्षेत्र में आगमन का उल्लेख मिलता है किन्तु न तो माध्यामिका में खुदाई करने पर कोई सामग्री मिली है और न इस सम्वन्ध में कोई प्रमाणित उल्लेख ही मिलता है। ऐतिहासिक उल्लेखनीय विद्वानों में सिद्धसेन दिवाकर है जिनका चित्तौड़ से सम्वन्ध रहा था। इस सम्वन्ध में पूर्व में लिखा जा चुका है। हरिभद्र सूरि वहुश्रुत विद्वान थे। इन्होंने चित्तौड़ में ही अपना ग्रंथ धूर्ता ख्यान[50] पूर्ण किया था। पाटन के सिंघवी पाड़ा के जैन भण्डार में चैत्य वन्दन टीका (ललित विस्तरा) की प्रतिलिपि की वि० सं० ११८५ की प्रशस्ति में हरिभद्र सूरि को चित्तौड़ का निवासी लिखा है " कृतिः चर्तुदशशतप्रबन्धकर्तु विरिहांकस्य चित्रकूटाचर्लनिवासिनःहरिभद्र सूरेः"[51] वर्णित है। विक्रम की ६वीं शताब्दी में राजस्थान में कृष्णर्षि नामक एक जैन साधु वड़े विख्यात हुए हैं। इन्होंने चित्तौड़ में कई लोगों को दीक्षित किया था। इनके शिष्य जयसिंह सूरि ने धर्मोपदेश माला की टीका लिखी थी। इसकी प्रशस्ति की गाथा १३ और १४ में कृष्णर्षि के लिए लिखा है कि ये गुजरात से लेकर नागोर तक कई स्थानों की यात्रा कर अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण कराया। महारावल अल्लट के समय श्वेताम्वरों को राज्याश्रय मिलाथा। विमलचन्द्र नामक एक जैनसाधु इसी काल में चित्तौड़ में[52] हुए थे। अल्लट के मंत्रियों में भी कई जैन थे जिन्होंने कई

(५०) धूर्ताख्यान गाथा १२३ ऐंव १२४

(५१) ए डिस्क्रप्टीव केटलोग आफ़ मेन्युस्क्रिप्ट पृ० २४

(५२) शोध पत्रिका वर्ण १ अङ्क ४ में श्री नाहटा जी का लेख

मन्दिर बनवाये जिनकी प्रतिष्ठा संडेरगच्छ के यशोभद्र सूरि ने की थी।[53] इनके द्वारा प्रतिष्ठित एक प्राचीन प्रतिमा करेड़ा के जैन मन्दिर में अब भी विद्यमान हैं। कहते हैं कि अल्लट की राणी हरिया देवी को रेवती दोष था जिसे बलभद्र सूरि ने दूर किया था। इसी काल में पद्युम्न सूरि हुए थे जो बड़े पंडित थे। उस समय श्वेताम्बरों को राजाश्रय मिलना शुरू अवश्य हो गया था किन्तु चैत्य वासियों की प्रधानता भी बनी रही थी। जिन वल्लभ सूरि ने इनका बराबर सामना किया था। इन्होंने विधि चैत्यों की स्थापना कराई। चैत्य वासियों से इनका बड़ा संघर्ष रहता था। इनको इन चैत्य वासियों के अशास्त्रीय कार्यों पर बड़ी अश्रृद्धा थी। इसी कारण इन्होंने चैत्य वासियों को जिसमें ये पहिले दीक्षित हुए थे। छोड़[54] दिया। इनका वर्णन पहिले किया जा चुका है। जिनवल्लभ सूरि के बाद जिन दत्त सूरि को चित्तौड़ में इनका पट्टधर बनवाया था इनका भी चैत्यवासियों ने बड़ा विरोध किया था। नगर प्रवेश के समय काला सांप, नकटी औरत आदि उनके सम्मुख भेजे। ज्ञानादित्य सूरि जो उनके पास थे उन्होंने कहा कि यह अपशुकन नहीं है। मेवाड़ में उस समय व्यापक रूप से जैन धर्म का विकास हो रहा था। चित्तौड़ के साथ २ नागदा और आघाट भी इसके केन्द्र थे। उस समय चित्तौड़ में कई जैन परिवार रहते थे। जैसलमेर भंडार संग्रहित कर्मविपाक ग्रंथ की वि० सं० १२९५ की प्रशस्ति से पता चलता है कि चित्तौड़ के निवासी श्रेष्ठि राल्हा जिनेश्वर सूरि के दर्शनार्थ जयतुग्नि के राज्य में मालवा[55] गया था।

इसमें शुत्रञ्जय को इनकी यात्रा आदि करने का[55] भी उल्लेख हैं। सौभाग्य से खरतरगच्छ पट्टावली में भी इसका उल्लेख है। यह यात्रा वि.सं.१२८९ में पूर्ण की थी। उसके पूर्व वि०सं० १२८८ की ज्येष्ठ सुदि

---

(५३) उपरोक्त

(५४) अपभ्रंश काव्य त्रयी भूमिका

(५५) वरदा वर्ण ९ अङ्क ३ पृ० ६-७ मेरा लेख और वर्ण ९ अङ्क ४ में डा० दशरथ शर्मा द्वारा प्रस्तुत किया संशोधन।

१२ श्रावणान्त वर्ष को ये चित्तौड़ में थे। यहां अजितसेन गुणसेन, अमृतमूर्ति, धर्ममूर्ति, राजमती, हेमावली, कनकावली, रत्नावली गणी आदि को दीक्षा दी और आसाढ़ वदि २ को श्री नेमीनाथ पार्श्वनाथ ऋषभदेव की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की। इसमें ८००० लक्ष्मीधर श्रेष्ठी ने और शेष उक्त राल्हा ने व्यय किये थे। श्रेष्ठिराल्हा उस समय श्री सम्पन्न रहा[56] होगा। जैत्रसिंह के वाद तेजसिंह मेवाड़ का शासक वना। इसके समय में भी जैन धर्म की अभूतपूर्व उन्नति हुई। इसके समय के प्रतिलिपि किये २ ग्रंथ अब तक मिल चुके हैं। एक वि० सं० १३०६ में लिखी पाक्षिकवृत्ति नांमक पुस्तक है इसे ठाकुर वयजल में माघ वदि १४ को आहड में पूर्ण किया था। इस ग्रंथ की प्रशस्ति ये दक्षिण और उत्तर के राजाओं का मान मर्दन[57] करने वाला वर्णित किया किया है। दक्षिण के राजाओं में गुजरात के शासक वीसलदेव रहा होगा। दूसरा ग्रंथ वि० सं० १३१७ में श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र चुर्णि लिखा गया था। इसमें तेजसिंह के महामात्य समुद्धर का उल्लेख है। सोभाग्य से वि० सं० १३१६ के अन्य ताम्र पत्र में भी मिल चुका है। १४ वीं शताब्दी में पेथड़शाह ने चित्तौड़ में एक जैन मन्दिर वनवाया था और इसके पुत्र झांझण१ ने३४० वीं यहां भी चैत्य परिपाटी वर्णित की हैं।[58]

इस समय चित्तोड़ में खरतरगच्छ, चैत्रागच्छ, और वृहद्गच्छ भृतपुरीय गच्छ के आचार्य ही प्रमुख रूप से कार्य कर रहे हैं। इनमें खरतरगच्छ के आचार्य विशेष उल्लेखनीय हैं। आचार्य जिन प्रवोध ने पोष सुद ६ वि०सं० १३३४में यहां विहार किया था और उस समय वड़ा महोत्सव किया गया है।

इसका आयोजन घांधल के पुत्र वाहड श्रावक आदि ने किया था। इस परिवार से सम्वन्धित चन्द्रदूताभिधान ग्रंथ की एक प्रशस्ति

---

(५६) युगप्रधान गुर्वावली पृ० ४६

(५७) उ० इ० पृ० १६६ वरदा वर्ष ५ अङ्क २ पृ० ६६

(५८) शोधपत्रिका वर्ष १ अंक ४ में श्री नाहटा जी का लेख

जैसलमेर से वि०सं० १३४३ की मिली है। इस परिवार का एक खंडित लेख मैंने भी चित्तौड़ में देखा है। उस समय फाल्गुण वदि५ सं० १३३४ को प्रतिष्ठा मुहुर्त सम्पन्न[59] हुआ। इसमें मुनिसुव्रत स्वामी, युगादि देव अजितनाथ, वासुपूज्य महावीर समवसरण पट्टिका, शान्ति नाथ चैत्य में स्थापित किये । यह प्रसङ्ग वड़ा महत्वपूर्ण है। यह शान्तिनाथ चैत्य चित्तौड़ पर स्थित शृङ्गार चंवरी का मन्दिर हो सकता है । इस मन्दिर में जो समवसरण के दृश्यों के लिये ताके वड़ी दो रखी हुई हैं। सौभाग्य से इससे सम्बन्धित एक शिलालेख भी वि० सं० १३३४ के वैशाख सुदि ३ बुधवार का मिल चुका है। इससे भी निर्माता का नाम समुद्धर[60] दिया गया है। फाल्गुण सुदि ५ को ध्वजारोपण महोत्सव किया गया। यह मेवाड़ के प्रधान अरिसिंह को सानिध्य में किया गया था और इस खर्चे का भार भी धांधल के पुत्र रतन और वाहड[61] ने ही उठाया था। चैत्रागच्छ के आचार्यों में रत्नप्रभ सूरि विशेष उल्लेखनीय हुए हैं जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

वि० सं० १३३५ का एक लेख चित्तौड़ को महलों के चौक में गडा हुआ मिला था। जिसे ओझा जी ने उदयपुर संग्रहालय सुरक्षित कराया है इसमें भी भृर्तपुरीय गच्छ के आचार्य प्रद्युम्न सूरि के उपदेश से रावल समरसिंह की माता जयतल्ल देवी[62] ने श्याम पार्श्व-

---

(५६) युगप्रधान गुर्वावली पृ० ५६

(६०) स्वस्ति सं० १३३४ वैशाख सुदी ३ बुध दिने श्री वृहदगच्छे सा० प्रह्लादन पुत्र सा० रत्नसिंह कारित श्री शान्तिनाथ चैत्ये सा० समधा पुत्र सा० महणभार्या सोहणी पुत्री कुमरल श्राविकाया माता मंह सा० ठाडा श्रेयसे देवकुलकारिता।
आ० स० वे० इ० १६०३-०४ पृ० ५६

(६१) युगप्रधान गुर्वावली पृ० ५६

(६२) श्रीभृर्तपुरीय गच्छे श्री चूड़ामणी भर्तृपुरे श्री गुहिलपुत्र विहार आदीश प्रतिपत्तौ श्री चित्रकूट महादुर्गे मेदपाटाधिपति श्री तेजसिंह राज्ञाश्री जलतल्ल देव्याश्री श्यामपार्श्वनाथवसहीस्वश्रेयसे कारिता
(वरदा वर्ष ६ अङ्क १ पृ० ६२)

नाथ का मन्दिर बनाने का उल्लेख है। उसके साथ २ मठके खर्चों के लिये चित्तौड़, आहड़ खोहर सज्जनपुर की मंडपिकाओं से दान देने व्यवस्था भी की थी। उस लेख को कविराज श्यामलदास जी ने सबसे पहले प्रकाशित कराया था। इसका संशोधित पाठ श्री रतनचन्द्र जी अग्रवाल ने हाल ही में प्रकाशित कराया था। इसमें जो दान की व्यवस्था की गई है वह इस प्रकार है।

(१) चित्तौड़ की मडपिका से
उधरा[63] (प्रचलित) द्रम २४ और उत्तरायन के समय
४ कर्ण घी और ६ कर्ण तेल

(२) आघाट की मंडपिका से .... ३६ द्रम
(३) खोहरकी मंडपिका से .... ३२ द्रम
(४) सज्जनपुर की मंडपिका से ३४ द्रम

इन उपरोक्त गच्छों के साधुओं के अतिरिक्त अन्य गच्छ के साधु भी क्रियाशील थे। आंचलगच्छ की पट्टावली से प्रकट होता है कि उस गच्छ साधु अमितसिंह सूरि के उपदेश से रावल समरसिंह ने अपने राज्य में जीवहिंसा रुकवादी थी। इसी समय सोमप्रभ सूरि ने चित्तौड़ में ब्राह्मणों की सभा में विजय प्राप्त की थी।[64] १३५८ वि० का एक अप्रकाशित लेख शृंगार चंवरी में भी लगा हुआ है।

समरसिंह के समय में वि० सं० १३५२ में देश वैकालिक सूत्र राजमन्त्री श्री सीमंधर के समय लिखाया था। यह ग्रन्थ अब पाटन

---

(६३) श्री रतन चन्द्र अग्रवाल जी के अनुसार उधराद्रम वे हैं जो उस समय प्रचलित थे। अप्रचलितमुद्राओं के भी लेख मिलते हैं। यथा चतुराशीति सहस्र संख्या जीर्णटङ्कास्तैरुक्तास्तदापेथेडेन तदनुमानेना पर वहुद्रव्य व्ययम् विचार्य लेख्य बहीका नीरे क्षिप्ता।

(उपदेश तरंगिणी पृ० १२०)

(६४) शोधपत्रिका वर्ष १ अङ्क ४ में श्री नाहटा जी का लेख

भंडार में है। अल्लाउद्दीन का आक्रमण चित्तौड़ के लिए बड़ा भयंकर सिद्ध हुआ। सेकड़ों मंदिर नष्ट हो गये किन्तु कुछ समय बाद स्थिति सामान्य हो गई। उस काल के प्रतिलिपि किए गये कई ग्रन्थ मिले हैं। इनमें खम्भात के भंड़ार में वि.सं.१३६५ में प्रतिलिपि किया कालिकाचार्य कथा ग्रन्थ उल्लेखनीय है। यद्यपि पूर्व मध्यकाल की कई कला कृतियां नष्ट हो गई किन्तु स्थिति में शीघ्र ही परिवर्तन आ गया। वि. सं. १३९२–९३ के आसपास हमीर ने चित्तौड़ विजय की और वापस देश मे व्याप्त अराजकता को समाप्त किया। इस काल में कई व्यापारी वर्गों ने भी सहायता दी। मेवाड़ की ख्यातों में वर्णित है कि हमीर को चित्तौड़ विजय करने में जाल मेहता ने सहायता दी थी।

राजमन्त्री रामदेव परिवार :—

रामदेव नवलखा परिवार महाराणा खेता के समय से ही प्रसिद्ध रहा था। वि. सं. १४९४ के नागदा के अद्‌भुतजी की मूर्ति के लेख में इनकी विस्तृत वंश परम्परा दी हुई थी। इस परिवार में सबसे उल्ले–खनीय रामदेव था। इसका सबसे पहला लेख करेड़ा जैन मन्दिर की विज्ञप्ति महालेख वि. सं. १४३१ का है। यह महाराणा खेता और लाखा के समय मंत्री था। इसके बाद भी कई मूर्तियों के लेख और ग्रन्थ प्रशस्तियां इस परिवार की[65] मिली हैं। इस परिवार ने केलवाड़ा में मेरुनन्दन उपाध्याय से उक्त विज्ञप्ति ग्रन्थ की प्रतिलिपि वि. सं. १४४६ में कराई थी। इसकी प्रशस्ति में रामदेव और उसकी पत्नी मेलादे का उल्लेख है। इन्हीं मेरूनन्दन आचार्य की मूर्ति वि. सं. १४६९ में देलवाड़ा (मेवाड़) में इसी परिवार ने बनाकर लगवाई थी जिसकी प्रतिष्ठा जिनवर्द्धन सूरि ने भी की थी। इन जिन वर्द्धन सूरिजी की प्रतिमा भी इस परिवार ने देलवाड़ा में वि. सं. १४८६ में बनवाई थी। इसी समय द्रोणाचार्य नामक आचार्य की एक मूर्ति और प्रति–

---

(६५) महाराणा कुंभा पृ. ३०५ एवं ३३३ करेड़ा मंदिर के विज्ञप्ति महालेख की वि.सं. १४४६ की प्रशस्ति में रामदेव "राज्य प्रधान"- वर्णित किया है।

ष्ठापित की गई थी। मेलादेवी ने ज्ञानहंस गणि से संदेहदोलावली नामक पुस्तक लिखाई[66] थी। इसकी प्रशस्ति वि. सं. १४८६ की दृष्टव्य है। यह महाराणा खेता के समय से लेकर लाखा के समय तक मंत्री था। इसके दो पुत्र थे (१) सहणा और (२) सारंग। सहणा महाराणा मोकल और कुंभा के समय में मुख्य मन्त्री था। इसके ८ पुत्र थे। इसका वर्णन आवश्यकवृहदवृत्ति की प्रशस्ति और वि. सं. १४६१ के देलवाड़ा के लेखों में हैं। सारंग का वर्णन वि. सं. १४६४ के नागदा के अद्‌भुतजी की मूर्ति के लेख में है। इस प्रकार यह परिवार बड़ा ही सम्पन्न था। यह परिवार यद्यपि देलवाड़ा (मेवाड़) का था किन्तु राजमन्त्री होने से चित्तौड़ से सम्बन्धित था।

वीसल श्रेष्ठि परिवार :—

वीसल ईडर का रहने वाला था और उक्त रामदेव की पुत्री खीमाई के साथ इसका विवाह हुआ था। इसका पिता श्री वत्सराज ईडर के राजा रणमल का मंत्री था। इसके ४ पुत्र थे। (१) गोविन्द (२) वीसल (३) अकूर सिंह और (४) हीरा। गोविन्द द्वारा संघ निकालने का सविस्तार वर्णन सोमसौभाग्य काव्य में है। वीसल का भी वर्णन उक्त ग्रन्थ में मिलता है। इसके २ पुत्र धीर और चम्पक थे। वीसल ने आचार्य सोमसुन्दर सूरि से विशालराज को वाचक पद दिलाने हेतु बड़ा भारी महोत्सव किया था। क्रियारत्न समुच्चय की दस प्रतियां इसने लिखाई थी। जिसकी प्रशस्ति में भी इसका बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। इस परिवार ने चित्तौड़ में श्रेयांसनाथ का मंदिर बनवाया और जिसकी प्रतिष्ठा आचार्य सोमसुन्दर सूरि से कराई थी। चम्पक ने मनोरथ कल्पदृम पार्श्वनाथ की प्रतिमा स्थापित कराई थी और जिनकीर्त्ति को सूरि पद दिलाने के लिए बड़ा महोत्सव किया था।[67]

---

(६६) उपरोक्त पृ. ३०५ एवं ३३३

(६७) उपरोक्त पृ. ३३६ एवं ३३७ का फुटनोट सं. १३ से १५

श्रेष्ठि गुणराज परिवार :—

गुणराज चित्तौड़ का रहने वाला था जो अहमदाबाद में भी रहता था। इसका पूर्वज धनपाल अहमदाबाद व्यापार के लिए गया था। गुणराज का सविस्तार वर्णन वि. सं. १४९५ की चित्तौड़ की महावीर प्रसाद प्रशस्ति, सोमसौभाग्य काव्य, राणकपुर के वि. सं. १४९६ के जैन मंदिर लेख आदि में है। इसने विशाल संघ निकाला था। इसमें राणकपुर मन्दिर का निर्माता धरणशाह भी सम्मिलित था। आचार्य सामसुन्दर के नेतृत्व में इस संघ ने कई तीर्थों की यात्राएं की थीं। उक्त प्रशस्ति के श्लोक सं० ३८—३९ से पता चलता है कि यह गुजरात के बादशाह की सभा का सदस्य था। इसके पुत्रों में एक महाराणा मोकल की सभा का सदस्य था।[68]

इन परिवारों के अतिरिक्त भी चित्तौड़ में और भी कई उल्लेखनीय परिवार थे। इनमें खरतरगच्छ के उपासक भंडारी परिवार विशेष उल्लेखनीय हैं। इस परिवार के चितौड़ से कई शिलालेख मिले हैं जिनका वर्णन आगे कर दिया जावेगा। कुंभा के समय चित्तौड़ में खरतरगच्छ के साथ २ तपागच्छ का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है। युगप्रधान सोमसुन्दर सूरि का यहां कई बार विहार हुआ था। जैन कीर्तिस्तम्भ के पास स्थित महावीर प्रसाद और शृंगार चवंरी का जीर्णोद्धार भी उसी समय हुआ।[69]

महाराणा रायमल के समय जैन धर्म की बड़ी प्रगति हुई। खरतरगच्छ के कई साधु उस समय दुर्ग में रहते थे। वि. सं. १५३८ का एक अप्रकाशित शिलालेख रामपोल से मिला है। इसकी पांचवी पंक्ति में जिन हर्ष सूरि का उल्लेख है। उनके द्वारा प्रतिष्ठापित एक मूर्ति

---

(६८) उपरोक्त पृ. ३३८—३३९। राणकपुर का लेख पक्ति ३२ से ३४। सोमसौभाग्य काव्य का ९ वां सर्ग श्लोक ७१ से ७२ चित्तौड़ की महावीर प्रसाद प्रशस्ति।

(६९) उपरोक्त पृ. २०१—२०२

का लेख भी मैंने चित्तौड़ में देखा है जो वि. सं. १५३८ माह सुदि ५ गुरुवार का है। जिसमें भंडारी भोजा परिवार का उल्लेख है। उक्त रामपोल के लेख में जयकीर्ति महोपाध्याय, हर्ष कुंजरोपाध्याय, रत्नशेखरगणि ज्ञान कुंजरगणि हरि कुंजरगणि सत्य सुन्दरगणि, चरित्रमाला गणिनी आदि का उल्लेख है। गोमुख से वि.सं. १५४३ का एक जैन लेख और मिला है। इसमें खरतरगच्छ के जिनसमुद्र सूरि का उल्लेख है। खरतरगच्छ का ही एक वृहद शिलालेख वि.सं० १५५६ का है जो भी अप्रकाशित है चित्तौड़ से मिला है। यह लेख तीन वृहद शिलाओं पर उत्कीर्ण था। दो शिलायें नष्ट हो चुकी हैं तीसरी शिला जिसमें श्लोक सं० ८३ से १२८ तक का ही वर्णन उपलब्ध है। इसमें भी जयकीर्ति महोपाध्याय, विवेकरत्नसूरि, रत्नलोभापाध्याय, कुशल कुंजर, हर्षकुंजर आदि का उल्लेख है। इसमें भोजा के पुत्र भंडारी गोत्र के श्रेष्ठि द्वारा प्रतिष्ठा कराने का उल्लेख है। यह भोजा वि. सं. १५३८ वाले मूर्ति के लेख में वर्णित श्रेष्ठि ही होना चाहिये।

वि० सं० १५५१ में मेवाड़ के पुर ग्राम में लब्धीसार नामक दिगम्बर जैन ग्रन्थ लिखा।[70] इस ग्रन्थ की प्रशस्ति में खण्डेलवाल शाह गौत्र के श्रेष्ठि परिवार के लेख हैं। इस काल में चित्तौड़ में ग्रन्थ लेखन कार्य खूब हुआ। वि०सं० १५५३ में उपाशंग दशानां चरित्र ग्रन्थ चित्तौड़ में विनयराज सूरि ने लिखा। वि०सं० १५५५ शत्रुञ्जय माहात्म्य निधीशील द्वारा कुंभलगढ़ में प्रतिलिपि किया गया। सांगा के समय के भी कई ग्रन्थ मिले हैं। कुछ दिगम्बर जैन ग्रन्थ भंडार डीग के शास्त्र भंडार और कुछ जयपुर में हैं इसी समय का प्रतिलिपि क्रिया श्वेताम्बर ग्रन्थ खण्डन विभक्ति पाटन भंडार में है। यह वि० सं० १५७३ में प्रतिलिपि कराया गया था। पार्श्वपुराण की वि० सं० १५७४ में प्रतिलिपि चित्तौड़ में की गई थी। इसी समय चित्तौड़ में चैत्य परिपाटी भी लिखी गई। इसमें चित्तौड़ के

(७०) अनेकान्त दिसम्बर १९६६ में प्रकाशित मेरा लेख " मेवाड़ के पुर ग्राम की एक अप्रकाशित प्रशस्ति"

मन्दिरों और उनमें विराजमान मूर्तियों का भी उल्लेख है ।[71] वि० सं० १५९२ से १५९७ तक चित्तौड़ में लिखे ग्रन्थों में श्रेष्ठि सूरा का वर्णन मिलता हैं । यह पामेचा गौत्र का था और चित्तौड़ का रहने वाला था । इसका कोई पूर्वज राज्य मंत्री भी रहा था। पाटन भंडार में संग्रहित आवश्यक वृद्धद वृत्ति की प्रशस्ति में उक्त परिवार द्वारा वह ग्रन्थ अहमदावाद में जावड़ गौत्र के जैन श्रेष्ठि को बेचने का उल्लेख है। प्रशस्ति में स्पष्टत: लिखा है "चित्रकूटवास्तव्यम० सीया सुत मं० सुराकस्य दत्ता भंडार सार्थे ।" इसी परिवार द्वारा चित्तौड़ में वि०सं० १५९७ फाल्गुण वदि और आषाढ सुदि १० को क्रमश: उपासक दशांग सूत्र और स्थानांग सूत्र के ग्रन्थों की प्रतिलिपियां कराई गई थीं जो अब पाटन भंडार में हैं ।

कर्माशाह परिवार :–

यह महाराणा सांगा के समय मेवाड़ का यह उल्लेखनीय श्रेष्ठि था । शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार प्रवन्ध और शत्रुञ्जय के वि०सं० १५८७ के शिलालेख में इस परिवार का विस्तृत वर्णन हैं । शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार प्रवन्ध में महाराणा सांगा के समय के मेवाड़ का सुन्दर चित्रण खींचा गया हैं । इसमें चित्तौड़ के जैन मंदिरो के लिये किया गया वर्णन सुन्दर प्रतीत होता है । राणा सांगा के लिये वर्णित है कि उसने वाहुवल से समुद्र पर्यन्त पृथ्वी जीत ली थी और लोग उसे नया चक्रवर्ती मानते थे । जैसा कि ऊपर उल्लेखित है इसके दरवार में धर्म रत्न सूरि और पंडित पुरुषोत्तम के मध्य शास्त्रार्थ होने का उल्लेख भी किया है । कर्माशाह के परिवार वाले प्रारम्भ में कपड़े का व्यापार करते थे । इसका पूर्वज सारंगदेव वप्पभट्ट सूरि के समकालिक जैन राजा आमराज का वंशज था । इसका पिता तोला सांगा का वड़ मित्र था । इस ग्रंथ से पता चलता है कि महाराणा सांगा धर्मरत्नसूरि के आगमन के समय कई मील उनके सामना गया था । उनके व्याख्यान भी सुने थे एवं शिकार भी कुछ समय के लिये छोड़ दिया था ।

गुजरात का शाहजादा वहादुरशाह भाग कर राणा सांगा की शरण में चित्तौड़ में आ गया । कर्माशाह ने उसे विपत्ति के समय १ लाख रुपये

---

(७१) शोध पत्रिका वर्ष १३ अंक २ में श्री नाहटा जी का लेख

इस वास्ते दे दिये कि जब वह गुजरात के सिंहासन पर बैठे तब शत्रुञ्जय की प्रतिष्ठा कराने की आज्ञा दे देवे। कालान्तर में वह गुजरात में बादशाह बन गया तब उसने अपने पूर्व वचनानुसार कर्माशाह को शत्रुञ्जय में मूर्ति स्थापित कराने की आज्ञा दे दी। आज भी यह मूर्ति और उसका शिलालेख वहां विद्यमान है। इसकी एक विशेषता यह है कि मध्यकाल में पश्चिमी राजस्थान और गुजरात तक में मेवाड़ के जैन श्रेष्ठि विशेष उल्लेख रहे थे।[72]

राज मन्त्री भामाशाह परिवार :—

भामाशाह के पूर्वज अलवर के आसपास के रहने वाले थे और रणथम्भोर में नौकर थे। इस क्षेत्र में मुसलमानों का अधिकार हो जाने पर लोग चित्तौड़ चले गये थे। वि० सं० १६०६ की जिनदत्त चरित ग्रंथ की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि रणथम्भोर पर खिजखां शासक था। भामाशाह के पिता लूंकागच्छीक पट्टावली के अनुसार उक्त सम्प्रदाय के देपागर मुनि का शिष्य था और वि०सं० १६१६में चित्तौड़ में बस चुका था। उक्त पट्टावली में इस परिवार के पास करोडों का द्रव्य होना वर्णित है। भामाशाह को वि० सं १६३३ के आस पास महाराणा प्रताप ने अपना मन्त्री बनाया प्रतीत होता है[72A]। उस समय प्रताप को धन और सैनिक व्यवस्था कर सकने वाले योग्य पुरुष की आवश्यकता थी इस कार्य के लिए भामाशाह और ताराचन्द्र दोनों भाई उपयुक्त थे जो कुशल भी थे। इन्होंने सेना लेकर मालवा में आक्रमण किया और २०,००० सोने की मोहरें लूट करके ले आए। इस प्रकार विपुल सम्पत्ति मेवाड़ के महाराणा प्रताप को अर्पित कर दी जिसके फलस्वरूप उसने सैनिक तैयारी फिर से करके मेवाड़ की स्वाधीनता के लिए संग्राम जारी रक्खा। उक्त पट्टावली से प्रकट होता है कि भीण्डर में कई परिवारों को इसने बाईस पंथी बनाने में बड़ा महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

---

(७२) शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार प्रबन्ध की भूमिका। शत्रुञ्जय का वि० सं० १५८८ का शिलालेख।

(७२)A—मरुधरकेसरी अभिनन्दन ग्रंथ में मेरा लेख भामाशाह परिवार

इसका छोटा भाई ताराचन्द गोड़वाड़ का हाकिम था। यह सादड़ी में रहता था। उक्त पट्टावली में ताराचन्द द्वारा सादड़ी नगर को फिर से स्थापित करने का उल्लेख है। यह वड़ा कला प्रेमी था और इसने कई विद्वानों को संरक्षण दिया हुआ था। प्रसिद्ध गौरवादल चौपाई हेम-रतन ने इसके संरक्षण में ही लिखी था। इसकी वि० सं० १६४५ की प्रशस्ति में मेवाड़ के महाराणा प्रताप का वर्णन है और वाद में भामा-शाह परिवार का उल्लेख है। ताराचन्द ने सादड़ी में एक वावड़ी वनवाई थी। इसे वह पूरी नहीं कर सका।[73] जिसे उसके पुत्र ने पूरी की।

इनके अतिरिक्त चित्तौड़ से कई मूर्तियों के लेख देखने को मिले हैं। अधिकाँश सत बीस देवरी के मन्दिर में है। वे लेख १४ वीं शताब्दी से १६ शताब्दी के हैं। इसका विस्तृत वर्णन आगे किया जायगा।

चित्तौड़ –जैन तीर्थ स्थल :—

चित्तौड़ का जैन तीर्थ स्थल के रूप में वरावर उल्लेख मिलता है। सकलतीर्थ नमस्कार में "आघाटेमेदपाटेक्षितितलमुकुटेचित्रकूटे त्रिकुटे वर्णित है। फलोधी पार्श्वनाथ मंदिर के १२ शताब्दी के एक लेख में वहाँ चित्रकूटीय शिलापट्टिका वनाने का उल्लेख है। पुरातन प्रवन्ध संग्रह में भी चित्रकूटीय शिला पट्टिका का उल्लेख मिलता है। समय २ पर कई यात्री यहां आते रहते थे। इनके द्वारा लिखी चैत्य परिपाटियां देखने को मिली हैं। इनमें से अधिकांश श्री नाहटा जी ने सम्पादित की हैं। वि. सं. १४९७ के जैसलमेर के एक लेख के अनुसार संघ यात्रा करते समय चित्तौड़ में भी यात्रा की थी। शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार प्रवन्ध और गुरुगुण रत्नाकर ग्रंथों के अनुसार श्रेष्ठि धनराज ने यात्रा करते समय चित्तौड़ में भी यात्रा की थी।

अन्य सम्प्रदाय :—चित्तौड़ में वौद्ध धर्म के कुछ अवशेष मिले

(७३) मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रंथ में प्रकाशित मेरा लेख "भामाशाह परिवार।" मरुभारती में प्रकाशित मेरा लेख 'गोडवाड में मेवाड़ के राजाओं के शिलालेख" द्रष्टव्य है।

हैं। नगरी से प्राप्त एक लघुलेख "सब जीवों की दया के निमित" शब्द लिखा हुआ है । जीव दया जैन और बौद्ध दोनों ही सम्प्रदाय वाले मानते थे अतएव यह जैन या बौद्ध लेख रहा होगा। नगरी में बौद्ध मठ के अवशेष होने की पुष्टि भी कई विद्वान् करते हैं। चित्तौड़ में जयमल पत्ता की हवेली के पास बौद्ध स्तूप के खंडहर मिले हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कोई अवशेष बौद्ध धर्म का नहीं मिला है। सूर्योपासना की पुष्टि नगरी से प्राप्त रेवन्तक की प्रतिमा और कालिका माता के सूर्य मंदिर और गंगराल के सूर्य मन्दि से होती है। कालिका माता का मंदिर प्रारम्भ में सूर्य मंदिर था। इस मंदिर में सूर्य का अंकन कई स्थलों पर हो रहा है। धूर्त्ताखान में पीपल के पेड़ के नीचे पक्षी की पूजा का उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार चित्तौड़ दीर्घ काल से भारतीय संस्कृति का प्रमुख केन्द्र स्थल बना रहा है।

—:०:—

छठा अध्याय

चित्तौड़ का वर्णन करने के पूर्व नगरी का संक्षिप्त वर्णन करना भी आवश्यक है। यह चित्तौड़ से केवल ७ मील दूर स्थित है और पाषाणकाल से ही समृद्ध नगर रहा है। यहाँ सन् १८७२ में कार्लेयल ने आकर कई सिक्के एकत्रित किये और यहां का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत[1] किया। इसके पश्चात् श्यामलदास ने 'एण्टीक्विटिज एट नगरी' नामक एक लेख[2] प्रकाशित कराया। कार्लेयल ने ऊमदीवल और हाथीवाड़ा का वर्णन नहीं किया है जबकि कविराज श्यामलदास ने इनका भी सुन्दर वर्णन किया है। इसके पश्चात् डी. आर. भण्डारकर ने नवम्बर सन् १९१५ से फरवरी १९१६ तक यहां रह कर खुदाई कराई और इन स्थानों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत ही नहीं किया, बल्कि कई उल्लेखनीय शिलालेख भी ढूंढ निकाले[3]। इसके पश्चात् गौरीशंकर हीराचंद ने सन् १९२६ में यहाँ रहकर कुछ खंडित शिलालेख एकत्रित[4] किये। सन् १९३४–३५ में श्री एन आर० चक्रवर्ती ने यहां कुछ दिन रह कर, हाथी बाडा का प्रसिद्ध शिलालेख ढूंढ निकाला।[5] आजादी के पश्चात् प्रस्तर कालीन सामग्री के अध्ययन के लिये महत्वपूर्ण कार्य किया गया। डा० सत्यप्रकाश जी, श्री विजयकुमार प्रभृति विद्वानों ने यहां महत्वपूर्ण खोज की।

नगरी की पुरातत्वीय सामग्री को मुख्यतः ४ भागों में विभक्त कर सकते हैं। (१) शिलालेख, (२) सिक्के, (३) मूर्त्तियां और

---

१. आ०स०रि० भाग ६ पृ. १९६–२२६.

२. जनरल बंगाल ब्रांच रायल एशियाटिक सोसाइटी vol....५४ में प्रकाशित

३. दी आर्कियोलोजिकल रिमेन्स एण्ड एक्स केवेशन्स एट नगरी (मेमोरियम नं० ४)

४. अ० स० रि० सन् १९२६–२७/-एप० इं० भाग २२ पृ० २००

५. ए० इ० भाग २२ पृ० १९८–२०१

(४) । यहां से प्राप्त शिलालेखों का विस्तृत वर्णन आगे किया जायेगा। सिक्कों में श्री कार्लेयल को १४५ कुछ भंडारकर और ओझा जी को भी मिले थे। यहां से प्राप्त सिक्कों में 'शिबिजन पद' के सिक्के विशेष उल्लेखनीय हैं। इन पर "मज्झमिकाय शिवि जनपदस" विरुद लिखा मिलता है। कुछ सिक्के मालवजनपद यूनानी राजा दिमित और मेनेन्द्र के एवं कुछ सिक्के [6]क्षत्रप राजाओं के मिले हैं। सुन्दर खुदी हुई मूर्त्तियों में रेवन्तक की गुप्त कालीन मूर्त्ति विशेष उल्लेखनीय है। यहां से बड़ी संख्या में सुन्दर ईंटे मिली हैं। इनमें मुख्य रूप से ३ प्रकार की शैली अपनाई गई है (१) कुछ में मनुष्य की गर्दन (वस्ट) तक का भाग (२) कुछ में पशुओं और (३) कुछ में बेल बूटें बने हुये हैं। श्री डी० आर० भंडारकर इन्हें शिवियों द्वारा लाई गई शैली का एक स्वरूप मानते हैं। जबकि श्री एच० डी० सांकलिया ने इन्हें गुप्तकालीन कला का ही स्वरूप[7] माना है। यहां से प्राप्त स्तम्भ, कीतिमुख आमलक तोरण, चन्द्रशिला प्रणालिका आदि गुप्त कालीन कला के स्वरूप हैं। कंकाली माता के स्थान पर पड़े पत्थरों के खंडहर गुप्त कालीन कला के स्वरूप हैं।

यहां की उल्लेखनीय सामग्री हाथी वाड़ा और ऊभदीवल है हाथी-वाड़ा २९६ फीट १० इंच लम्बा और १५१ फीट चोड़ा है। अकबर के आक्रमण के समय उसके हाथी यहां रखे गये बतलाये जाते हैं इसलिए इसका नाम हाथी बाड़ा हो गया है। वहां विशालकाय आकार तीन-तीन पत्थरों को एक के पर एक रखकर बनाया गया है। यह प्रारम्भ में विष्णु मंदिर ही था। जहां मूर्त्ति एक चबुतरे पर ही रखी जाती थी। ऊभदीवल के पत्थर भी हाथी बाड़ा के पास से ही लिये होंगे। डी. आर. भण्डारकर का कथन है कि इसकी वहां नींव खुदी हुई नहीं है अतएवं निश्चित रूप से यह कहीं से उठाकर यहां लाया गया है। संभवत: अकबर के आक्रमण के समय यह स्थापित किया हो। प्रारंभ में

६. आ० स० रि० भाग ६ पृ० १९६–२२६/दी आर्कियोलोजिकल रिमेन्स एण्ड एक्सकेवेशन्स एट नगरी पृ० १२२।

७. उपरोक्त पृ० १२७/मार्ग भाग १२ अंक २ पृ० २।

यह हाथी बाड़ा के सामने गरूड़ स्तम्भ रहा होगा।[8] महादेव मंदिर के पास कुछ स्तूप के खंडहर भी मिले हैं।

चित्तौड़

चित्तौड़गढ़ स्टेशन से जाते समय मार्ग में गंभीरी नदी का पुल आता है। यह लगभग ४५० फीट लम्बा ३० फीट चौड़ा और ६ फीट ऊंचा है। इसके १० कोठे हैं जो सिर्फ प्रथम और अन्तिम कोठो को छोड़कर जो केवल १४ फीट के ही हैं शेष सब २५ फीट चोड़े हैं। इस पुल का निर्माण संभवतः खिज्रखां ने किया था क्योंकि उसमें अधिकाशतः किले के मंदिरों के कई पत्थर उपयोग में लिये गये हैं। इनमें कई उल्लेखनीय शिलालेख भी लगे हुये हैं। ये लेख भी मंदिरों आदि के खंडित भागों से उठा कर यहाँ लाकर के लगा दिये थे। पहले कोठे में २ शिलालेख हैं जिनमें से एक वि० सं० १३०३ का है और दूसरा महाराणी जयतल्ल देवी के समय का है। दूसरे कोठे में में वि० सं० १३२४ का तेजसिंह के समय का लेख है। छठे कोठे में जैन तीर्थङ्कर की प्रशंसा में लिखे दो श्लोक हैं और पद्म बन्ध और चक्र-बन्ध बने हुये हैं।[9]

पुल से कुछ दूर दक्षिण में शंकर घटा नामक स्थान है। यहाँ से वि,सं० ७७० का मान मोरी का एक शिलालेख मिला है।

यहां से कुछ आगे आने पर गरबापीर का स्थान आता है यहां से फारसी के कई लेख [10] मिले हैं। यह श्वेत संग मरमर का बना दर्शनीय स्थान है।

दुर्ग के प्रवेश द्वार

दुर्ग पर जाने के लिये अच्छी पक्की सड़क है। एक मार्ग शहर में होकर के जाता है जबकि एक शहर के बाहर से। किले का प्रथम

८. उपरोक्त पृ० १३२

९. श्री शोभालाल शास्त्री–चित्तौड़गढ़ पृ० ४५–४६

१०. एपिग्राफिया इण्डिका-परेशियन एण्ड एरेबिक सप्लेमेंट–रून १९५५–५६ में प्रकाशित

द्वार पाड़ल पोल कहलाता है। इसके बाहर ही बाघसिंह का स्मारक बना हुआ है। यह वीर पुरुष प्रतापगढ़ देवलिया का था और बहादुर-शाह के आक्रमण के समय चित्तौड़ की रक्षा करते हुये काम आया था।

इसके कुछ आगे जाने पर झरने की ओर जाने का मार्ग मिलता है। दूसरा द्वार भैरव पोल है। बहादुर शाह के आक्रमण के समय देसूरी का भेरूसिंह सोलंकी लड़ते हुये यहां काम आया था। जिसकी मूर्ति अब भी यहां बनी हुई हैं। भेरूपोल से कुछ आगे जाने पर जय-मल और कल्ला की छत्रियां आती हैं। जयमल मेड़तिया था जो वीरता पूर्वक लड़ते २ अकबर के आक्रमण के समय यहां काम आया था। जयमल की छत्री ६ खम्भों की है और कल्ला की ४ खंभों की। इसके बाद हनुमान पोल आती है। यहां से मार्ग दक्षिण की ओर जाता है जहां से चढ़ाई का दूसरा क्रम शुरू होता है। पहले क्रम की लम्बाई लगभग १०५० गज है। दूसरे की २३५ गज है।[11] गणेश पोल और जोड़वा पोल के बाद कुंभा के समय दुर्ग की प्राचीरों को नये ढंग से बनाया गया था। लक्ष्मणपोल से मार्ग फिर उत्तर की ओर चढ़ाई का शुरू होता है जो किले के मुख्य द्वार रामपोल तक जाता है। यह दुर्ग का मुख्य द्वार है। इसके सामने एक खुला बराण्डा है जहां से शहर का दृश्य देखा जा सकता है। इसके अन्तिम स्तम्भ के ऊपर के भाग में विसं० १५३८ का एक शिलालेख है जिसका वर्णन आगे किया जावेगा।

रामपोल अन्य पोलों की अपेक्षा बड़ी सुन्दर बनी हुई है। इसके बाहर और समीपस्थ चबूतरे पर कई सुरह लेख हैं इनमें महाराणा बनवीर के विसं० १५९३, और १५९५ के लेख, महाराणा उदयसिंह का लेख महाराणा करणसिंह का विसं० १६७८ का लेख, महाराणा हमीर-सिंह के विसं० १८३२, १८३३ और १८३५ के ४ लेख और महाराणा भीमसिंह का एक लेख है। ये लेख कुल मिलाकर १० हैं।

कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति में इन द्वारों का वर्णन बड़ा सुन्दर किया गया[12] है। इनमें वर्णित किया गया है कि दुर्ग की सम्पूर्ण प्राचीरों को

---

११ शास्त्री चित्तौड़गढ़ पृ० ४७

१२ महाराणा कुम्भा पृ० २७३। की प्र० श्लोक ३६ से ४२ तक

आवश्यकतानुसार कुम्भा ने परिवर्तित किया। द्वारों में रामपोल, भैरवपोल, हनुमानपोल, चामुण्डापोल, तारापोल, लक्ष्मीपोल आदि का उल्लेख किया है। हनुमानपोल के लिये लिखा है कि कौतुकी मनुष्य जिसको देखकर अत्यन्त श्वेत शिला समूहों से युक्त कैलाश का भान करते हैं या राजा की प्रसन्नता के लिये हिमालय का शिखर लाकर अवस्थित किया गया प्रतीत होता है, अतएव प्रतीत होता है कि यह श्वेत संग-मरमर की बनी हुई थी। भैरवपोल के लिये लिखा है कि यह अमरावती के मन्दिर के सदृश प्रतीत होती है। लक्ष्मीपोल के लिये लिखा है कि लक्ष्मी से सम्पर्क स्थापित करने वाले राजा लोग कुम्भा की शरण लेते हैं। अतएव उसने इसे बनाया। तारापोल झरोखों वाली थी। रथमार्ग के लिये अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है। इसमें उल्लेखित किया है कि सुमेरु पर्वत पर जाते समय सूर्य का रथ भी अवरुद्ध होगया क्योंकि धरती पर नवीन सूर्य के सदृश कुम्भा ने सुमेरु के सदृश चितौड़ पर जनता की सुविधा के लिये एक[13] नवीन मार्ग बनाया। इस प्रकार चित्रकूट को विचित्रकूट बना दिया।

रामपोल के समीप के स्थान

रामपोल से जाते समय पत्ता का स्मारक दृष्टिगत होता है। यह छोटी छत्री, वीर पत्ता की है जो आमेट वालों का पूर्वज था और अकबर के आक्रमण के समय १५६८ ई० में यहां काम आया था। इसके पास रामचन्द्रजी का एक आधुनिक मन्दिर है। श्री शोभालाल शास्त्री की मान्यता है कि यह अकबरनामे में वर्णित गोविन्दश्याम के मन्दिर के अवशेषों पर बना हुआ है।[14]

तुलजामाता का मन्दिर

पत्ता की छत्री से दक्षिण ओर एक मार्ग जाता है। इससे जाते समय महेसाणी और पुरोहितों की हवेलियों के खण्डहरों पर हमारा

---

13. उच्चैर्मेरुगिरेर्नवो दिनकरः श्रीचित्रकूटाचले।
भव्यां सद्रथपद्धति जन सुखायाचल मूलं व्यधात॥ की प्र०

14 चित्तौड़गढ़ पृ. ५१। श्री बलवन्तसिंह मेहता चित्तौड़गढ़ पृ. ४५

ध्यान जाता है। ये मध्यकाल में उल्लेखनीय अधिकारी थे। इससे जाते हुये हम तुलजा भवानी के मन्दिर के पास आते हैं। यह मन्दिर वणवीर ने १५३९–१३४० ई० के मध्य बनवाया था। यह छोटा-सा मन्दिर है जिसका प्रवेश द्वार उत्तर की ओर है। इसमें मण्डप और गर्भ गृह बने हुये हैं जो अन्दर से सुन्दर हैं।

नोलखा भण्डार और नवकोठा

तुलजा से दक्षिण की तरफ जाते समय वणवीर की एक ऊंची दिवार दिखाई पड़ती है। उसे उसने अपने शासनकाल [१५३५ से १५४० तक] में बनवाया था। इसमें अल्लाउद्दीन के आक्रमण के समय के तोड़े हुये कई मन्दिरों के पत्थर काम में लाये गये हैं। इस दीवार को बनवाने का उसका उद्देश्य किसी संभावित षड़यन्त्र से उसकी रक्षा करना था। इस मन्दिर के अन्त में नोलखा भण्डार है। इसका सामान्यतः ट्रेझरी से अर्थ लेते हैं। "नोलखा" जाति के प्रधान कुम्भा के शासनकाल तक[15] कई उल्लेखनीय पदों पर थे। यह उनसे ही सम्बन्धित होना चाहिये। भण्डार या राजकोष का स्थान तो महल के किसी भाग में होना चाहिये। नव कोठ या तोपखाना का भाग आधुनिक बना हुआ है। इसमें कुछ पुरानी तोपें रखी हुई हैं। यहां इस समय पुरातत्व विभाग का कार्यालय है।

बौद्धस्तूपों के खण्ड

शृंगार चंवरी के सामने वाले खुले भाग में कुछ बौद्ध स्तूपों के खण्ड मिले हैं। ये पत्ता–जयमल के तालाब के पूर्वी भाग में मिले थे। इन पर भगवान बुद्ध की प्रतिमायें उत्कीर्ण हैं। बड़े से बड़ा ३ फीट ३ इन्च ऊंचा और १ फीट ८ इन्च नीचे के भाग में चौड़ा था। इन पर भगवान बुद्ध की कई भावों की प्रतिमायें हैं। चित्तौड़ में इनको छोड़कर अन्य कोई बौद्ध धर्म सम्बन्धी सामग्री नहीं मिली है।

पातालेश्वर मन्दिर

तोपखा के पास पश्चिमाभिमुख वाला पातालेश्वर का शिव

---

१५. महाराणा कुम्भा पृ० ३३३ से ३३४

मन्दिर है। इसमें ३ मुख्य मन्दिर हैं। बीच के मन्दिर में सहस्त्र लिंग शिव की प्रतिमा है। समीप की ताकें खाली हैं जहां कभी मूर्तियां रही होंगी। मुख्य मन्दिर में उतरकर के जाना पड़ता है जहां ६ सीढ़ियां हैं और लगभग ५ फीट गहराई है। सभा मण्डप में १२ स्तम्भ हैं। बाहरी भाग में १४ स्तम्भ हैं। मंडोवर में कुछ प्रतिमायें बनी हुई हैं। उत्तरी भाग में वराह की प्रतिमा है। दक्षिणी भाग में एक स्त्री प्रतिमा है। इसकी वेणी विशेष शैली की बनी है। हाथों में चूड़ियां और कड़ा है।

इस मन्दिर की छत के पूर्वी भाग में एक लेख में वि० संवत् १६२२ आषाढ़ सुदि ५ खुदा है जो मन्दिर के निर्माण की तिथी रही होगी।

इसके सामने आल्हा कावरा की हवेली के खण्डहर दिखाई पड़ते हैं। इस विशाल भवन के २ द्वार थे। एक दक्षिण में और दूसरा उत्तर में। इसमें हिन्दू-मुस्लिम वास्तु कला का सुन्दर मिश्रण है। यहां पुरातत्व विभाग वालों ने अभी कुछ वर्ष पूर्व सफाई करादी है।[16] इसमें गिरे हुये हिस्से को आवश्यक दुरुस्ती करके ठीक बनाया है। मुख्य द्वार नया बनाया गया है।

शृंगार चँवरी के समीप स्थित जैन मन्दिर

शृंङ्गार चँवरी के समीप स्थित पूर्वाभिमुख जैन मन्दिर है जो संभवतः पार्श्वनाथ का मन्दिर रहा होगा। मन्दिर में कोई प्रतिमा इस समय विद्यमान नहीं है किन्तु कुछ वर्ष पूर्व यहां वि० सं० १२३२ की प्रतिमा विद्यमान थी। गर्भ गृह के बाहर ऊपर की ताक में पार्श्वनाथ की प्रतिमा है। पार्श्व में देवी प्रतिमा बनी है। सभा मंडप सामान्य है। बाहर मंडोवर में कई प्रतिमायें बनी हुई हैं। उत्तरी भाग में एक देवी प्रतिमा बनी है जिसके ४ हाथ हैं। ऊपर के हाथों में त्रिशूल और सर्प है नीचे के हाथों में एक वरद और एक खंडित है। इस प्रतिमा के कानों में कुण्डल, गले में कण्ठी हार करधनी, पांवों में कड़े बने हुये हैं।

---

16. इंडियन आर्कियोलोजी–ए रिव्यू ५८–५९ पृ० ११४ एवं सन् ५९–६० । ६२–६३ की रिपोर्ट का पृ० ९६।

इसके पास देव प्रतिमा है जिसके ४ हाथ बने हुये हैं। ऊपर के हाथों में त्रिशूल और पाश हैं नीचे के हाथ खण्डित हैं। मुख्य पार्श्व में कायोत्सर्ग जिन प्रतिमा है। इसके आगे २ देव प्रतिमायें बनी हुई हैं। दोनों के चार-चार हाथ हैं। जिनके श्रुचि, कमण्डल, माला आदि आयुध हैं जो ब्रह्मा की हो सकती है। पीछे के भाग में ४ हाथ की एक देवी प्रतिमा है। इसके पास ही कायोत्सर्ग दिगम्बर जैन प्रतिमा है। इसके आगे देव प्रतिमा बनी है जिसके ऊपर के दोनों हाथों में कमल और नीचे के एक हाथ में माला है जो सूर्य की सी प्रतीत होती है। बीच के पार्श्व में आसनस्थ जिन प्रतिमा है [सम्भवत: दिगम्बर] इसके आगे एक स्त्री सेविका की प्रतिमा है और इसके समीप ही ४ हाथ की एक देव प्रतिमा है। दक्षिणी भाग की प्रतिमाओं में एक स्त्री की नग्न मूर्ति बनी है जो एक हाथ से वेणी को पकड़े हुये प्रदर्शित की गई है। बीच में कायोत्सर्ग दिगम्बर जिन प्रतिमा है। इसके आगे ब्रह्मा और ब्रह्माणी को प्रतिमायें बनी हैं जिनके चार-चार हाथ हैं, जिनमें श्रुचि, कमण्डलु, माला आदि आयुध हैं।

इस मन्दिर में दिगम्बर जिन प्रतिमायें होने से प्रतीत होता है कि यह दिगम्बर जैन मन्दिर रहा हो।

श्रृंगार चँवरी

यह शान्तिनाथ का कलात्मक जैन मन्दिर है। मन्दिर में दो मुख्य द्वार हैं। एक उत्तर की ओर और दूसरा पश्चिम की ओर। मध्य में एक वेदी है। यह चौकोर है। इसमें अष्टापद व्यवस्था से मूर्तियां रखी हुई थी, चतुर्मुख व्यवस्था नहीं क्योंकि यहां से प्राप्त लघु लेखों में अष्टापद शब्द[17] बार-बार आया है। अष्टापद में २४ मूर्तियां होती हैं। इनमें सबसे नीचे के भाग में १०। इसके ऊपर ८ इसके ऊपर

17. सं० १५१३ वर्ष लोढ़ा गोत्रे सा० हरिपाल पुत्र सा० राजाकेन पुत्र साह सांडा सा० ऊदा सहितेन सांडा वधू श्रृंगारदे पुण्यार्थं श्री अष्टापदआलकं कारित: प्र० श्री खरतर गच्छे श्री जिन सुन्दर सूरिभि: (मूल लेख से)

४ और तत्पश्चात् २ मूर्तियां होती है। चौकोर होने से ऐसी भी मान्यता है कि उत्तर में १०, पश्चिम में ८, दक्षिण में ४ और पूर्व में २ मूर्तियां रही होगी।

श्री बनर्जी की मान्यता है कि प्रारम्भ में इस मन्दिर के ४ द्वार थे। लेकिन २ द्वार बाद में बन्द करके केवल मात्र २ द्वार ही रखे गये हैं। इन द्वारों के स्थान पर अब ६×३ फीट का छोटा मण्डप हैं। मध्य की वेदी के ऊपर ४ स्तम्भ हैं जो नीचे से अष्ठकोण, बीच में १२ कोण और ऊपर से गोलाई लिये हुए हैं। इनके अतिरिक्त ८ स्तम्भ और हैं। मण्डप की छत अष्टकोणात्मक हैं जो कीर्तिमुखों पर आधारित है। उत्तरी और पश्चिमी द्वार के बाहर सुन्दर कलात्मक ढंग से खुदाई हो रही है। उत्तरंग और द्वार सुन्दर बना है जो त्रिशाखात्मक है और गंगा व यमुना की मूर्तियां भी बनी हैं।

मन्दिर के चारों ओर तक्षण कला को सुन्दर ढंग से प्रदर्शित किया है। श्री एडरिस बनर्जी की मान्यता है कि खुदाई इतनी गहरी हो रही है कि अलंकरण के उपमान स्पष्टतः दिखाई पड़ते हैं। यक्ष और सिद्ध विद्या देवियों के प्रदर्शन से धार्मिक भावनायें जागृत होती है।[18] पूर्वी भाग के नीचे की ओर गज पक्ति हैं इसके ऊपर नृत्य करते हुए एक समुदाय को प्रदर्शित किया है। ये कई प्रकार के वाद्य यन्त्रों से सुसज्जित है। बीच २ में पार्श्वनाथ की प्रतिमा बनी है। अतएव यह माना जा सकता है कि यह झुण्ड पार्श्वनाथ की पूजार्थ आयोजन कर रहा है। इसके ऊपर के भाग में छोटी २ देवी प्रतिमायें हैं। इनके ऊपर बड़े आकार की प्रतिमायें हैं। ऊपर की तरफ ब्रह्मा, विष्णु की प्रतिमायें हैं। ८ हाथ की अनन्त की एक प्रतिमा भी है एवं पूर्वी द्वार के पश्चिम भाग में सिंह अवतार की भी एक प्रतिमा है। ठीक पीछे शासन देवी की प्रतिमा है। जिसके ४ हाथ हैं। जिनमें चक्र, फल, कमण्डल और वरद हस्त मुद्रा (?) है। सम्भवतः वह महामानवी देवी की जो भगवान शान्तिनाथ की शासन देवी है प्रतिमा है। इसमें कई स्त्री मूर्तियां बनी हैं जिनके गले से कण्ठी, हार एवं अन्य आभूषण

---

18 बाबू छोटेलाल स्मृति ग्रंथ पृ० ७१-९२

हाथों में बाजू, कमर में करधनी, पावों में कई प्रकार के आभूषण बने हैं। राणकपुर की तरह यहां स्त्री मूर्तियां कम हैं।

वि० सं० १३३४ को दो लेख वणवीर की दीवार में हैं जिनमें यह वर्णित है कि इसे कुमारल नामक एक श्राविका ने रतनसिंह द्वारा निर्मित शान्तिनाथ मन्दिर के पास इसे बनाया।[18] शृंगार चंवरी के एक द्वार पट्टी पर वि० सं० १३५८ का शिलालेख भी है। इसका जिर्णोद्धार वि० सं० १५०५ में भण्डारी वेला ने किया था। इसमें लोढा गोत्र के मोहन आदि द्वारा अलग निर्माण का उल्लेख है। वि० सं० १५१३ के अन्य दो लेखों में भी इसी प्रकार के निर्माण का उल्लेख है। इसके बाद भी १५वीं शताब्दी के कई अन्य लेखों में इस मन्दिर का उल्लेख मिलता है। यह खरतरगच्छ का मन्दिर था।

श्री वर्गेश और एडरिस बनर्जी की मान्यता है कि इसका ऊपर का शिखर का भाग बाद का जोड़ा[19] हुआ है क्योंकि यह मूल मन्दिर के भाग का अंश रहा प्रतीत नहीं होता है। सम्भवतः अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के पूर्व इस मन्दिर के आस-पास और भी देवकुलिकायें रही होंगी। जिन्हें आक्रमण के समय उसने गिरा दिया था।

पुरातत्व विभाग ने ५४-५५ और ५५-५६ में इसके शिखर का जीर्णोद्धार कराया था।[19A]।

राणा कुम्भा के महल

शृंगार चंवरी से दक्षिण की तरफ जाते हुये महाराणा कुम्भा के महल दिखाई देते हैं। ये मुख्य रूप से प्राचीन थे जिनको कुम्भा ने दुबारा प्राचीन खण्डहरों पर ही निर्माण कराया प्रतीत होता हैं। यह राजस्थान में मुस्लिम स्थापत्य कला के प्रभाव के पूर्व का भवन होने से उल्लेखनीय है। श्री शोभालाल शास्त्री की मान्यता है कि यहा दीवारों

18. आ० स० रि० इ० भाग २३ पृ……।
19. बाबू छोटेलाल स्मृति ग्रन्थ पृ० ७१
19A इण्डियन आर्कियोलोजी-एंरिव्यु वर्ष ५५-५६ पृष्ठ ४६ एवं ५४-५५

को कमल या युद्ध दृश्यों से अलंकृत किया गया है। इसी प्रकार जंगला और कटघरों का निर्माण एक विशेष शैली का स्वरूप प्रतीत होता है जो भारतीय भवनों में कम पाई जाती है। इन महलों का मुख्य प्रवेश द्वार बड़ी पोल है। यहां से ४०० फीट पश्चिम की ओर जाने पर त्रिपोलिया द्वार आता है। जहां २ बुर्जे बनी हुई हैं। यहां से अन्दर को जाते समय हाथी बांधने का स्थान आता है। महलों के भीतरी भाग में दरीखाना उल्लेखनीय हैं। इसके पास ही सूरज गोखड़ा और देवीजी का मन्दिर है। ऐसी मान्यता है कि राणा सांगा इनका विशेष रूप से भक्त था। यहां दीवार के सहारे घुड़साल है और यही गणेश मन्दिर भी है। इस भाग से नीचे की ओर कुछ सीढ़ियां जाती हैं जहां कहा जाता है कि पद्मिनी ने जौहर किया था। यहां से एक गुप्त मार्ग भी गोमुख की ओर जाता है इन महलों में जनाना महल कुंवर पदा के महल है जो विशेष उल्लेखनीय हैं।[20]

यहां पुरातत्व विभाग द्वारा हाल ही में सफाई कराई गई थी।[21] यह कार्य ५४-५५ ई० से शुरू कराया गया। सन् ५४-५५ में सूरजगोखड़ा और दीवान ए आम का मार्ग ठीक किया। ५५-५६ में दुरुस्ती करते समय कई भूमितल के भवन प्रकाश में आये। ५६-५७ में त्रिपोलिया एवं बड़ी पोल द्वार का जीर्णोद्धार कराया। ५७-५८ में कुंवर पदा महल आदि में दुरस्ती कराई गई। ५८-५६ में जनाना महल में कटघरों का जीर्णोद्धार कराया। यह कार्य ५६-६० वर्ष में पूरा हुआ।

सतबीस देवरी जैन मन्दिर

सतबीस देवरी जैन मन्दिर का मुख्य द्वार पश्चिम की तरफ है। यह एक ऊंची जगती पर बना मंदिरों का समूह हैं। ये सुन्दर मंदिर प्राचीन हैं हाल ही में अहमदाबाद के जैन श्रेष्ठियों ने जीर्णोद्धार कराके

---

20 शास्त्री–चित्तौड़गढ़ पृ० ५७ से ५६

21. इण्डियन आर्कियोलोजी–ए रिव्यू वर्ष ५४-५५ से ५६-६० तक की प्रतियां

बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है। मंदिर में प्रवेश करके सामने के मंडपों से होकर मुख्य मंदिर की ओर जाया जाता है। मुख्य मंदिर में ३ प्रतिमायें हैं। बीच में आदिनाथ प्रतिमा है जो काले पत्थर की है। उत्तरी ओर शान्तिनाथ प्रतिमा और दक्षिण भाग में अजितनाथ प्रतिमा है। मुख्य मंदिर के बाहर नागनियों द्वारा भगवान की सेवा का दृश्य अंकित है स्तम्भों पर देवी प्रतिमायें बनी हैं। दोनों ताकों में गोमुखयक्ष और चक्रेश्वरी देवी की प्रतिमायें हैं।

गर्भगृह के बाहर की ओर मंडप में स्थिति उत्तराभिमुख शीतलनाथ की प्रतिमा पर विस० १४६४ का लेख है। दक्षिणाभिमुख सुमतिनाथ की प्रतिमा है। जिस पर विसं० १३०३ का लेख खुदा है। समपी ही अष्टमंगल बने हैं जिन पर विसं० १५८८ का खरतरगच्छ का लेख हैं जिनपर जिनचंद्र सूरि आदिका उल्लेख हैं।

ऊपर की ओर वितान में नीचे हंस पंक्ति बनी है। इसपर कई नृतंकियां बनी हैं। ८ बैठी हुई है और ८ ही खड़ी हुई हैं।

नीचे के मंडप के वितान में भी कई सुन्दर दृश्य खुदे हैं। १६ नृतंकियों को अंकित किया हुआ है। भगवान् आदिनाथ की जीवन लीला के कई दृश्य उत्कीर्ण हैं एवं कई खड़ी नृतंकियां भी उत्कीर्ण हैं।

मंडोवर पर कई प्रतिमायें बनी हैं। नीचे के मुख्य भाग में बनी प्रतिमाओं में चक्रेश्वरी, लक्ष्मी, क्षेमकरी, महासरस्वती, ब्रह्माणी, आदि की प्रतिमायें हैं जिनके नीचे नाम भी अंकित हैं। ऊपर के भाग में अधिकांशतः स्त्री मूर्तियां हैं, जिनमें चामरधारिणियां मृदांगिका विविध भाव वाली नृत्यंकियां अंकित हैं, इसके हाथों में चूड़े, कडे, कानों में कुण्डल, माथे पर वेणी जो कहीं २ गूंथी हुई) बनी हुई है। एक प्रतिमा के नीचे विसं० १५२९ का शिलालेख भी खुदा है इसके अतिरिक्त यहां शांतिनाथ का मंदिर दक्षिणाभिमुख है जिसकी खंडित प्रतिमा

21A–22 सतबीसदेवरी एवं अन्य मन्दिरों का वर्णन लिखने के लिये मुझे श्री फतहचन्द जी महात्मा ने सहायता दी है।

पर विसं० १५१२ का भंडारी गोत्र के श्रेष्ठि का लेख है। पद्मप्रभु का मंदिर सभवतः पहले या तो चोमुखा था या अष्ठापद व्यवस्था वाला था। इसमें नाथा के पुत्र सूत्रधार परमात का नाम अंकित है।

इससे कुछ दूर स्थिति पूर्वाभिमुख दो मन्दिर हैं। जो इनमें से एक कर्माशाह द्वारा वनाया गया माना जाता है। विभिन्न प्रशस्तियों में कर्माशाह के भाई द्वारा चित्तौड़ में मन्दिर वनाने का उल्लेख भी किया गया है। प्रतिमा आधुनिक है जिस पर विसं० १८४७ का लेख है। पास के एक अन्य मन्दिर में भण्डारी जाति के श्रेष्ठियों का यहां के विसं० १५६५ के एक लेख में है। इसमें आचार्य हपरिभद्र सूरि की नवनिर्मित प्रतिमा है।

कुंभ स्वामी का मन्दिर

कुंभ स्वामी का मन्दिर कीर्ति स्तम्भ के समीप हैं एवं ऐसा माना जाता है कि कीर्ति स्तम्भ इसी मन्दिर का भाग है। कीर्ति स्तंभ की प्रशिस्त के अनुसार महाराणा कुम्भा ने हिमालय के समान प्रसिद्ध और अनेक सुवर्णकिलशों से युक्त जो सुमेरू पर्वत की शोभा से भी वढ़कर सम्पूर्ण पृथ्वी पर तिलक एवं मुकुट स्वरूप कुम्भ स्वामी का मन्दिर वनाया। कवि कल्पना करता है कि क्या यह कैलाश पर्वत का का प्रतिनिधि शंकर का अट्टहास चांदनी का समूह है अथवा हिमालय का प्रतिनिधि है।

इसमें मुख्य मन्दिर कोली मण्डप प्रागीव मण्डप और शृङ्गार चौकी मण्डप है। यह एक ऊंची जगती पर वनाया गया है। इसके पास ही छोटे मन्दिर और वने हुए हैं।

निज मन्दिर में वराह की प्रतिमा पूजी जाने के लिये प्रतिष्ठापित की गई थी। कुम्भलगढ़ प्रशस्ति के श्लोक संख्या ५६ में इसका स्पष्टतया उल्लेख है कि "विष्णुर्यत्र विराजते स भगवानाद्यवराहाकृति।" गर्भ गृह के अन्तरंग भाग पर सुन्दर नक्काशी हो रही है। ऊपर के भाग में छोटी सी गणेश मूर्ति है। नीचे की तरफ चामर वाहिनियों की मूर्तियां है। सभा मण्डप में २० विशाल स्तम्भ हैं बीच के ४ स्तम्भों के

नीचे के भागों में एक चौकी बनी है जो वेदी के रूप में काम आती रही होगी। मन्दिर में कई शिला पट्टिकाएं हैं। दक्षिण की तरफ की एक शिला पट्टिका में भगवान के समुद्र मंथन का दृश्य है। इसके पास तुलसी माधव की प्रतिमा है। इसके पास राम लक्ष्मण की खंण्डित प्रतिमा है। सभा मण्डप के उत्तरी भाग में एक शिला पट्टिका है जिस पर शेष शायी विष्णु की प्रतिमा है इसके पास श्रीधर और कृष्ण रुक्मणी की प्रतिमाएं हैं। इन सबके नीचे वि० स० १५०५ माघ सुदी १५ बुधवार को राणा कुम्भा द्वारा प्रतिष्ठापित कराने का उल्लेख है।[23] निज मन्दिर के एक ओर त्रिविक्रम और दूसरी ओर नृसिंह अवतार की प्रतिमा बनी है। त्रिविक्रम और नृसिंह की प्रतिमा में आठ २ हाथ हैं। मन्दिर के उत्तरी परिक्रमा में त्रिविक्रम की एक और प्रतिमा है। इसमें भी ८ हाथ हैं जिनमें शंख, चक्र, गदा, तलवार और शेष हाथों में आयुध अस्पष्ट हैं। वह भगवान वामन के विराट् स्वरूप का दृश्य है।[24]

मन्दिर के बाहरी भाग कुंभ मंडोवर आदि में कई मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। दक्षिणी भाग में मण्डप के ऊपर मुख्य पार्श्व में गरूड धारी विष्णु की प्रतिमा है। एक १४ हाथ की चतुर्मुख गरूडधारी विष्णु प्रतिमा है जो अनन्त की है। आबू के अचलेश्वर में भी १४ हाथ की इसी प्रकार की प्रतिमा मिली है।[25] ठीक पीछे के पार्श्व में ८ हाथ वाली इसी प्रकार की वैकुण्ठ की प्रतिमा है। उत्तरी पार्श्व में १४ हाथ और १६ हाथ वाली अनन्त और त्रैलोक्य मोहन की प्रतिमाए हैं।

श्री रतनचन्द्र जी अग्रवाल की मान्यता है कि इसका गर्भ गृह' प्रदक्षिणा पथ, जंघा भाग तो पूर्व मध्य युगीन अर्थात् ९वीं शताब्दी का बना हुआ है। ये भाग पूर्ण रूप से सुरक्षित है। शेष भाग कुंभा ने बनाया था। गर्भगृह के बाहर स्वतन्त्र प्रदक्षिणा पथ सूर्य मन्दिर चित्तौड़

---

23. वरदा वर्ष ६ अंक ४ पृ १४। महाराणा कुंभ पृ.......
24. गोपीनाथ राव—इलेमेन्ट्स आफ हिन्दु इकोनोग्राफी भाग १ खण्ड १ पृ. १९४
25. राजस्थान पत्रिका मार्च, १९६३ पृ० १०६

की शैली का ही है। यहां बाह्यतम जंघा भाग की प्रतिमाओं का क्रम प्रवेश के बांई ओर से स्वयं श्री रतनचन्द्रजी अग्रवाल के शब्दों में इस प्रकार है—[26]

(१) ब्रह्मा-स्थानक,

(२) अग्नि स्थानक,

(३) नीचे फर्श के पास की बड़ी प्रतिमा जिनमें धनुष बाण लिये दो व्यक्ति खड़े हैं। सम्भवतः राम लक्ष्मण—

(४) जंघा पंक्ति में स्थानक हरिहर जो कला की दृष्टि से आकर्षक और ओसियां की कतिपय हरिहर विष्णु एवं शंकर के एक रूप प्रतिमाओं की साम्यता रखता है। ओसियां ग्राम के बाहर दो पूर्व मध्य युगीन हरिहर-मन्दिर विद्यमान हैं।

(५) जंघा पंक्ति में स्थानक लकुलीश। यह स्वतन्त्र प्रतिमा विशेष महत्व की है। यहां जटाधारी देव के केवल २ हाथ हैं। वाम-हस्त में सर्प वेष्ठित दण्ड और दाहिने हाथ में बिजोरा। यहां नियमानुसार इन्हें उर्ध्वरेता दंड सहित प्रदर्शित किया गया है। इसीशैली की एक लघु प्रतिमा गुजरात के पूर्व मध्य युगीन एक शिला फलक पर खुदी है। परन्तु वह स्वतन्त्र प्रतिमा के रूप में विद्यमान नहीं है। राजस्थान में तो स्वतन्त्र द्विबाहु लकुलीश की स्वतन्त्र प्रतिमाएं अभी तक अन्यत्र नहीं मिलती है यद्यपि कतिपय शिव प्रतिमाओं में उन्हें उर्ध्वरेतस् अवश्य दिखाया गया है। उन शिव प्रतिमाओं में लकुलीश के आयुध लकुल (दण्ड) का अभाव है जबकि कुम्भ श्याम मन्दिर की इस प्रतिमा में उर्ध्वरेतस् भाव के साथ लकुल एवं बीज पूरक स्पष्ट हैं। प्रस्तुत दिशा में मथुरा संग्रहालय में गुप्त कालीन स्तम्भ पर बनी स्थानक प्रतिमाओं का अध्ययन अपेक्षित है। जिसे विद्वानों ने द्विबाहु लकुलीश माना है। अर्थात् स्थानक व त्रिनेत्र धारी देवता ने दांया हाथ दण्ड के ऊपर रखा है

---

26. वरदा वर्ष ६ अंक ४ पृष्ठ २२ से १३ से सामार उद्धृत

और वांया हाथ कटि प्रदेश पर। यहां त्रिनेत्र स्पष्ट है। परन्तु उर्ध्वरेतस् का सर्वथा अभाव है। सम्भव है कि त्रिनेत्र और लकुल द्वारा ही लकुलीश भाव की अभिव्यक्ति की गई थी। इस संदर्भ में चित्तौड़ दुर्ग का पुरातत्व विभाग द्वारा सुरक्षित एक प्रतिमा अवश्य उल्लेखनीय है। इस चतुर्वाहु प्रतिमा से लकुलीश का अंकन हो रहा है वह भी स्थानक वस्था में। देवता के सिर पर जटा; उर्ध्वलिंग, जंघा के मध्य सिंह चर्म व आयुध स्पष्ट हैं। वांये हाथों में परशु व दण्ड, दाहिने हाथ में त्रिशूल और चौथा खंडित है। यहां दण्ड और परशु की विद्यमानता विशेष महत्व की है। इसके द्वारा दशपुर (मन्दसौर) की प्रख्यात गुप्तोत्तर युगीन शिव प्रतिमा का ध्यान आ जाता है जिसमें उर्ध्व मेढ़ शिव खड़े हैं। वामहस्त में वृहद् त्रिशूल लिये हैं जिस पर परशु जड़ा है। सम्भवतः समीपवर्ती कला के प्रभावान्तर्गत ही चित्तौड़ के तक्षणकार ने उपयुक्त चतुर्वाहु एवं स्थानक लकुलीश प्रतिमा का तक्षण किया था जिसके परिणामस्वरूप ही उसने परशु दण्ड एवं त्रिशूल पृथक रूपेण उत्कीर्ण किये हैं। यह प्रतिमा भारतीय मूर्तिकला की अनुपम निधि है। दशपुर की उपयुक्ति प्रतिमा में दण्ड का सर्वथा अभाव है।

६. दक्षिण ओर की फर्श के पास की वड़ी ताक, जिसमें नागानागी खड़े हैं और सिर पर सर्प फण वना है।

७. षण्मुख कार्तिकेय स्थानक

८. दिग्पाल ?

९. नीचे फर्श की ताक पश्चिम ओर, की शिव पार्वती विवाह

१०. वरुण स्थानक

११. यम स्थानक

१२. फ़र्श के पास की ताक में प्याला लिये मुगल (उत्तर की ओर ताक में)

१३. सिंहवाहिनी देवी निम्न दिशोन्मुख सिंहपर बैठी हैं। देवी के वामवर्त्ती ऊपर के हाथ में कमल, दक्षिणवर्त्ती ऊपर के हाथ में त्रिशूल, वामवर्त्ती नीचे के हाथ में कमण्डलु धारण कर रखा है व दक्षिणार्ध हस्त उठा है। यह दुर्गा का स्वरूप है।

१४. स्थानक अर्धनारीश्वर

१५. नृत्य स्थिति में चामुण्डा

१६. उत्तर की ताक में (फर्श के पास) स्थानक लक्ष्मीनारायण प्रतिमा जड़ी है।

१७. दिग्पाल–दक्षिण हस्त में गदा लिये हैं एव बांया हस्त जंघा पर रखा है।

१८. महिष मर्दिनी–यहां राक्षस का सिर कटा पड़ा है जिसमें से राक्षस निकल कर देवी से संघर्ष कर रहा है–

इस प्रकार प्रतीत होता है कि जंघा तक का भाग काफी प्राचीन है। कुम्भा ने इसके ऊपर के भाग को पुनः बनाया था।

कुम्भश्याम का यह मन्दिर अपने ढंग का विशिष्ट मंदिर है। १२वीं शताब्दी का एक शिलालेख कुमारपाल के शासनकाल का चित्तौड़ से मिला[26A] है इसमें वहां वराह के मन्दिर बनाने का उल्लेख है। यह ज्ञात नहीं हो सका कि यह मन्दिर कहां है। शिल्प कला की दृष्टि से कुम्भश्याम का मन्दिर १२वीं शताब्दी से बहुत पहले[27] का है अतएव यह मन्दिर इससे भिन्न होना चाहिये।

मन्दिर के मंडोवर पर खुदाई इतनी गहरी हो रही है कि अलंकरण को स्पष्टरूप से देखा जा सकता है। चित्तौड़ में—कुम्भा के समय में बने मन्दिरों में सबसे अधिक उल्लेखनीय यह मन्दिर है।

26.A राजपुताना म्युजियम रिपोर्ट अजमेर सन् १९३१ पृ० २

27. वरदा वर्ष ९ अंक ४ में श्री रतनचन्द्र अग्रवाल का लेख।

ऐसा प्रतीत होता है कि अल्लाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय इस मन्दिर का ऊपर का भाग खंडित कर दिया गया था जिसे वापस कुंभा ने बनाया था।

कीर्ति स्तम्भ

इसका प्रतिष्ठा महाराणा कुम्भा ने वि०सं० १५०५ माघ सुदि[27A] १० को थी। किन्तु निर्माणकार्य आगे कुछ वर्षों तक और चलता रहा था। ऐसी मान्यता है कि इसका निर्माण महाराणा कुम्भा ने मालवे के सुल्तान को विजय कर उसकी स्मृति में कराया था। किन्तु यह धारणा गलत प्रतीत होती[28] है। कीर्ति स्तम्भ के नीचे एक शिला मिली है जिस पर कीर्ति स्तम्भों के निर्माण का उल्लेख है। इसमें शैव वैष्णव आदि स्तम्भों के मान का वर्णन है। इससे प्रतीत होता है कि यह वैष्णव स्तम्भ था। श्री हरमनगूज की यह मान्यता कि यह समिद्धे-श्वर[29] मन्दिर का स्तम्भ है जो पूर्णरूप से गलत है क्योंकि इसका निर्माता महाराणा कुम्भा है मोकल नहीं। यह निसंदेह वैष्णव स्तम्भ है शैव[30] नहीं। इसका निर्माण वि०सं० १४९६ के आसपास शुरू हुआ होगा। वि० स० १४९९ तक इसकी २ मंजिलें पूरी हो चुकी थी क्योंकि सूत्रधार जइता और उसके २ पुत्रों का इसमें भगवान समिद्धेश्वर को प्रणाम करने का उल्लेख एक लघु लेख में है।

यह १२ फीट ऊंची और ४२फीट चौड़ी एक चोकोर चोकी पर स्थित

27.A पुण्ये पञ्चदेशे व्यपगते पंचाधिके वत्सरे
माघे मासि वलक्षपक्षदशमी देवज्यपुष्यागमे
कीर्तिस्तम्भमकारयन्नरपतिः श्रीचित्रकूटाचले
नानानिर्मितनिर्जरावतरणमेरोर्हसतं श्रिय ।।१८६।।

28 राजपुताना म्युजियम अजमेर की रिपोर्ट वर्ष १९२१ पृ० ५
महाराणा कुम्भा पृ० २७४।

29 मार्ग वर्ष १२ अंक २ में श्री हरमनगूज का लेख

30. राजस्थान भारती मार्च, पृ० ४६ महाराणा कुम्भा पृ० २७५।

है। मध्य का भाग गोल और चतुरस्त्र[31] है। यह नौ मंजली है। नीचे ३० फीट चौड़ा और १२२ फीट ऊंचा है। उत्तरी भारत में कुतुबमीनार के पश्चात् लम्बाई में इसी का नम्बर आता है।

यह हिन्दू देवी देवताओं की मूर्तियों का म्युजियम प्रतीत होता है। इनमें प्रमुख मूर्तियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है। इनमें से अधिकांश प्रतिमायें स्थानक हैं।

प्रवेश द्वार में जनार्दन की मूर्ति है। इसके ४ हाथ है। इनमें से २ हाथ खडित हैं। ऊपर के दोनों हाथों में गदा और चक्र है। प्रथम मंजिल की पार्श्व की ताकों में क्रमशः अनन्त रूद्र और ब्रह्मा की मूर्तियां हैं। अनन्त विष्णु का स्वरूप है। यह मूर्ति पद्मासन सस्थित है। ऊपर के दोनों हाथों में पद्म और शेष २ हाथ खंडित हैं। इसका स्वरूप मंडन द्वारा वर्णित रूप से भिन्न प्रतीत होता है। रूद्र की मूर्ति में ४ हाथ हैं। ऊपर के हाथों में से एक में खट्वांग और दूसरे में त्रिशूल हैं। ब्रह्मा की मूर्ति के भी ४ हाथ हैं।

दूसरी मंजिल की पार्श्व में हरिहर की प्रतिमा है। इसके ४ हाथ हैं। इसमें विष्णु और शिव के सम्मलित भाव को व्यक्त किया जाता है। अतएव इस मूर्ति में आधे विष्णु के और आधे शिव के आयुध हैं। ऊपर के हाथों में कमल और त्रिशूल हैं। नीचे के हाथों में बिजोरा और शंख है। यह मूर्ति पद्मासनसंस्थित है। इसके दोनों ओर २ स्त्री मूर्तियां हैं। जिनके नाम मार्दंगिका और किन्नरी दिये हैं। मार्दंगिका के हाथ में ढोलक लिये हुए हैं और किन्नरी को दुप्पटा ओढे हुए बताया है। इनके आसपास और भी कई मूर्तियां हैं जो अग्नि यम भैरव वरूण और वायु की हैं। अग्नि की मूर्ति में ४ हाथ हैं इनके भी ब्रह्मा की तरह दाढी है। यम की मूर्ति में ४ हाथ हैं। भैरव की मूर्ति में ४ हाथ हैं। इनमें एक हाथ में डमरू और एक में कंकाल है। वरूण की प्रतिमा में ४ हाथ हैं इनमें माला कमंडलु पद्म और पाश है एवं वायु की प्रतिमा में भी ४ हाथ हैं। इनमें से नीचे के हाथों में माला और

---

31. आ० स० रि० इ० भाग २३ पृ० १०४ से १०६.

कमंडलु हैं। दूसरी तरफ पार्श्व में अर्द्धनारीश्वर की मूर्ति है। यह प्रतिमा शिव और पार्वती के सम्मलित भावों को व्यक्त करती है। इसमें आधा अंग शिव और आधा अंग पार्वती का है। शैवों के दार्शनिक दृष्टिकोण के अनुसार इसमें बीज और विन्दु के समन्वय को व्यक्त किया है और इसके दोनों ओर किन्नारियों की प्रतिमायें हैं। धनद के ४ हाथ हैं। ईश्वर की प्रतिना में भी इसी प्रकार ४ हाथ हैं।

तीसरी तरफ की पार्श्व में हरिहर पितामह की प्रतिमा हैं। यह प्रतिमा शिव विष्णु और ब्रह्मा के भावों को सम्मलितरूप से व्यक्त करती है। इस प्रकार की मूर्तियां राजस्थान के कई अन्य स्थानों से भी मिली है। त्रिपुरुष देव मत के मानने वालों में यह मूर्ति अधिकांश रूप से प्रचलित थी। इस प्रतिमा में ६ हाथ हैं। एक तरफ के ३ हाथों में त्रिशूल चक्र और वेद हैं और दूसरी तरफ के २ हाथों में शंख कमंडलु और एक हाथ में कुछ खंडित वस्तु है। इसके दोनों तरफ कपूर मजरी और मालाधारी की प्रतिमा हैं। इसके पास इन्द्र की प्रतिमा है।

तीसरी मंजिल में मुख्य पार्श्वों में विरंची, जयन्त नारायण और चन्द्रार्क पितामह की प्रतिमा है। चन्द्रार्क पितामह की प्रतिमा में शिव और पितामह के सम्मलित भावों को व्यक्त किया गया है। ऊपर के दोनों हाथों में कमल, मध्य के दोनों हाथों में खड्ग एवं नीचे की दोनों हाथों में माला है।

चौथी मंजिल मूर्तियां से भरी पड़ी है। इन प्रतिमाओं में त्रिखंडा तोतला त्रिपुरा लक्ष्मी नन्दा क्षेमंकरी महारंड़ा ब्राह्मणी सर्व मंगल रेवती हरि सिद्धि, लीला सुलीला, लीलांगी ललिता लीलावती उमा पार्वती ऋतुओं की गंगा यमुना और सरस्वती नदियो की गंधर्व विश्वकर्मा और कार्तिकेय की मूर्तियां हैं।

चौथी मंजिल की तरह पांचवीं मंजिल में भी कई प्रतिमाएं हैं। मुख्य पार्श्वों की ताकों में लक्ष्मीनारायण उमामहेश्वर, ब्रह्मासावित्री की युग्म मूर्तियां हैं। इनके अतिरिक्त तीन खंडों में प्रतिमाएं हैं। ऊपर के भाग में शक्ति खंग, त्रिशूल परशु की मूर्तियां हैं। इसके नीचे रूद्रलिंग

और अग्नि की छोटी प्रतिमाएं हैं। मध्य में लक्ष्मी नारायण की प्रतिमा है। यह प्रतिमा गरुडासन है। लक्ष्मी को विष्णु द्वाराएक हाथ से कमर में पकड़े हुए प्रदर्शित किया गया है। विष्णु के हाथों में माला गदा आदि आयुध हैं। लक्ष्मी की मूर्ति-खंडित है। इसके अतिरिक्त शामिल, कंत तूण तोमर आदि शक्ति की प्रतिमाए ऊपर हैं। शिष्या कपूर मंजरी और स्त्री पुरुष के संभोग की प्रतिमाएं दूसरी पंक्ति में हैं। आगे ऊपर की पंक्ति में गदा, सांग, नाराच आदि शस्त्रों की प्रतिमाएं हैं। नीचे की पंक्ति में सूत्रधार जइता एवम् उसके पुत्र नापा पूंजा आदि की मूर्तियां हैं जैता कुर्सी पर आसीन है। इसके पुत्रों के हाथों में करणी है। इसके नीचे की तरफ कवि माता और ईश्वर की प्रतिमाएं हैं। इसके आगे लक्ष्मीनारायण की मूर्ति की दूसरी तरफ ऊपर की पंक्ति में मुद्गल महारव, हला वसुला, वाण सला, सावला, फारिका, पाशिका, कशक कर्चरी छुरिका करवाल शंकु अजस दुस्फोट भुशंडी अर्गला पट्टिश आदि शस्त्रों की मूर्तियां हैं। दूसरी पंक्ति में पाशु मांर्दगिनी जो ढोलक लिये है नटी शिक्षाकार वांसिक को प्रदर्शित किया है। उत्तर की तरफ दूसरी पक्ति में राम पंचायतन है। इसमें हनुमान दोनों हाथों को जोड़े हुए हैं। सीता एक तरफ है राम बीच में हैं जिनके २ हाथ हैं लक्ष्मण के हाथ में शक्ति है। लक्ष्मण के पास सुग्रीव हाथ जोड़े खड़ा है। राम पंचायतन में सुग्रीव के स्थान पर कई बार भरत की प्रतिमा भी होती है। इसके समीप भिल्ल दंम कुलटा, तरुणी स्नात वनिता या सद्यस्नाता वेताल भूत आदि की प्रतिमाएं हैं। ये प्रतिमाएं कई दृष्टि से उल्लेखनीय है। भील उस समय महत्त्वप्राप्त कर चुके थे। कुलटा तरुणी आदि की प्रतिमाएं परम्परागत मिथुन प्रतिमाओं की प्रतीक है। पूर्वी तरफ कमंडलु माला स्वचि, स्तवन मालिका मालाकार दड, खट्वांग, शंख, आदर्श कमल डमरू और मृणाल की मूर्तियां हैं। दूसरी पंक्ति में सहदेव द्रोपदी नकुल युधिष्ठिर भीम और अर्जुन की प्रतिमाएं हैं। इनके पास ही मिथुनयुग्म का दृष्य अंकित हैं। बीच के पार्श्व में ब्रह्मा सावित्री की प्रतिमा है। ब्रह्मा के ४ हाथ में माला, वेद और एक हाथ से सावित्री को कमर से पकड़े हुए हैं।

६ठी मंजिल की पार्श्व की ताकों में महासरस्वती महालक्ष्मी और महाकाली की प्रतिमाएँ है। महासरस्वती के ६ हाथ हैं और हंस की सवारी है। कमडलु माला, कमल पुस्तक आदि आयुध है। महासरस्वती के ऊपर की तरफ तापस, जलाहार शिव लिंग तपस्वी जो शिव को जल भेंट कर रहा है प्रदर्शित किये गये हैं। इनके आगे यम रहस्य तापस व्यजानिक सेविका कुंभ हस्ता ब्रह्मा गायत्री की प्रतिमाएं हैं। नीचे की तरफ वैणिक सेवक भैरव, नट हनुमान और लक्ष्मण की अस्पष्ट मूर्तियां हैं। महाकाली की मूर्ति में चार हाथ हैं। इसमें डमरू शक्ति, माला और विजोरा है। भैरवी की मूर्ति में तलवार आदि आयुध हैं नीचे नृत्य करते हुए एक झुंड को प्रदर्शित किया है। जिनमें क्रमशः नर्तक, मार्दंगिका, वांशिक श्रुतिधर नर्तकी और नट हैं। वीच के पार्श्व में महालक्ष्मी की प्रतिमा है। यह गजलक्ष्मी है ऊपर हाथियों द्वारा सेवित है। मूर्ति में ६ हाथ है। नीचे की तरफ भैरव, गणेश कार्तिकेय शिव–पार्वती, सितोगण विजया अतिगण जया आदि की प्रतिमाएं हैं। इनके आगे पांडु रोग की प्रतिमा है। इनके ६ हाथ है जिनमें माला डमरू विजोरा कमल त्रिशूल और खट्वांग है यह बैल पर आसीन है। मध्य के पार्श्व में महाकाली की प्रतिमा है।

सातवीं मंजिल में ऊपरी भाग में किन्नरी युग्म बना हुआ है। इस मंजिल में विष्णु के विभिन्न अवतारों की प्रतिमाएँ हैं। वराह प्रतिमा में ४ हाथ हैं और पृथ्वी को लिये हुए व नाग कन्याओं द्वारा सेवित है। नृसिंह की प्रतिमा में भी ४ हाथ हैं। जिनमें से २ हाथ खडित हैं। हिरण्यकश्यप को चीरते हुए दिखाया है। वामन रूप की प्रतिमा में २ हाथ हैं। परशुराम के ४ हाथों में से एक हाथ में कमंडलु है शेष हाथ खंडित हैं। बुद्ध की प्रतिमा विशेष उल्लेखनीय है इसमें उसको हिन्दू देवता के रूप परिवर्तित कर दिया है। गले में कई अलंकार हैं। एक हाथ में धर्म चक्र और दूसरे में गदा है। बौद्धों के अनुसार इस प्रकार अलंकार युक्त बुद्ध की प्रतिमा नहीं बनती है।

आठवीं मंजिल में मध्य स्थान नहीं होने से वहां कोई प्रतिमा नहीं है। चारों ओर ८ स्तम्भ बने हैं जिनमें कहीं ५ या ६ भाग हैं जिन पर

अलग २ दृश्य अङ्कित है। वाकी हिस्सा खुला हुआ हैं। यहां से लकड़ी की सिड्ढी से ९ वीं मंजिल पर जाना पड़ता है। यह भाग मूल रूप से विजली गिरने से नष्ट हो गया था जिसे महाराणा स्वरूप सिंह ने १९११ ई० में बनाया था। ऊपर के भाग में ४ शिलाओं में प्रशस्ति लगी हुई थी जिनमें से २ ही अब उपलब्ध हैं।

कला की दृष्टि से टॉड ने इसे कुतुबमीनार से भी श्रेष्ठ माना है। किन्तु फार्ग्युसन इसे कुतुबमिनार से श्रेष्ठ नहीं मानते हैं। इसमें निर्माण सम्बन्धी दोष मानते है। उनका कहना है कि इतनी अधिक मूर्तियां इसमें हैं कि अत्यधिक अलंकरण बोझ सा जान पड़ता है। ऊपर के खंडों पर किया गया अलंकरण सामान्य रूप से नीचे के दर्शक को दृष्टव्य नहीं हो सकता है। किन्तु यह आपत्ति ठीक नहीं है। अलंकरण का प्राचुर्य उस काल की परिपाटी सी बन गई थी।

यह हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियों से अवश्य भरा पड़ा है, किन्तु इसमें निम्नांकित मूर्तियां और होती तो इसका महत्व अत्यधिक हो जाता[32]।

(१) इसमें नदियां, ऋतुओं और शस्त्रों को मूर्त रूप दिया है। लेकिन राग-रागनियों को मूर्त रूप (Personification) नहीं दिया है। यह मूर्त रूप कालान्तर में चित्रकला के क्षेत्र में दे दिया है। कुंभा संगीत शास्त्र का अद्वितीय विद्वान् था। इतना होते हुए भी राग-रागनियों को मूर्त रूप से अभिव्यक्त नहीं किया गया। स्मरण रहे कि कुंभा में इन्हें संगीत राज में मूर्त रूप दे दिया था।

(२) विष्णु के २४ रूपों की मूर्तियां विष्णु की अन्य मूर्तियां जैसे बैकुण्ठ विश्वरूप, त्रैलोक्य मोहन शेषशायी आदि २। तत्कालीन मूर्ति कला विद् मंडन ने इनके निर्माण सम्बन्धी विवरण दिया है और इनकी कुछ मूर्तियां एकलिंग जी के मन्दिर आबू के अचलेश्वर कुम्भलगढ चित्तौड़ के कुंभ स्वामी के मन्दिर आदि में बनी हुई है।

---

32. महाराणा कुंभा पृ २७८-२७९।

कीर्त्तिस्तम्भ के समीप खंडित विष्णु मंदिर

यह मन्दिर ऊंची जगती पर बना है और लगभग पूरा खंडित हो चुका है। गर्भगृह के पास वि सं० १३२७ का एक लघुलेख है जिसमें आल्हा के पुत्र रतना का उल्लेख है। संभवतः इसे आल्हा कावरा के पुत्र रतना श्रेष्ठि ने बनाया था। मन्दिर का कुछ ही भाग अवशेष है जिन पर लगी प्रतिमायें यह सिद्ध करती है कि यह किसी समय अच्छा अलंकृत रहा होगा। उत्तरी पश्चिमी भाग से चलते समय बाहर मंडोवर पर लगी प्रतिमाओं का विवरण इस प्रकार है :—

१. देवी प्रतिमा ४ हाथ हैं। शुचि, कमल, माला और बिजोरा ? आयुध है।
२. इसके पास ही विष्णु प्रतिमा है। इसके ऊपर के हाथों में कमल और शंख है नीचे के हाथों में गदा और पद्म (?) है।
३. बीच के पार्श्व में विष्णु प्रतिमा है। यह भी चतुर्भुज है। ऊपर के हाथों में शख और पद्म है। नीचे चक्र और गदा है।
४. कीर्त्तिस्तम्भ की ओर विष्णु के त्रैलोक्य मोहन का स्थानक रूप में प्रदर्शन है। इसमें २० हाथ हैं तीन मुख है। गरुड का अभाव है।
५. मन्दिर के ठीक पीछे के पार्श्व में विष्णु प्रतिमा है। ऊपर के हाथों में गदा और शंख हैं नीचे के हाथों में कमल और पाश (?) है।
६. इसके नीचे लक्ष्मीनारायण की प्रतिमा है।

मन्दिर के सामने के भाग में आसनस्थ गणेश प्रतिमा है और दक्षिणी तरफ शिव पार्वती की प्रतिमा है।

इस मन्दिर के समीप ही जोहर हुआ था। अतएव तृत अग्नि से यह और इसके पास के कई अन्य मन्दिर खंडित होगये थे।

इसके समीप ही कई छोटी देहरियां है। एक देहरो में ब्रह्मा विष्णु और महेश का सुन्दर अंकन होरहा है। पुरातत्त्व विभाग ने हाल ही में कीर्त्तिस्तम्भ के समीप और गोमुख के पास के भाग तक मिट्टी साफ

कराई गई थी इसमें भी कई हड्डियां राख आदि मिली हैं। इससे पता चलता है कि यहां जौहर हुआ था।

मोकलजी का मन्दिर

कीर्त्तिस्तम्भ और गोमुख के मध्य मोकल जी का मन्दिर स्थित है। कला की दृष्टि से यह मन्दिर भी उल्लेखनीय है। इस मन्दिर के वाहर की अधिकतम लम्बाई २७-३ फीट और चौड़ाई ६० फीट और १० इंच है। मुख्य मन्दिर में प्रकाश की पूर्ण व्यवस्था नहीं है। इनमें नीचे की ओर देवी प्रतिमायें हैं। ऊपर के भाग में देव प्रतिमा और इसके ऊपर कई दृश्य उत्कीर्ण हैं। इनमें विशेष रूप मे पुरुष युग्म अंकित हैं। कुछ नृत्य के भी हैं। इसके ऊपर पंचवेली वनी है। इसके ऊपर नरथर बना है। इनमें खग लिये पुरुषों को भी अंकित किया है। बीच के स्तम्भों पर वि सं० १२८६ के २ लेख हैं जिन पर सूत्रधारों के नाम हैं।

बाहर की ओर मंडोवर में कई मूर्तियां उत्कीर्ण हैं जो जंघा भाग और कुंभा भाग में है। नरथर में कई दृश्य उत्कीर्ण हैं। एक दृश्य राजा की सवारी का है जिसमें प्रारम्भ में वल गाड़ियां और इसके आगे ३ पैदल सैनिकों के जाने का दृश्य उत्कीर्ण है। इनके पीछे कई घुड़-सवार हैं और इनके पीछे हाथी पर राजा रानी को वैठा हुआ वत-लाया गया है। इसी प्रकार एक ओर दृश्य बना है जिसमें उपरोक्त व्यवस्था के साथ २ नर्तकियां भी हैं। एक इसी प्रकार सवारी के दृश्य में हाथी के साथ ऊंट भी है और महलों के झरोखों से रानियां के देखने का दृश्य अंकित है। इनके अतिरि. जैन साधुओं के भी कई दृश्य उत्कीर्ण है। इनमें हरिण गमेपी द्वारा गर्भ परिवर्तन, इन्द्र द्वारा जन्माभिषेक, व्याख्यानमुद्रा, स्थापना चारी सहित मुख वास्तिक एवं वगल में पिच्छी लिये जैन साधुओं को वताया है।

मुख्य मन्दिर में पूजी जाने वाली शिव की मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है। यह विशालकाय मूर्ति है। इसके ६ हाथ हैं जिनमें भिन्न भिन्न आयुध हैं।

इस मन्दिर को परमार राजा भोज ने बनाया[33] था। वि० स० १३३० के चीरवा के और १३५८ के चित्तौड़ से प्राप्त लेखों में इसको भोज का बनाया हुआ वर्णित है। महाराणा मोकल ने इसका जीर्णोद्धार कराया था यहां से। वि० स० १२०७ का कुमारपाल[34] का और वि० सं० १४८५ का मोकल का[35] लेख भी मिला है।

गोमुख

गोमुख पवित्र स्थल माना जाता है। इसमें पर्वत से गोमख द्वारा पानी आता है अतएव इस कुण्ड का नामकरण ही गोमुख कर दिया गया है। इन्हें सासबहु का कुण्ड भी कहते हैं। इसका प्रारम्भिक नाम मंदाकिनी कुण्ड था। यहां समरसिंह का शिलालेख कुछ वर्षों पूर्व लग रहा था जिसकी एक छाप भी उदयपुर में मैंने देखी है। गोमुख कुण्ड में जाने के लिये कई सीढियों से उतरना पड़ता है। बीच में एक गुफा भी बनी है। ऐसी मान्यता है कि प्रारम्भ में इसे समिद्धेश्वर मन्दिर के मठाधीश आदि प्रयोग में लाते रहे होंगे किन्तु यहां से प्राप्त शिलालेख सारे जैन मिले हैं। इनमें एक लेख वि० सं० १५१४ का चरणचोकी पर लगा हुआ है। एक अन्य लेख महाराणा रायमल के समय का वि० सं० १५४३ का है! जिनका वर्णन आगे किया जावेगा। यहाँ

---

33. आ० स० रि० इ० वर्ष

34. श्री चित्रकूटदुर्गे तलारतां यः पितृक्रमायातां
    श्रीसमरसिंहराजप्रसादातः प्राप निःपापः ॥३०॥
    श्रीभोजराजरचितत्रिभुवनन्नारायणाख्यदेवगृहे
    यो विरचयति स्म सदा शिव परिचर्यां स्वशिवलिप्सु ॥३१॥
    (चीरवा का लेख)
    ॐ सवत् १३५८ माघ सुदि १० दशम्यां-प्रतिहारवंशे महारावत राज श्री.....................जं० घारसिहेन श्री भोजस्वामीजगतीकेलि निर्मित प्रशस्ति पट्टिका सहित-(वरदा वर्ष ६ अंक १(०६६)

35. ए० इ० भाग २ में प्रकाशित लेख पृ० ४१५

विशालकाय स्त्रीमूर्ति बनी है जो हाथ में दर्पण लिये प्रदर्शित की गई है जो उल्लेखनीय है।

यहां से पूर्वी द्वार से होकर मुख्य सड़क द्वारा जयमल पत्ता के महलों की ओर जाने का रास्ता है। मार्ग में हाथीकुण्ड, जेठू महाजन की वावड़ी आदि आते हैं।

पत्ता और जयमल के महल

पत्ता और जयमल के महल एक विस्तृत तालाब के पास बने हैं। ये दोनों वीर पुरुष चित्तौड़ की रक्षा करते हुये १५६८ ई० में काम में आये थे। जयमल की हवेली में २ कमरे और एक हाल नीचे की ओर हैं और इसी प्रकार का भाग पर की मंजिल में बना हुआ है। यह मुस्लिम वास्तुकला से प्रभावित है। इसके पास ही पत्ता का महल हैं। यह अपेक्षाकृत सुन्दर बना है। इसका मुख्य द्वार पूर्व की ओर है किन्तु उत्तर की ओर से जाने का मार्ग बना हुआ है। इसमें जनाने महल अलग से बने हुये हैं। पूर्वी भाग के कमरे में पत्ता की मूर्ति बनी हुई है।[36]

उक्त तालाब के आगे सूर्यकुण्ड बना हुआ है। यह ८वीं शताब्दी का था किन्तु इसका जीर्णोद्धार वि० सं० १५७४ में किया गया था।

कालिकामाता का मन्दिर

यह मन्दिर प्रारम्भ में सूर्यमन्दिर रहा था जो मूलरूप से ८वीं और ९वीं शताब्दी का बना हुआ है। यह एक ऊंची जगती पर बना हुआ है। विशाल परकोटे में १२ सीढियां चढकर मन्दिर के सभा मंडप में प्रवेश किया जाता है। श्री रतनचन्द्र अग्रवाल का कथन है कि छत के मध्यवर्ती भाग पर एक वर्तुलस्थल में गरुड़ारूढ़ विष्णु का भव्य अंकन[37] हो रहा है यहां सभा मण्डप की छत को चौकोर (१८×१८

36. शास्त्री—चित्तोड़गढ़ पृ० ७०–७१
37. वरदा वर्ष ९ अंक ४ में प्रकाशित श्री रतनचन्द्रजी अग्रवाल के लेख के, आधार पर यह सारा वर्णन लिखा गया है अतएव मैं कृतज्ञ हूं।

इंच) स्तम्भों ने ४ पंक्तियों में उठा रक्खा है जिन पर घटपल्लवों के अभिप्राय बड़ी मात्रा में अंकित है। सभा मण्डप की छत कई भागों में बंटी है जहां प्राय नानाविध कमलाकृतियां उत्कीर्ण है। यह चपटीछत गुप्तकालीन कला की परम्परा थी इसकी बांई ओर के कोने में सूर्य-नारायण की प्रतिमा बनी हुई है जो पद्मासनस्थ है एवं चतुर्बाहु देवता के ऊपर के दोनों हाथों में सूर्य के आयुध कमल विद्यमान है और नीचे के दोनों हाथ बद्धाञ्जलीमुद्रा में है। यह प्रतिमा अपने ढग की अनुपम है।

गर्भगृह के मुख्य द्वार पर सप्ताश्वरथधारी सूर्य प्रतिमा बनी है। बांयी ओर गरुड़ासीन सपत्नीक विष्णु प्रतिमा बनी है एवं दाहिनी ओर शिवपार्वती बने हैं जो नन्दी पर आसीन बतलाये हैं गये गर्भगृह के ऊत्तर दक्षिण और पश्चिमी बाह्य भाग में एक एक प्रधान ताक बनी है जिनमें से दो में तो सप्ताश्व रथ में विराजमान सूर्य को प्रदर्शित किया गया जो ३ फीट लम्बी है पश्चिम की ओर की ताक में यह प्रतिमा नहीं है।

गर्भगृह की बाह्य की प्रतिमाओं को दक्षिण की ओर से वर्णन इस प्रकार है।[38]

१. अश्विनीकुमार—स्थानक मुद्रा में। दाहिना हाथ अभय मुद्रा में और बायें हाथ में खंग लिये हैं।
२. गजारूढ़ इन्द्र—द्विबाहु एक हाथ मे कमल और दूसरे में वज्र है।
३. अग्नि—स्थानक मुद्रा में। ४ हाथ हैं। ऊपर के दाहिने हाथ में व्यजन एवं बांये हाथ में ध्वजदण्ड है। नीचे के बायें हाथ में कमण्डलु और दाहिनाहाथ वरदस्थिति में है। वाहनमेष है।
४ मुख्यपार्श्व में आसनस्थ सूर्य प्रतिमा।
५. स्थानक यम-वाहन महिष है। दाहिने हाथ में आकर्षक खट्वांग

38. उपरोक्त

बना हुआ है। गर्भगृह के पीछे की ताकों में स्थित प्रतिमाओं का वर्णन इस प्रकार है।

६. दिक्पाल (१) दाहिने हाथ में खंग और वांया हाथ जंघा पर।

७. मुख्य पार्श्व में आसनस्थ सूर्य प्रतिमा रही होगी। इस समय खाली है।

८. वरुण—स्थानकमुद्रा में वाहन मकर है।

उत्तर की ओर ताकों का क्रम इस प्रकार है :—

९. वायु स्थानक मुद्रा में मृगसहित प्रदर्शित है।

१०. मुख्यपाश्वे में आसनस्थ सूर्य प्रतिमा है।

११. चन्द्रमा-स्थानकमुद्रा में। श्री रतनचन्द्रजी अग्रवाल के शब्दों में "यह प्रतिमा राजस्थान की पूर्व मध्ययुगीन मूर्तिकला की महत्त्व-पूर्ण निधि है। नीचे घोड़ा वाहन के रूप में खड़ा है और चन्द्र के पीछे अर्धचन्द्राकृति बनी है। गले में एकावलि पर्याप्त आकर्षक है। बाह्य भाग की ताकों में चन्द्रमा की प्रतिमायें बहुत ही कम मिलती है।—यह भी असाधारण प्रतिमा है। सूर्य मदिर के बाह्य चन्द्रमा प्रतिमा की विद्यमानता अभी तक तो अन्यत्र राजस्थान में पूर्व मध्ययुग तक नहीं मिली है।"

१२. ईशान प्रतिमा।

१३. अश्विनी कुमार।

इस प्रकार बाहर की १३ ताकों में सूर्य का अंकन प्रधान ३ ताकों में अश्विनीकुमार का २ में चन्द्रमा का १ में और दिक्पाल का ७ में है यहां ताकों के स्तम्भ भी पर्याप्त आकर्षक हैं। इनमें घटपल्लव, पत्रलता, मकर कीर्त्तिमुख और घटपल्लव बहुत सुन्दर ढंग से उत्कीर्ण है। सभामंडप और गर्भगृह के नीचे-बाहर भी चारों ओर प्रतिमायें बनी हुई है। इनमें विशेष उल्लेखनीय आसनस्थ चतुर्बाहु लकुलीश प्रतिमा है। बाहरी भाग में आंगन के पास कुछ ताकें नीचे जड़ने की व्यवस्था थी। इनमें शिव-पार्वती, वराह और समुद्रमंथन की प्रतिमाये विशेष उल्लेखनीय है।

इस प्रकार कला की दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण मंदिर है। मंदिर में कुछ आधुनिक लेख हैं। वि०सं० १८१५ महाविद २ का एक सुरहलेख भी लग रहा है। इन लेखों में वि०सं० १८६२ के तीन लेख, १८६४ का १ लेख और १८६५ एक लेख स्तम्भों पर सभा मंडप में उत्कीर्ण है कई यात्रियों के नाम खुदे हैं इनमें अच्यंतधज जोगी का नाम भी है जिसका नाम एकलिंगजी स्थित लकुलीश मन्दिर में भी खुदा हुआ है।

पद्मिनी महल

कालिका माता के मंदिर से दक्षिण की तरफ जाते समय पद्मिनी के महल बने हुये हैं। वे महल आधुनिक से प्रतीत होते हैं। दोनों ओर तालाब होने से इन महलों का दृष्य बडा रमणीय हो गया है। प्राचीन महलों का आधुनिकरण किया[39] जा चुका है। अतएव यह बतलाना कठिन हैं कि इन महलों में कौनसा भाग प्राचीन था।

यहां से सड़क सीधी चूंडा के महल, रामपुरा की हवेली भाकसी होकर के जाती है। भाकसी में कहा जाता हैं कि महाराणा सांगा ने मोहम्मद खिलजी को बंदी बनाकर रक्खा था। श्री शोभालाल शास्त्री की मान्यता है कि यह स्थान महाराणा कुम्भा द्वारा बंदी बनाये राजकुमारों को रखने के भी काम आता रहा था[40] यहां से आगे चौगान में होकर चित्रांग मोरी के तालाब की ओर जाता है। यह स्थान प्राचीन था किन्तु यह आधुनिक प्रतीत होता है। इसके किनारे पर वैद्यनाथ का १४वीं शताब्दी का मंदिर बना हुआ है। यह मग्नावस्था में है। मालाबुर्ज के पास एक छोटासा द्वार है इसे "हरामखोरों की बारी" कहते हैं। दुर्ग में धोखा और देशद्रोह करने वालों को दंड देने के लिये यह स्थान प्रसिद्ध रहा है। यहां से जो सड़क आती है वह

---

39. महल प्राचीन है। इनका उल्लेख अमर काव्य में सांगा के प्रसंग में और चित्तौड़ की गजल में भी है।

40. शास्त्री—चित्तोड़गढ़ पृ० ७८

राज टीला होती हुई उत्तर की ओर मुड़ती है। जहां सिरोही बून्दी लूनावाड़ा हवेलियां हैं। यहां के शासक दीर्घकाल तक मेवाड़ के सामन्त रहे थे। यहां से भीमलत–कुण्ड आता है। कहा जाता है कि भीम पाण्डव ने इसे बनाया था। निसंदेह दुर्गम चट्टानो को खोदकर इसे बनाया गया है। अतएव यह कार्य कठिन सा था अतएव इसके लिये भीम को इसका बनाने वाला बतलाया है। यह तालाब १३०×६५फीट लम्बा बना हुआ है। इसके किनारे पर कुछ खडित मन्दिर बने हुये हैं। श्री शोभालाल शास्त्री की मान्यता है कि पूर्वाभिमुख विष्णु मंदिर संभवतः समिद्धेश्वर मन्दिर के वि० सं० १४८५ के लेख निर्मित द्वारिकानाथ का मन्दिर रहा होगा[41]। यहां कई सतियों के लेख जो वि०स० १५४४ में १६१५ तक हैं उल्लेखनीय हैं। इन लेखों में अधिकांशतः लघु लेख है।

अद्भुतजी का मन्दिर

यहां से उत्तर की ओर जाते समय वि०सं० १५४६–४७ में वर्णित अद्भुतजी का मन्दिर आता है। मन्दिर के पीछे वि० सं० १५४६ का शिलालेख खुदा है। जिस पर बलराज सुत्रधार का नाम खुदा[42] हुआ है। इसके अतिरिक्त कुछ नाम और भी खुदे हैं यथा हेमा पनाजी लषणा आदि। मन्दिर में निजमन्दिर, खुला मण्डप बना हुआ है। इसका शिखर खंडित हो चुका है। मण्डप में ३ प्रवेश द्वार हैं। पश्चिमाभिमुख द्वार मुख्य द्वार है। मुख्य मन्दिर ४ फीट ८ इन्च गहरा बना हुआ है। मंडप से ४ सीढियां उत्तर कर अन्दर जाया जाता है। यहां की प्रतिमा बड़ी विकराल[43] बनी हुई है। इसके ३ मुख हैं हाथों में

41. समिद्धेश्वर मन्दिर की प्रशस्ति श्लोक ६१ से ६३। शास्त्री चित्तौड़गढ़ पृ० ७८
42. यह जैता का पुत्र था। कीर्तिस्तम्भ के एक लघु लेख में जो वि० स० १५४७ वर्ष वैशाख सुदि का है, जैता के पुत्र बलराज का उल्लेख है।-समेलन पत्रिका वर्ष ४४ अंक २-३ में श्री रतन चन्द्र अग्रवाल का लेख द्रष्टव्य है।
43. शास्त्री—चित्तौड़गढ़ पृ० ७८–७६

बिजोरा, सर्प आदि आयुध हैं। मूर्त्ति की विकरालता के कारण ही इसका नाम अद्भुतजी का मन्दिर पड़ा है।

बाहर मंडोवर में कई दृश्य उत्कीर्ण हैं। उत्तरी ओर के भाग में कई स्त्री नर्तकियां उत्कीर्ण है। नर्तकियों के अतिरिक्त उमामहेश्वर का अंकन हो रहा है। इसके समीप ही उष्ट्रारोही महिला का अंकन हो रहा है। इसके पास ब्रह्मा की प्रतिना हैं। मुख्य पार्श्व में ककाल भैरव की प्रतिमा है। पीछे की ओर मुख्य पार्श्व में नटराजशिव की प्रतिमा है। दोनों ओर कई स्त्री प्रतिमायें बनी हुई हैं। उत्तरीपूर्वी कोने में एक देव प्रतिमा बनी हुई है जो त्रिशूल सर्प कमण्डलु आदि लिये हुये हैं। उत्तरी पूर्वी कोने में देव प्रतिमा बनी है जिसके ऊपर के हाथों में शुचि लिये हुये हैं। दक्षिणी तरफ त्रिविक्रम की प्रतिमा बनी हैं। ब्रह्मासावित्री की प्रतिमा सुन्दर बनी हैं, पास ही कई स्त्री मूर्त्तियां खुदी हैं।

नीलकण्ठ महादेव मन्दिर

अद्भुतजी के मन्दिर से सूरजपोल होकर के जब हम आते हैं तो मार्ग में साईंदास का चबुत्तरा आता है। यह सुरजपोल पर ही बना हुआ है। यह सलूम्बर वालों का पूर्वज था और यहां युद्ध करते करते १५६८ ई० में अकबर के आक्रमण के समय वीरगति को प्राप्त हुआ था।

मन्दिर बड़ा प्राचीन है। अल्लाउद्दीन के या किसी अन्य आक्रमण के समय इसे भी खंडित कर दिया होगा। इसका जंघा भाग अब भी यथावत् बना हुआ है। यहां के खंडहरों से कुछ शिलालेखों के टुकड़े भी मिले हैं। अभी हाल ही में मुझे भी वि०स० १४९५ की महावीर प्रसाद प्रशस्ति का खंड मिला था[44]। यह मन्दिर अब जागीर में दिया हुआ है। इसमें एक शिलालेख वि०सं १७८७ चैत्र बदि १० का लग रहा है। इसमें गोसाईं भागीरथ भारती का वर्णन है। सीलावट का नाम भी खुदा है अतएव उस वर्ष कुछ निर्माण कार्य हुआ होगा।

44. वरदा वर्ष ११ अंक २ में प्रकाशित

महावीर प्रसाद

जैन कीर्त्तिस्तम्भ के समीप महावीर जैन मन्दिर बना हुआ है। यह प्रारम्भ में दिगम्बर मंदिर रहा होगा क्योंकि इसके पास ही दिगम्बर जैन कीर्त्ति स्तम्भ बना हुआ है। मन्दिर अल्लाउद्दीन के आक्रमण के समय खडित हो गया था जिसका जीर्णोद्धार गुणराज श्रेष्ठि के पुत्रों ने किया था। यह जीर्णोद्धार वि०सं० १४८५ से प्रारम्भ होकर वि०सं० १४९५ में पूर्ण हुआ था। इसकी प्रतिष्ठा आचार्य सोम सुन्दर सूरि ने की थी। चारित्ररत्नगणि ने प्रशस्ति भी बनाई जिसका एक शिलाखंड हाल ही मुझे मिल गया है।

मन्दिर पश्चिमाभिमुख है। इसमें गर्भगृह और गूढ मंडप है। इसमें न तो श्रृंगार चोकी मंडप है और न सामने के भाग पर खुदाई ही। शिखर खंडित हो गया था जिसका हाल ही जीर्णोद्धार कराया गया है। जाड्य कुम्भ :में कुछ मूर्तियां बनी है किन्तु अधिकांश मूतियां जंघा भाग में बनी हुई है। इन मूर्तियों में स्त्री मूर्तियों का प्राधान्य है। मार्दंगिका का कई बार प्रदर्शन हो रहा है। देव प्रतिमाओं में उमा महेश्वर, ब्रह्मासावित्री आदि की प्रतिमायें विशेष उल्लेखनीय है[45]।

ऐसा प्रतीत होता है कि मन्दिर का जीर्णोद्धार गुणराज श्रेष्ठि के बाद भी हुआ है जिसमें प्रवेश द्वार का भाग ठीक कराया गया था। इस समय यह मन्दिर दिगम्बर जैन समाज की देख रेख में हैं।

जैन कीर्तिस्तम्भ

चित्तौड़ के जैन कीर्त्तिस्तम्भ के समीप एक लघु लेख कर्नल टॉड को मिला था जिसमें आदिनाथ २४ जिनेश्वर पुंडरीक सूर्य गणेश और नव-ग्रहों का उल्लेख है। यह लेख अब उपलब्ध नहीं है। इस लेख का कीर्तिस्तम्भ से क्या सम्बन्ध है ? क्या यह इसके निर्माण की तिथि है कहा नहीं जा सकता है। आधुनिक विद्वानों की मान्यता है कि यह

45. महाराणा कुम्भा पृ०

वि०सं० ११०० के आसपास बना[46] था। इसके निर्माता का नाम नय पुत्र श्रेष्ठि जीजा था जो बघेरवाल जाति का था। इससे सम्बन्धित २ लेख भी मिले हैं। एक अप्रकाशित लेख की प्रतिलिपि उदयपुर महाराणा सा० के संग्रहालय में मुझे देखने को मिली है। यह वीर-विनोद लिखते समय कविराजा श्यामलदास ने एकत्रित कराई थी। इस लेख का विस्तृत वर्णन अन्यत्र कर दिया जावेगा। कुछ विद्वान् लिपि की दृष्टि से इसे १३ वीं शताब्दी का मानते हैं। इसी जीजा श्रेष्ठि के वंशजों ने नन्दगांव में एक मूर्ति प्रतिष्ठापित कराई थी। इसमें प्रसंगवश चित्तौड़ के कीर्त्तिस्तम्भ स्थापित करने का श्रेय जीजा श्रेष्ठि को दिया है। इसके पिता का नाम श्रेष्ठि नय था। इस लेख में "चन्द्रप्रभ जितेन्द्र देवालय" शब्द भी[47] वर्णित है। यह मन्दिर संभवतः महावीर जैन मदिर रहा होगा। उक्त मन्दिर की वि० सं० १४९५ की एक प्रशस्ति में चारित्ररत्नगणि ने कीर्त्ति स्तम्भ का संस्थापक प्राग्वाट-वंशी कुमारपाल नामक श्रेष्ठि को बतलाया है जो संभवतः गलत है। इसने संभवतः जीर्णोद्धार कराया हो। श्रेष्ठि जीजा के वंशजः संभवतः अल्लाउद्दीन के आक्रमण के समय दक्षिण की तरफ चले गये थे। अनेकान्त जून १९६४ के अंक में बघेरवाल जाति पर एक लेख प्रकाशित हुआ था इसमें वि०सं० १२४१ में चित्तौड़ से जीजा के वंशज पुनोजी खटोड़ के दक्षिण में जाने का उल्लेख है उस समय यहां अलावर्दी नामक मुसलमान शासक का अधिकार बतलाया गया था। किन्तु उस समय चित्तौड़ में अलावर्दी नामक कोई शासक नहीं था। इसका शासनकाल वि०सं० १३६० से शुरू होता है।

कीर्त्तिस्तम्भ ७६ फीट ऊंचा है। नीचे ३२ फीट ऊपर की ओर १५ फीट चौडा है। यह एक ऊंची जगती पर बना है। जिस पर जाने के लिये १२ सीढ़ियां बनी है। यह कई एक अलंकृत प्रतिमाओं से सज्जित है। सबसे नीचे हंसपीठ है। इसके पश्चात् सिहमुखथर गजथर

46. शोधपत्रिका वर्ष १६ अंक ३–४ पृ० ९८

47 जैन एंटिक्वेरी vol. (xii) प० १३७

और नरथर हैं। नरथर में कई दृश्य उत्कीर्ण हैं जो समिद्धेश्वर शिव मन्दिर की कला का स्मरण दिलाते हैं। कुछ युद्ध के दृश्य हैं। एक में जिनपूजा का आयोजन है। एक दिगम्बर मुनि द्वारा कथा सुनाने का भी दृश्य अंकित है। शिकार का दृश्य भी उत्कीर्ण है। इसके ऊपर शासनदेवताओं और देवियों की प्रतिमायें बनी हुई हैं। मध्यभाग में ४ कायोत्सर्ग प्रतिमायें बनी हुई हैं। कुछ नग्न प्रतिमायें भी हैं। राणकपुर और चित्तौड़ के अन्य मन्दिरों में भी ऐसे ही नग्न प्रतिमायें देखने को मिली है। पूर्वाभिमुख प्रतिमा के एक ओर ब्रह्मा और दूसरी ओर शिव प्रतिमा है। उत्तराभिमुख के एक ओर भैरव एक ओर शिव प्रतिमा है। इसके ऊपर आसनस्थ जिनप्रतिमायें[48] हैं। हालही में केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग द्वारा खुदाई करते समय ज्ञात हुआ है कि इसके नीचे का भूमितल भाग खोखला हो गया[49] था। इसको फिर से भर दिया गया है ताकि भविष्य के खतरे से मुक्त हो सके।

चारभुजा का मन्दिर

कीर्त्तिस्तम्भ से सतबीस देवरी के पास आकर मोती बाजार होकर जाया जाता है। मार्ग में भीमगोडी तालाब भी आता है। आबादी के मध्य जाते समय चारभुजा और लक्ष्मीनारायण के मन्दिर आते हैं जो एक दूसरे के आमने सामने बने हुये हैं। चारभुजा का मन्दिर पश्चिमाभिमुख हैं और लक्ष्मीनारायण का पूर्वाभिमुख। चारभुजा का मन्दिर वि०सं० १५७४ में बनाथा। मुख्यमन्दिर में काले पत्थर की विष्णु प्रतिमा बनी है। इस मन्दिर में विशेष उल्लेखनीय कलापूर्ण तोरण है जो १२वीं शताब्दी का प्रतीत होता है। यह किसी प्राचीन मन्दिर का खंड होगा जिसे यहां लाकर के लगाया गया प्रतीत होता है। इस पर बनी प्रतिमायें और उत्कीर्ण करने की शैली समिद्धेश्वर के मन्दिर की शैली की तुलना में रखी जा सकती है। मंडोवर भाग में वराह विष्णु और नृसिंह की प्रतिमायें बनी हुई है।

48. शोध पत्रिका वर्ष १६ अंक ३-४ में मेरा लेख चित्तौड़ और दिगम्बर सम्प्रदाय द्रष्टव्य है।
49. इण्डियन आर्कियोलोजी ए रिव्यु वर्ष १९५८

अन्नपूर्णा और बाणमाता के मन्दिर

अन्नपूर्णा का प्राचीन नाम "लक्ष्मी मन्दिर" या लक्ष्मीनारायण मन्दिर रहा होगा। मन्दिर में पूजी जानेवाली प्रतिमा महालक्ष्मी की है। मुख्य मन्दिर के ऊपर की ओर भी गज लक्ष्मी की प्रतिमा बनी है। इस मन्दिर का निर्माण हमीर द्वारा किया गया था। यहां लगे शिलालेख में कुम्भा के समय में इस मन्दिर की स्थिति का पता चलता है। उसने इस मन्दिर के लिये कुण्डाल ग्राम दान में दिया था। बहुत कुछ संभव है कि कुम्भा ने ही इसका जीर्णोद्धार कराया हो। अन्नपूर्णा नाम लक्ष्मी का ही नाम रहा हो और कालान्तर में इस नाम से पुकारा जाने लगा हो। सभामण्डप की बाहर की ताकों में दक्षिणी भाग में गणेश और उत्तरी भाग में संभवतः महिषासुर मर्दिनी की मूर्ति है। सभामण्डप की छत्त पर १६ आसनस्थ नर्तकियां और खड़ी प्रदर्शित की गई है। मंडोवर भाग में ब्रह्माणी का अंकन सुन्दर हो रहा है। देवी के ४ हाथ हैं जिनमें शुचि माला कम● लु आदि आयुध हैं। उत्तरी भाग में गजलक्ष्मी बनी है जिसके ४ हाथ हैं। यह मन्दिर निसदेह प्राचीन रहा होगा क्योंकि यहां से वि० सं० १५२२, १५७३ और १५८१ के सती लेख भी देखने को मिले हैं।

इस मन्दिर के साथ साथ एक मन्दिर और है जिसका नाम बाणमाता का मंदिर है जिस में २ प्रतिमायें हैं। प्राचीन प्रतिमा संभवतः खंडित हो गई थी इसके स्थान पर नयी लगाई गई थी। दीवार पर वि०सं० १९८१ आषाढ़ सुदि ७ का लेख खुदा है। सभामण्डप में नर्तकियां बनी हैं।

अन्नपूर्णा के मन्दिर के पास ही राघवदेव का स्मारक है। यह छत्री उस वीर पुरुष की है जिसने चित्तौड़ में राठोड़ों के कुचक्र को समाप्त करने के लिये प्रयास किया था और उसको छल से मर वाया गया था।

कुकड़ेश्वर मन्दिर

माताजी के कुण्ड पर पश्चिमाभिमुख कुकड़ेश्वर मन्दिर है। यह

कुण्ड भी प्राचीन है और दुर्ग के उल्लेखनीय कुण्डों में से हैं। इसका भी महाराणा कुम्भा ने जीर्णोद्धार कराया था। कुण्ड में कई कुम्भा कालीन प्रतिमायें हैं जिनपर लेख भी खुदे हैं। लक्ष्मीनारायण की एक प्रतिमा पर वि०सं० १५१७ का कुम्भा कालीन अस्पष्ट लेख हैं। इस प्रतिमा के अतिरिक्त ब्रह्मा, विष्णु और महेश की देवियों सहित प्रतिमायें हैं। इसका जीर्णोद्धार निःसंदेह कुम्भा ने ही कराया था। इस मन्दिर के पास ही कर्नल टॉड को एक शिलालेख वि० सं० ८११ का मिला था जिसमें मन्दिर और कुण्ड बनाने का उल्लेखनीय है। मन्दिर के सभा-मण्डप में नन्दीश्वर और गणेश की विशाल प्रतिमायें हैं।

मंडोवर में उत्तरी भाग में मुख्य पाश्र्व में कंकाल भैरव की प्रतिमा है। इस ओर की स्त्री प्रतिमाओं में अधिकांशतः खडित है। पीछे मुख्य पार्श्व में नटराज शिव की प्रतिमा है। इस ओर कई सुन्दर देव प्रतिमाओं का अंकन हो रहा है। विष्णु के विराट रूप की भी प्रतिमा है। यह मन्दिर १६वीं शताब्दी के प्रथम चरण या १५वीं शताब्दी के अन्त नें बना प्रतीत होता है। सभामण्डप के एक स्तम्भ को छोड़कर शेष सारा मन्दिर नया बना हुआ है और संभवतः महाराणा रायमल के समय में पूरा बना है। इसका एक ही कारण है कि अद्भुतजी का मन्दिर और यह मन्दिर साथ २ बने थे। क्योंकि शैली में बहुत ही अधिक साम्यता रखते हैं और संभवतः एक ही शिल्पी द्वारा बनाये गये प्रतीत होते हैं।

रतनसिंह के महल

रतनसिंह के महल हिंगलू आहड़ा के महल के नाम से भी विख्यात है। महल रत्नेश्वर तालाब के किनारे पर स्थित है पास ही रत्नेश्वर महादेव का मन्दिर भी है।

इस प्रकार दुर्ग के मुख्य मुख्य स्थानों का संक्षिप्त परिचय दे दिया गया है।

चित्तौड़ के उल्लेखनीय स्थपित

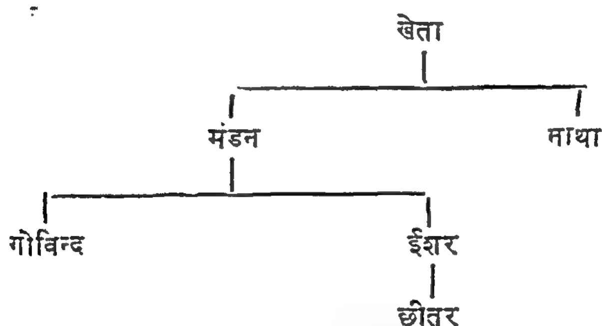
चित्तौड़ में निर्माण कार्य का क्षेत्र दुर्ग में प्रमुख रूप से निम्न प्रकार था। (१) शृंगार चंवरी कुम्भश्याम कीर्त्तिस्तम्भ सतबीस देवरी और गोमुख तक का क्षेत्र। इसमें कुम्भा के महल भी सम्मलित हैं। राजमहल होने से यह सबसे अधिक प्रभावशाली क्षेत्र रहा प्रतीत होता है। (२) दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र कुकडेश्वर मंदिर, अन्नपूर्णा मंदिर माताजी का कुण्ड का भाग है जो भी ८ वीं शताब्दी के आस-पास उन्नतावस्था में था। तीसरा क्षेत्र सूर्यकुण्ड सूर्य मंदिर आदि का भाग और चौथा भाग जैन कीर्त्तिस्तम्भ नीलकंठ मंदिर तक का भाग होसकता है। मोटे तोर पर चौथे भाग को पहले भाग के साथ भी रक्खा जा सकता है। दुर्ग बनने के साथ-साथ भवनों और मंदिरों के निर्माण का क्रम भी जारी रहा प्रतीत होता है क्योंकि ८ वीं शताब्दी के भवनों के अवशेष अब भी विद्यमान है। दुर्ग पर परमार और सोलंकियों के अधिकार काल में कुछ जैन मंदिर और वैष्णव मंदिर बनना ज्ञात हुआ है। जैन अनुश्रुतियों से हरिभद्र सूरि के समय भी यहां जैन मंदिर रहना ज्ञात होता है। जिन वल्लभ सूरि के चित्तौड़ आगमन के समय यहां कई चैत्यवासियों के मंदिर और चंडिका के मंदिर होना विद्यमान थे। उन्होंने यहां विधि चैत्यों का निर्माण कराया था। समरसिंह के शासनकाल में बहुत विकास हुआ। सबसे अधिक उल्लेखनीय घटना अल्लाउद्दीन का आक्रमण है। इस काल में कई कलापूर्ण मंदिर विध्वंस करा दिये गये। निर्माण कार्यों का दूसरा क्रम हमीर से शुरू होता है जो कुम्भा और रायमल के शासनकाल तक चलता है। इस काल में कुम्भा का शासनकाल मेवाड़ के इतिहास में स्वर्ण युग माना जा सकता है। उस समय इस दुर्ग के लगभग सारे मानमंदिरों को नये ढंग से बनाया गया। जलाशयों का आवश्यकतानुसार जीर्णोद्धार कराया। दुर्ग के प्राचीर और रक्षापंक्ति को मजबूत बनाया और आने-जाने का मार्ग ठीक कराया। यह क्रम सांगा और रतनसिंह के समय तक भी चलता रहा। बहादुरशाह के आक्रमण से यह कार्य रुक गया अन्त में मुगलों से संधि के बाद एक बार जीर्णोद्धार का प्रयास महाराणा राजसिंह ने शुरू किया था जिसे मुगलों ने रोक दिया।

इन कार्यों के लिये चित्तौड़ में कई उल्लेखनीय स्थपित थे। जिन वल्लभ सूरि से सम्बन्धित शक सं० १०२८ के शिलालेख में "रामदेव: सुधी: सुव्यक्तां जसदेव सूनुरुदकारीत्सूत्रधाराग्रणी।" शब्द अङ्कित है। इसी प्रकार वि० सं० १२०७ की कुमारपाल की प्रशस्ति में सूत्रधार का नाम मिट चुका[50] है। समिद्धेश्वर के मंदिर के स्तम्भों पर वि०सं० १२८६ के २ लेख खुदे हैं जिन पर सूत्रधारों के नाम खुदे हैं। रावल समरसिंह की चित्तौड़ की प्रशस्ति में "सज्जनेन समुत्कीर्णा प्रशस्तिः शिल्पिनामुना" शब्द[51] है। किन्तु शिल्पियों के कुछ विशिष्ठ परिवारों का उल्लेख १५ वीं शताब्दी में चित्तौड़ में मिलता है। चित्तौड़ की वि० सं० १४८५ की प्रशस्ति में सूत्रधार वीजल के पुत्र माना, और माना के पुत्र वीस एवं वीसल का उल्लेख मिलता है। वीस या वीसल भी संभवतः एक ही व्यक्ति के भिन्न-२ नाम हो सकते हैं।[52] मान के लिये कई सुन्दर प्रासाद बनाने का वर्णन मिलता है। "गुणवान" विशेषण उल्लेखनीय है। दूसरा उल्लेखनीय सूत्रधार परिवार मंडन का था। इसका वर्णन अन्यत्र कर दिया गया है। वि० सं० १४८२ के एक ताम्रपत्र में, जिसे शोधपत्रिका में श्री नाथूलाल व्यास ने कई प्रमाणों से जाली सिद्ध कर दिया है, यह वर्णित है कि सूत्रधार मंडन के पिता खेता को गुजरात से बुलाया।[54] यह ताम्रपत्र जाली होने से यह बात तथ्यहीन है। मंडन ने स्वय अपने ग्रयों में "श्रीमद्देशे मेदपाटाभिधाने

---

50. ए० इ० भाग २ में प्रकाशित
51. वी० वि० भाग १ के शेष सग्रह एवं भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स में प्रकाशित
52. श्री रतनचन्द्र अग्रवाल का लेख "मेवाड़ के कुशल सूत्रधार एवं प्रमुख शिल्पी" (सम्मेलन पत्रिका वर्ष ४४ अङ्क २-३)
53. मनाख्यो सकल गुणवान् वीजल सुतः शिल्पी जातो गुणगण-युतो वीवसल इति-"
54. इंडियन हिस्टोरिकल क्वाटरली जून १९५४ पृ० १७८-८२ शोधपत्रिका वर्ष ७ अङ्क १ पृ० ५०-८३ सम्मेलन पत्रिका वर्ष ४४ अङ्क २-३ पृ० २८६-२८७

क्षेत्राख्योऽभूत् सूत्रधारो वरिष्ठः" वर्णित किया है जिससे खेता को मेवाड़ वासी बतलाने में गर्व प्रकट किया है। राजवल्लभ मंडन में मंडन ने महाराणा कुम्भा का वर्णन बड़े ही गौरव के साथ किया[55] है। मंडन के छोटा भाई नाथा ने वास्तुमंजरी की रचना की। मंड़न के पुत्र गोविन्द ने तीन ग्रन्थों का सम्पादन किया था यथा—कलानिधि उद्धार धोरणि, और द्वार दीपिका। यह महाराणा रायमल के समय में राजाश्रित[56] था। मंडन के दूसरे पुत्र ईश्वर का उल्लेख जावर की वि० सं० १५५४ की प्रशस्ति में है। उदयपुर संग्रहालय में सुरक्षित अप्रकाशित खरतरगच्छ के एक लेख में ईश्वर के पुत्र छीतर का उल्लेख है। इस प्रकार इस वंश का वंशक्रम इस प्रकार[57] है :—



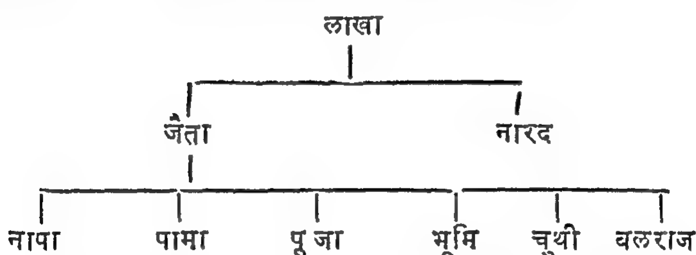
कुम्भा का समकालीक एक अन्य उल्लेखनीय परिवार का वर्णन करना भी आवश्यक है। सूत्रधार जैता का परिवार उल्लेखनीय है। इसके पिता का नाम लाखा था। इस का एक भाई नारद

55. श्री मेदपाटे नृप कुम्भकर्णस्तंदघ्रिराजीत्रपरागसेवी।
स मण्डनाख्यो भुवि सूत्रधारस्तेनोद्धतो भूपति वल्लभोयम्
१४। ४३

56. राज्ञा श्री राजमल्लेन प्रतिस्यामि (ति) मनोहरे। प्रणम्यमाने प्रसादे गोविन्दः संव्यधादिदम्।..........कलानिधि की प्रशस्ति

57. सम्मेलन पत्रिका वर्ष ४४ अङ्क २–३ पृ० २८६। महाराणा कुम्भा पृ०

था जिसका उल्लेख वि० सं० १४९५ की चित्तौड़ की महावीर प्रसाद प्रशस्ति में होरहा हैं। इस परिवार के कई लेख मिले हैं जिनका वर्णन आगे करूंगा। इन लेखों में वि० सं० १५१५ का लेख महत्वपूर्ण हैं। इसमें लाखा को "सकलवास्तुशास्त्रविशारद्" कहा गया है। विभिन्न लेखों के आधार पर जैता के कई पुत्रों के नाम मिलते हैं यथा– नापा, पामा, पूंजा, भूमि, चूथी, वलराज। वलराज वि० सं० १५४७ तक जीवित था। इनका वंश क्रम इस प्रकार मिलता है [48]



इनके अतिरिक्त और भी कई सूत्रधारों के नाम भी मिलते हैं। वि० सं० १५३८ के एक अप्रकाशित मूर्ति के लेख में सूत्रधार सीहा द्वारा शांतिनाथ की मूर्ति बनाने का उल्लेख मिलता है। शत्रुञ्जय के वि० सं० १५८७ के लेख में चित्तौड़ के कई सूत्रधारों के वहां जाकर के जीर्णोद्धार करने का उल्लेख मिलता है। १८ वीं शताब्दी के कई लेखों में सूत्रधारों का उल्लेख मिलता है। नीलकंठ मंदिर के स्तम्भ पर वि० सं० १७८७ का लेख है इसमें सिलावट वापा के बेटे वीरमाण का नाम है। १८३२, १८३३ और १८३९ के लेखों में कई गजाधरों और सिलावटों के नाम हैं। इस प्रकार यहां कई उल्लेखनीय सूत्रधारों का उल्लेख मिलता है।

58. उपरोक्त

सातवां अध्याय

इतिहास के क्षेत्र में प्रशस्तियों का बड़ा महत्त्व है। चित्तौड़ क्षेत्र से कई शिलालेख और ग्रन्थ प्रशस्तियां मिल चुकी हैं। जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है:—

(अ) शिलालेख

घोसुन्डी का शिलालेख

यह शिलालेख बड़ा महत्त्वपूर्ण है जो नगरी से सम्बन्धित है। इसे घोसूण्डी के लेख के नाम से भी कहा जाता है। इस लेख को सबसे पहले कविराजा श्यामलदास ने प्रकाशित कराया[1] था। इसी लेख को डी० आर० भंडारकर ने आर्कियोलोजीकल सर्वे आफ इण्डिया के मेमोरियर सं० ४ में भी प्रकाशित कराया था। इन्होंने इस शिलालेख का सांस्कृतिक महत्व बतलाते हुये इसका संशोधित पाठ भी प्रस्तुत किया। यह भंडारकर की ही मान्यता थी कि लेख की भाषा संस्कृत है और ल्युडर्स की उस मान्यता का खंडन किया कि इसकी भाषा स्थानीय भाषा है। ब्हुलर की मान्यता के अनुरूप ही इन्होंने इसका कालनिर्धारण ३५० ई० पू० माना है। काशी प्रसाद जायसवाल ने इसका संशोधित पाठ एपि ग्राफिआ इण्डिका के १६वें भाग में प्रकाशित कराया। इन्होंने इसका काल निर्धारण खारवेल के लेख से तुलना करते हुये २००–१५० ई० पू० माना[2] है।

इस शिलालेख के प्रकाशन के सम्बन्ध में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य इसके कई टुकड़ों को मिलाकर संशोधित पाठ प्रस्तुत करना

---

1. जरनल–एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल [LVI]–खंड १पृ०७४
2. ए०इ० भाग १६ पृ० २५। इंडियन पालियोग्राफी पृ० ३२

है। वस्सी और घोसुन्डी गांव की सीमा पर एक टुकड़ा मिला। इन टुकड़ों को मिलाकर श्री[3] गोरीशंकर हीराचन्द ओझा और हल्दार[4] ने संशोधित पाठ प्रस्तुत किया। श्री जोहन्सटन ने एक टिप्पणी भी प्रस्तुत की। इसके पश्चात् डी० आर० भण्डारकर ने सब टुकड़ों के पाठों को प्रस्तुत करते हुये एपिग्राफिआ इंडिका के भाग २२ में एक विस्तृत लेख लिखा। सन् १९३४ एवं १९३५ में श्री एन० पी० चक्रवर्ती को भी इस लेख का टुकड़ा[5] मिला। इस प्रकारलेख के अलग २ टुकड़ों को मिलाकर ३ पंक्तियों का पाठ विद्वानो ने प्रस्तुत किया है।

इस लेख का कई दृष्टियों से बड़ा महत्त्वपूर्णहै। इसमें राजा के लिये "भागवत" विशेषण लग रहा है। इससे प्रकट होता है कि वह परम वैष्णव था। इसके साथ साथ "भगद्भ्यां संकर्षण—वासुदेवाभ्यां [अनहिताभ्यां सर्वेश्वरा] भ्यां" शब्द भी प्रयुक्त हो रहा है। इससे संकर्षणवासुदेव की पूजा का उल्लेख और वैष्णव धर्म की प्रधानता ध्वनित होती है। सर्वेश्वर" विशेषण विशेषरूप से आकर्षक[6] है। लेख में प्रयुक्त राजा और उसके वंश के विषय में स्पष्ट नहीं हो सका है। श्री जोगेन्द्रनाथ घोष की मान्यता[7] है कि "सर्वतात" शब्द में "तात" शब्द पिता या आदर सूचक शब्द के रूप में हुआ माना जा सकता है। एवं "गजायन" शब्द ही राजा के गोत्र का सूचक हो सकता है जो संभवतः कण्व वंशी था। इसकी मान्यता का मुख्य आधार यह है कि शुंग कालीन "राजाओं का गोत्र भारद्वाज था एवं गजायन शब्द के साथ ध्वनि साम्यता नहीं होने से इसे शुंग वंशी राजा नहीं मान सकते हैं। कण्व वंशी होने की पुष्टि इस बात से होती है कि मत्स्य पुराण में इस

---

3. राजपुताना म्युजियम रिपोर्ट सन् १९२६–२७ पृ० २०४
4. इं० ए० का नवम्बर १९३२ एवं इंडियन हिस्टोरिकल क्वाटरली वष [ix] पृ० ७९५–९७
5. ए० इ० भाग २२ पृ० १९८–९९
6. राजस्थान भारती वर्ष ४ अंक ४ में श्री रतनचन्द्र अग्रवाल का लेख पृ० ४
7. इंडियन हिस्टोरिकिल क्वाटरली iv vol. 3 पृ० ७९५–९७

की शाखाओं में गदायन की एक शाखा है जो गजायन से ध्वनि में साम्यता रखती है इसमें राजा का नाम संभवतः प्राप्त शिला के अंश में नहीं है। केवल "स" और "न" या "ना" अक्षर ही उपलब्ध है। ये नाम किस राजा के हो सकते है। कण्ववंशी राजाओं में सर्व श्री वासुदेव, भूमि मित्र, नारायण और सुधर्मन नाम मिले हैं।" इनमें संभवतः यह राजा सुधर्मन ही रहा होगा जिसका नाम" पाराशरी पुत्रेण और सर्वतातेन के मध्य रहा होगा।" [8] श्री भंडार कर भी इस लेख में प्रयुक्त राजा को कण्ववंशी मानते हैं। श्री जोहन्स्टन ने लिखा हैं कि लेख में प्रयुक्त राजवंश समवतः ग्रीक, शुंग या आंध्र-वंशियों में से कोई होगा। [9]

यह राजा किस राज वंश से सम्बन्धित रहा होगा। यह निश्चित रूप से बतलाना कठिन है। कण्ववशी राजा मानने में सबसे बड़ी कठिनता इस बात की है कि यह निश्चित नहीं है कि माध्यमिका तक उनका राज्य फैला हुआ था। किन्तु यह निश्चित है कि यह कोई बड़ा राजवंश का रहा होगा क्योंकि इसने अश्वमेध यज्ञ किया था। लेख में स्पष्टतः "सर्वतातेन अश्वमेध याजिना" शब्द प्रयुक्त हो रहा है। उस समय राजस्थान में कई यज्ञ हुये थे। मध्यमिका से ही कुछ ही दूर स्थित नान्दशा से प्राप्त २८२ कृत (विक्रमी) संवत के लेख में भी षष्टिरात्र यज्ञ करने का उल्लेख मिलता[10] है। इस लेख में वर्णित राजवंश मालववंशी है। नगरी से बड़ी मात्रा में सिक्के मिले हैं जो अधिकांशतः शिविगण राज्य के[11] है। इनके काल निर्धारण के

---

8. ए० इं० अंक २१ पृ २०४–५

9. इं० ए० नवम्बर १९३२ का एक

10. ए० इं० भाग २७ में अल्तेकर द्वारा सम्पादित

11. वे सिक्के श्री कार्लायल ने १४० ई० पू० के माने हैं। श्री जायसवाल ने भी लिपि की दृष्टि से इनका काल निर्धारण यही किया है। अतः एवं उस समय शिवि राज्य होना अथवा शिवियों के यवनों के विरुद्ध संघर्ष सूचक मान सकते हैं।

सम्बन्ध में मतभेद रहा है। अतएव कण्ववंशी राजा मानने के स्थान पर स्थानीय शिवि या मालवगण का कोई राजा रहा हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

लेख में प्रयुक्त 'पूजा शिला प्राकारे नारायण वाटिका' शब्द महत्वपूर्ण है। शिला प्राकार को कुछ विद्वानों ने शाली ग्राम शिला से सम्बन्धित माना[12] है। श्री वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार नारायण वाटिका में दो चीजें वनवाई गई पहली पूजा का शिलापट्ट और उस स्थान को घेरने वाली ऊंची दीवार जिसे "प्राकार" कहा गया है। वौद्ध स्तूपों के चारों ओर जो स्थान वेदिका का था वही स्थान यहां प्राकार का था यही स्वरूप प्राचीनतम मंदिरों का था। अर्थात वीच में एक स्थडिल का मंच पर पूजन का शिला पटट रक्खा जाता था और उसके चारों ओर दीवार वनवाई[13] जाती थी। मेवाड़ में आज भी इस प्रकार के स्थान कई हैं जिन्हें "देवरें" कहते हैं। डा० भडार कर को खुदाई में हाथीवाड़ा के पश्चिमी भाग में एक छोटा सा ईंटों का चवुतरा भी मिला था। इस प्रकार यह अवशेष अपने ढंग का एक ही है।

नगरी के अन्य लेख

नगरी के अन्य लेखों में एक खंड लेख विशेष महत्वपूर्ण है। इसमें सबदया के निमित शब्द प्रयुक्त हुआ है जो संभवतः वौद्ध अथवा जैन धर्म से सम्बन्धित रहा होगा। लिपि उक्त घोसूंडी के लेख से मिलती है किन्तु पत्थर अधिक सलेटी रग का है। यह मूल फलक का टूटा हुआ दाहिना भाग है इसमें २ पंक्तियां है। पहली पंक्ति में "स (वा) भूतानां दयार्थं" और दूसरी पंक्ति में "ता" अक्षर है।[14] इसे ओझा जी ने उदयपुर संग्रहालय में भेंट किया था। इस लेख से प्रतीत होता है कि सब जीवों की दया के निमित संभवतः कोई स्थान वनाया गया था।

---

12. इंडियन हिस्टोरिकल क्वाटरली सितम्वर १९३३ पृ० ७९१

13. शोध पत्रिका वर्ष ४ अंक ३ पृ ४१–४२/राजस्थान भारती भाग ४ अंक ४ पृ ४

14. वरदा वर्ष ४ अङ्क ४ पृ० २–

दूसरा उल्लेखनीय शिलालेख वि० सं० ४८१ का है जो नगरी में उत्खनन कराते समय डी० आर० भंडार कर को[15] प्राप्त हुआ था। लेख ८ पंक्तियों में है एवं खंडित अंश है। यह शिला ११"×११॥" आकार में है। इसका सम्पादन श्री रतनचन्द्रजी अग्रवाल ने वरदा[17] में हाल ही में किया है। मूल लेख अजमेर के संग्रहालय में हैं। लिपि विज्ञान की दृष्टि से इ, ई, उ, ऊ व ऋ की मात्रायें पर्याप्त सुन्दर रूप से खुदी हुई है। कहीं-२ द्विगुणित भाव भी मिलता है। पंक्ति ४ में "पूर्व्वायां" शब्द पंक्ति ६ में "ज्र्जय" शब्द और पंक्ति ७ में "व्विष्णुचर" शब्द इसी के प्रतीक हैं। प्रथम और द्वितीय पंक्ति बिल्कुल खडित है। तीसरी पंक्ति में केवल कुछ ही भाग रहा है जिसमें "जयति भगवान्व्विष्णु" की स्तुति है। चौथी पंक्ति में संवत दिया है जो पहले अक्षरों में और पांचवी पंक्ति में अङ्कों में है। इसमें "कृत" और "मालव पूर्व्वायां" दोनों शब्द प्रयुक्त है। यह निसंदेह "मालव-गण स्थित्या" एवं 'मालव गणाम्नाते" शब्दों का पर्याय है। लेख में सत्यशूर, श्रीगंध और दास नामक ३ भाइयों का उल्लेख है जिनके पूर्वजों के नाम क्रमशः वासू, जय विष्णुचर और बुद्धि बोध थे। प्रस्तुत लेख में "भगवान्महापुरुषपादाभ्यां प्रासादः" शब्द विशेष उल्लेखनीय है। महापुरुष शब्द यहां विष्णु के लिये प्रयुक्त हुआ है। श्री रतनचन्द्र[18] अग्रवाल की मान्यता है कि पुरातत्व विभाग चित्तौड़ के कार्यालय में नगरी क्षेत्र की प्रतिमाओं के संग्रह में सुरक्षित एक चौकोर शिला पर विष्णु के चरणों का तक्षण उपलब्ध है। संभव है कि उक्त शिला नगरी के इस वैष्णव मंदिर में पूजा के निमित प्रयोग में आती रही होगी। लेख के अन्त में पुण्य वृद्धि की कामना की गई है।

---

15. आ० स० रि० वे० इ० वर्ष १९१५-१६ पृ० ५६

16. आर्कियोलोजिकल सर्वेआफ इंडिया के मेमोयर सं० ४ (कलकत्ता सन् १९२०) पृ०

17. वरदा वर्ष ५ अङ्क २ पृ० २-३

18. उक्त

छोटी सादड़ी का शिलालेख (वि० सं० ५४७)

छोटी सादड़ी चित्तौड़ जिले में स्थित है और यहां से भ्रमर माता के मंदिर से एक १७ पंक्तियों का लेख मिला है। यह लेख श्री गौरीशंकर[19] हीराचन्द ओझा द्वारा सबसे पहले ढूंढा गया था। लेख पूर्ण रूप से संस्कृत[20] में है। प्रथम १६ पंक्तियां पद्यों में हैं शेष १७ वीं पंक्ति का भाग गद्य में है। प्रथम २ पद्यों में देवी की आराधना की गई है। इसके बाद गौर वंश के क्षत्रियों का वर्णन है जो महायानी गौत्र के थे। लेख मे "मानवमणिकुलोद्भववंशगौराः "क्षात्रे पदे" उल्लेखनीय है। इस वंश में पुण्य शोम नामक राजा हुआ। इसका पुत्र राज्यवर्द्धन हुआ जिसका ५ वें श्लोक में विस्तार से वर्णन किया हुआ है। इसके बाद इसके राष्ट्र और यशोगुप्त का वर्णन किया हुआ है। इसका उत्तराधिकारी महाराज नामक शासक हुआ। लेख में "श्री महाराज गौरः" पद है जिसे ओझा जी ने यशोगुप्त के लिये ही माना है। लेख में देवी के मंदिर बनाने का उल्लेख है। प्रशस्ति कार ब्रह्म सोम था जो मित्र सोम का पुत्र था। लेख की अन्तिम पंक्ति "लिखिता चेयम् पूर्व्वा" अपराजितेन राजपुत्र गोभट्ट पादानुध्यात" शब्द हैजो स्पष्ट नहीं है। मंदसौर से ही एक लेख[21] और मिला है। इसमें १० पंक्तियां है। इसमें भी उक्त छोटी सादड़ी वाले राजवंश का उल्लेख है। ७ वीं और ८ वी पंक्ति में "दत्त्वा दानं द्विजेभ्यः दिवंगत" शब्द होने से किसी की मृत्यु के पश्चात् स्मृति स्वरूप किसी वस्तु के बनाने का उल्लेख है। ये राज आदित्यवर्द्धन के सामन्त रहे[22] प्रतीत होते हैं। दूसरी और तीसरी पंक्ति में 'नरव्याघ्र नरेन्द्रादित्यवर्द्धने" पाठ

---

19. ओझा निबन्ध संग्रह भाग १ पृ० ८७–९०

20. ए० इ० भाग ३० अक्टू १९५३ पृ० १२२

21. उक्त पृ० १३०

22. इंडियन हिस्टोरिकल क्वाटरली सं० XXXIII सं० ४ पृ० ३१६। यहां आदित्यवर्द्धन को यशोवर्द्धन का दादा और द्रव्यवर्द्धन का पिता वर्णित किया है।

है। यह राजा औलिकर वंश का था। इनका प्रभाव मेवाड़ के चित्तौड़ क्षेत्र तक था।

चित्तौड़ के २ खंड लेख

चित्तौड़क्षेत्र से प्राप्त दो २ खंड लेख हाल ही में प्रकाशित हुये हैं। एक खंड में ३ पंक्तियां है और दूसरे में ८ पंक्तियां।[23] प्रस्तुत लेख में वराह के पौत्र और विष्णुदत्त के पुत्र का उल्लेख किया है जो चित्तौड़ और दशपुर का राजस्थानीय था। लेख में स्पष्टतः "दशपुर मध्यमाम्-च" पाठ दिया गया है। प्रस्तुत लेख में राजस्थानीय भूषण' वर्णित है। वष्णिुदतके लिये" वणिजाम् श्रेष्ठो विष्णुदत्तो "पाठ हैं जिससे ज्ञात होता है कि वह वणिक जाति था। दूसरे लेख की ८वीं पंक्ति में" मनोहरस्वामि गृहोत्तर स्याम् "पाठ है। यह विष्णु मंदिर का प्रतीक है। मन्दसौर के वि० सं० ५८९ के लेख में अभयदत्त को पश्चिमी प्रान्तों का प्रान्तीय शासक वर्णित किया है। संभवतः चित्तौड़ के इन लेखों में जिस राज-स्थानीय का उल्लेख है वह भी इसी अभयदत्त के परिवार का ही रहा प्रतीत होता है। डा० दशरथ शर्मा की मान्यता है कि वराह के २ पुत्र विष्णु दत्त और रविकीर्ति थे। पहले विष्णदत्त का पुत्र राजस्थानीय बना। इसके बाद रविकीर्त्ति का पुत्र अभयदत्त।[24] इस प्रकार इस लेख से यह सिद्ध होता है कि उस समय तक यह क्षेत्र मन्दसौर के शासकों के आधीन ही था।

वि० सं० ७७० का शंकरघट्टा का लेख

चित्तौड़ से वि० सं० ७७० के २ शिलालेख मिले हैं। पहला शंकर घट्टा से प्राप्त लेख और दूसरा कर्नल टॉड को प्राप्त लेख। शंकर घट्टा से प्राप्त शिलालेख को हाल ही में श्री रतनचन्द्र अग्रवाल ने राजस्थान

---

23. ए० इ० भाग ३४ पृ० ५५–'५७

24. रिसर्चर भाग ५–६ पृ० ९। महाराणा कुम्भा पृ० ६ एवं १९०

भारती में प्रकाशित[25] कराया है। प्रस्तुत लेख में १७ पंक्तियां हैं। लेख का आकार ६×१२" है और दाहिनी ओर से शिला का भाग खंडित है। लेख की पहली पंक्ति में स्पष्टतः "ॐ नमो शिवाय" लिखा है। अतएव यह शैव लेख है। अग्रवाल जी "ग्रह पति" शब्द से सूर्य वंश का अर्थ लेते हैं। डा० दशरथ शर्मा ने इसका खंडन[26] किया है और वे इसे स्पष्टतः शैव लेख मानते हैं। ५ वीं पंक्ति में "राजा मान भंग" का वर्णन आता है। लेख में आगे चलकर इस राजा द्वारा गगनचुम्बी प्रासाद, वापी प्रपा आदि का निर्माण करना लिखा है। श्री अग्रवाल जी चित्तौड़ के सूर्य मंदिर का निर्माता इसे मानते[27] हैं। कला की दृष्टि से यह मंदिर ८ वीं शदी का है। अतएव अग्रवाल जी के मत की पुष्टि होती है। इस की मूल शिला इस समय अज्ञात है।

वि. सं. ७७० का मान मोरी का लेख

दूसरा लेख कर्नल टॉड को मिला था जो अब उपलब्ध[28] नहीं है। इसके लिये उनके द्वारा दिये गये अनुवाद पर ही आश्रित रहना पड़ता है। यह लेख चित्तौड़ में "मानसरोवर" झील पर लग रहा था। इस लेख में ४ राजाओं का उल्लेख मिलता है यथा-महेश्वर भीम, भोज और मान। महेश्वर को शत्रुओं का विनाश करने वाला एवं श्री सम्पन्न वर्णित किया गया है। भीम को अवन्तिपुरी का राजा कहा गया है। उसके लिये यह भी कहा जाता है कि वह कारागृह में पड़े शत्रुओं की उन चन्द्रवदनियों के हृदय में भी बसता था जिनके ओष्ठों पर अब भी उनके पतियों के दन्तक्षत बने हुये थे। भोज ने युद्ध में हस्ती का मस्तक विदीर्ण किया था। उसका पुत्र मान था जिसने संसार की क्षणभंगुरता

---

25. राजस्थान भारती वर्ष ६ अङ्क २ पृ० ३०-३१
26. डा० दशरथ शर्मा का चित्तौड़ के शंकर घट्टा के लेख से सम्वन्धित राजस्थान भारती में प्रकाशित लेख
27. राजस्थान भारती वर्ष ६ अङ्क २ पृ० ३०-३१
28. एनल्स एण्ड एंक्टीक्विटीज भाग १ पृ० ६२५-६२६

का अनुभव कर मानसरोवर झील का निर्माण कराया था।[29] ये मौर्य राजा थे। जब तक मूल शिला नहीं मिले तब तक इस सम्बन्ध में कुछ टिप्पणी नहीं की जा सकती है।

जैन मन्दिर का शक सं० १०२८ का नरवर्मा का अप्रकाशित शिला लेख

यह लेख मूल रूप से चित्तौड़ में खोदा गया था किन्तु अब वहां उपलब्ध नहीं है। इसकी एक प्रतिलिपि अहमदाबाद में भारतीय संस्कृति मंदिर में संग्रहित है। मुझको इसकी एक प्रतिलिपि श्री अगरचंद जी नाहटा ने भेजी है अतएव मैं उनका कृतज्ञ हूं। इस प्रशस्ति में ७८ श्लोक हैं। शुरू के ५ श्लोकों में ऋषभ वीर पार्श्व और सरस्वती की वन्दना की गई है। श्लोक सं ६ में महाराजा भोज का वर्णन आता हैं जो श्लोक सं० १४ तक दिया हुआ है। इसमें भोज को व्याकरण इतिहास आदि कई शास्त्रों का ज्ञाता वर्णित किया है। श्लोक १३ में कई देशों को जीतने का उल्लेख किया है। श्लोक १५ में उदयादित्य का वर्णन आता है। इसकी तुलना "महावराह" से की गई है। यह निश्चित रूप से सत्य है कि जिस समय भोज की मृत्यु हुई थी मालवा की स्थिति बड़ी ही विषम होगई थी। गुजरात के राजा भीम और चेदी के राजा कर्ण ने उस पर आक्रमण कर उसके राज्य का बहुत सा भाग जीत लिया था। उसका उत्तराधिकारी जयसिंह इतना प्रबल नहीं था कि वह इनका दृढ़ता पूर्वक मुकाबला कर सके। सोमेश्वर आहमल्ल चालुक्य ने संभवतः उसको सहायता दी थी किन्तु वह उसका राज्य निष्कटक नहीं कर सका था। उदयादित्य ने संभवतः शत्रुओं से मालवे को मुक्त कराया था। जिस प्रकार आदिवराह ने पृथ्वी का उद्धार किया था उसी प्रकार राजा उदयादित्य ने मालवा का उद्धार किया था। इसका उत्तराधिकारी नरवर्मा हुआ था जिसके राजत्व काल में

---

29. वरदा वर्ष १० अंक १ में प्रकाशित मेरा लेख 'मानमोरी" एवं जरनल राजस्थान हिस्टोरिकल सोसाइटी के वर्ष ३ अंक ४ पृ. २९ में प्रकाशित मेरा लेख मान मोरी द्रष्टव्य है।

प्रस्तुत लेख खोदा गया था। इसका कीर्त्तिगान श्लोक सं० २१ से २८ में किया गया है। इस से नरवर्मा के चित्तौड़ पर अधिकार करना भी साबित होता है।

जैसा कि ऊपर वर्णित हैं इसमें ७८ श्लोक होने से इसका नाम "अष्ट सप्ततिका" भी रखा गया है। इसको जिन वल्लभ सूरि द्वारा विरचित किया हुआ वर्णित किया जाता है। अपभ्रंश काव्य त्रयी की भूमिका में पृ० ६ पर इस प्रशस्ति का श्लोक सं० ५२ का उदाहरण प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार अन्यत्र इसे "जिन वल्लभ सूरिकृति विज्ञायते:" लिखा है। प्रस्तुत प्रशस्ति में चित्तौड़ में महावीर जिनालय के निर्माण और प्रतिष्ठा का उल्लेख है। इसका सविस्तार उल्लेख गणधर सार्द्ध शतक की वृहद वृत्ति में दिया गया है। इसकी गाथा ८५ से जिनवल्लभ सूरिका वर्णन आता है। १२१वीं गाथा में "चित्रकूट" शब्द स्पष्ट रूप से आता है। जिनदत्त सूरि ने चर्चरी में चित्तौड़ में इस प्रशस्ति को उत्कीर्ण कराने का उल्लेख किया है।[30]

प्रस्तुत लेख में कई श्रेष्ठियों का उल्लेख है जिन्होंने उक्त महावीर प्रसाद के निर्माण में योगदान किया था। इनके नामों में श्रेष्ठि साधारण, वीरक, रासल धंधक, मानदेव, प्रहलक आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अपभ्रंश काव्यत्रयी की भूमिका में ये नाम इस प्रकार दिये हैं--"तत; सिद्धान्तवचनानि श्रुत्वा तदनुसारेण क्रियामपि दृष्ट्वा साधारण, सट्टक-सुमति-पल्हक-वीरक-मानदेव-धन्धक-सेमिलक-वीर देवाभि : श्रावकै: समाधिना श्रीजिनवल्लभगणि वाचनाचार्या गुरुत्वेन प्रतिपेदिरे....."। इन श्रेष्ठियों में कुछ धर्कट जाति के थे और कुछ खंडेलवाल। इस प्रशस्ति के श्लोक ६० में स्पष्ट रूप से सेमिकल के

30. इय बहुविह उस्सत्तइं जेण निसेहियं इ विहि जिणहरि सुपसत्थिहि लिहि निदंसियइं। जुगपहाणु जिणवल्लहु सो किं न मन्नियइ ? सुगुरु जासु सन्नाण सुनिउणिहि वन्निइय ॥२८॥ इति निशिस्नानादीनि बहुविधात्सूत्राणि येन निषेधतानि विधिजिनगृहे चित्रकूटनरवरनागपुरमरुपु-रादि सम्बन्धिनि सुप्रशस्तिषु लिखित्वा च निर्दशितानि।"

साथ "धर्कटवर" विशेषण लगा हुआ है। संभवतः रासल धंधक वीर-देव वीरक आदि भी इसी जाति के थे। इसी जाति में उत्पन्न हरिषेण प्रसिद्ध दिगम्बर विद्वान् चित्तौड़ में ही हुआ था। खडेलवालों में मान-देव, प्रल्हक पद्म प्रभु आदि श्रेष्ठि थे। प्रशस्ति के श्लोक सं० ६२ में इसका स्पष्टतः उल्लेख है। खरतरगच्छ पट्टावली में दिये गये वर्णन के अनुसार एक बार चित्तौड़ में 'षष्ट कल्याण' महोत्सव मनाने का आयोजन आसोज वुदि १३ को किया गया था। उसदिन सब श्रावक लोग चैत्य में भगवान की पूजा के लिये जाने लगे। चैत्य में स्थित आर्यिका ने पूछा आज क्या विशेष प्रयोजन है? तब लोगों ने कहा कि वीर गर्भापहार षष्ट कल्याण महोत्सव के मनाने निमित आये हैं। वह कहने लगी कि इसके पूर्व ऐसा आयोजन पहले कभी नहीं हुआ था। तब वह द्वार पर आ गई और कहने लगी कि अगर चैत्य में प्रवेश कर लिया तो मुझे मरी हुई पावोगे। श्री जिन वल्लभ सूरि द्वारा स्वस्थान जाकर यह आयोजन कर लिया गया और शीघ्र ही चित्तौड़ में दो विधि चैत्यों के निर्माण की योजना बनाई गई। साधारण श्रेष्ठि जो राजमान्य था की सहायता से इस कार्य में अधिक सहायता मिली। इस श्रेष्ठि को जिनवल्लभ सूरि ने अनागत ज्ञान देकर अपनी सम्पति में से लाखों रुपया सदकार्यो के निमित लगाना स्वीकार करा लिया था। इस प्रकार महावीर चैत्य के निर्माण की पृष्ठ भूमि रही थी।[31]

प्रस्तुत प्रशस्ति के श्लोक स० ७२ के अनुसार नर वर्मा के द्वारा दो पारुत्थ मुद्रा देने का उल्लेख किया है। इसका उल्लेख खरतरगच्छ पट्टावली में भी किया हुआ है।

इस प्रशस्ति के कुछ श्लोक जिनपति सूरि ने संघ पट्टक की टीका में भी उद्धृत[32] किये हैं। यथा श्लोक सं० ६६ और ६७ उक्त टीका में ३३ वें श्लोक की व्याख्या में प्रयुक्त किये हैं। इसी प्रकार कुछ पद

---

31. युग प्रधान गुर्वावली पृ. १०/ अपभ्रंश काव्यत्रयी की भूमिका पृ० २०/२१
32. यह वर्णन श्री अगरचन्दजी नाहटा द्वारा प्राप्त प्रति लिपि में दी गई टिप्पणियों के आधार पर लिखा है।

चर्चरी टीका में भी प्रयुक्त हुये है। श्लोक सं० ५३ चर्चरी की व्याख्या जो जिनपालोपाध्याय द्वारा लिखी गई थी के ७वें पद की व्याख्या में एवं ७५ वां श्लोक उक्त के २८ वें पद की व्याख्या में प्रयुक्त हुआ है। श्री जिनवल्लभ सूरि ने संघ पट्टक में जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है उसी के सार रूप कुछ श्लोक इसमें भी दिये गये हैं यथा श्लोक ७५ में रात्रि में स्त्रियों के प्रवेश आदि का निषेध किया गया है [33]

कुमारपाल के २ शिलालेख

कुमारपाल सोलंकी के समय के चित्तौड़ से २ लेख मिले है। एक लेख समिद्धेश्वर के मन्दिर पर लगरहा[34] है। इस लेख में २८ पंक्तियां है। बीच में एक यंत्र भी बना है जो १७वीं पंक्ति से २४वीं पंक्ति के मध्य खुदा हुआ हैं। लेख का प्रारम्भ ॐनमो सर्वज्ञ से होता है। बाद में शिव की स्तुति की गई है। यह स्तुति शर्व, मृड और समिद्धेश्वर के नाम से की गई हैं। यह वर्णन चौथी पंक्ति तक चलता है। चौथी पंक्ति में ही सरस्वती की वन्दना की गई है। इसके बाद कवियों की रचनाओं की यशोगाथा की गई है। इसके बाद चालुक्यवंश की प्रशंसा की गई है। इसके बाद मूलराज का वर्णन आता है। इसकी परम्परागत प्रशंसा मात्र की गई है। ७वीं पंक्ति में मूलराज के वंश में हुए अनेक राजाओं का उल्लेख "तस्यान्वये महति भूपतिषु क्रमेण यातेषु भूरिषु सुपर्व्वपतेर्न्निवासं। प्रोर्ण्णुत्य वीद्ध्रयशसा ककुमां मुखानि श्री सिद्धराजनृपतिःप्र थितो बभूव"

---

33. संघ पट्टक ४० श्लोकों की एक लघुकृति है। इसे श्रावक जेठालाल दल सुख भाई ने प्रकाशित कराया है। इस पर जिन पति सूरि की टीका के अतिरिक्त वि सं० १३३३ में लिखी लक्ष्मीसेन की टीका साधु हर्षराजोपाध्याय की लघु वृत्ति और वि सं० १६१९ में लिखी साधु कीर्त्तिगरिण द्वारा विरचित अवचूरि भी उपलब्ध हैं। अपभ्रंश काव्यत्रयी की भूमिका पृ २९ का फुटनोट ५)
34. ए० इ० भा २/इ० ए० भा २ पृ० ५२१/पश्चिमी भारत की यात्रा पृ० ५०७ से ५१०/जैन लेख संग्रह भाग ३ पृ० ८२ से ८४ में प्रकाशित।

कह कर किया गया है। सिद्धराज के बाद कुमारपाल के शासक बनने का उल्लेख पंक्ति ८ और ६ में किया गया है। पंक्ति १० और ११ में इसके द्वारा शांकम्भरी को हराने का उल्लेख है। यह उल्लेख महत्वपूर्णहै। इससे यह निश्चित है कि विम० १२०७ के पूर्व कुमारपाल की सपादलक्ष की विजय[35] हुई थी। शाकम्भरी क्षेत्र से चौहानों को हराकर कुमारपाल वापस चित्तौड़ से होकर बागड़ के मार्ग से गुजरात लौटा प्रतीत होता है। उसने मालवा में बढ़ते हुए बल्लाल की सेना से मुकाबला करने के लिए यह मार्ग लिया हो। यही श्रेयस्कर प्रतीत होता है ताकि शत्रु की गति विधि की जानकारी प्राप्त की जासके। कुमारपाल शालिपुरा ग्राम से चित्रकूट की शोभा देखने को गया। चित्तौड़ दुर्ग का सुन्दर वर्णन पंक्ति १३ से १६ में किया गया है। इसमें यहां के राजप्रसाद झील तालाब ढाल और जगलों का वर्णन है। प्रशास्तिकार स्वय चित्तौड़ का रहने वाला था। अतएव उसने स्वाभिमान पूर्वक यह वर्णन किया है। इस प्रकार की शोभा देखते हुये कुमारपाल उत्तर की ओर स्थित समिद्धेश्वर के मंदिर की ओर आया। सभवतः कुमारपाल घूमता हुआ पद्मिनी महल वाले भाग से आया था। उसने यहां मदिर में भगवान शिव की पूजा की और एक ग्राम भेंट में दिया। इस ग्राम का नाम तो नष्ट हो गया है। इसके अतिरिक्त मंदिर के लिए दडनाथ सज्जन ने जो कुमार जाति[36] का था मंदिर के लिये एक घाणक तैल दीपक के लिए (?) देने की व्यवस्था की थी। प्रशास्ति का रचियता दिगम्बर विद्वान् रामकीर्त्ति था जो जय कीर्त्ति का शिष्य था। सोमतिलक सूरि द्वारा विरचित कुमारपाल देवचरित, पुरातनाचार्य द्वारा सग्रहित "कुमारपाल देव चरितम्" आदि में कुमारपाल का चित्तौड़ में शांति चैत्य में श्वेत भिक्षु रामचंद्र के पास जाने का उल्लेख किया है[37]। ऐसा प्रतीत

---

35 अरर्ली चौहान डाइनेस्टिज पृ० ५०–५१

36. तदा चालुक्य राज्ञा कृतज्ञ चक्रवर्तिना आलिगकुलालय सप्त
शती ग्राममिताविचित्राचित्रकूटपट्टिका ददे।.......॥
कुमारपाल चरित्र सग्रह पृ० ५३

37. मध्ये दशपुरे स्थित्वा चित्रकूट नगं गत।
शांति चैत्ये श्वेतभिक्षो रामचन्द्रस्य सन्निधौ ॥४३॥

होता हैं कि इस शिलालेख का राम कीर्त्ति निसंदेह दिगम्बर विद्वान् ही था। सज्जन और वोसरि का उल्लेख कुमारपाल चरित में मिलता है जिसके अनुसार ये लोग उज्जैन से चित्तौड़ गये थे।[38] संवेग रंग शाला की एक प्रशस्ति के अनुसार विसं० १२०७ में वोसरि बड़ोदा में दंड नायक था।[39] अतएव उसकी ऐतिहासिकता सिद्ध होती है। इस प्रकार यह लेख कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

कुमारपाल का दूसरा लेख उदयपुर संग्रहालय में हैं और अप्रकाशित है। इसकी लेख सख्या २६/४१६ है। लेख में २७ पक्तिया हैं। लेख पूरा बहुत ही घिस गया है। लेख का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।[40] लेख में सबसे पहले वराह की स्तुति की गई है। इसके पश्चात् चालुक्य वंश की उत्पत्ति का उल्लेख है। इसमें उल्लेखित हैं कि प्रारम्भ में देवता राक्षसों से तंग आकर ब्रह्मा के पास रक्षार्थ गये। तब उसने एक वीर पुरुष को उत्पन्न किया जिसका नाम चालुक्य था। इस वंश के राजाओं का वंश क्रम भी दिया है यथा मूलराज, चामुन्डराज वल्लभराज दुर्लभराज, भीमदेव, कर्ण और जयसिंह। विसं० १२०७ वाले लेख में मूलराज के बाद राजाओं के नाम नहीं दिये है। इस लेख में कुमारपाल के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में भी उल्लेखनीय वर्णन मिलता हैं। इसमें लिखा है कि जयसिंह सोमनाथ देवालय तक पुत्रोत्पत्ति के लिए पैदल गया। इस पर भगवान ने प्रसन्न होकर उसको यह वरदान दिया कि पूर्वकाल में क्षेमराज हुआ था। उसका पुत्र देव प्रसाद हुआ जिसका पुत्र त्रिभुवनपाल और उसका पुत्र कुमारपाल हुआ। यही तेरा उत्तर।"

---

38. ततो वोसरि मोपल्लदेवी सज्जन संयुक्तः।
    विधाय मङ्गलं न पश्यमुज्जयिन्या विनिर्ययो।
    मध्येकृत्य दशपुरं चित्रकूटपुरे ततः।
    शांति चैत्ये गुरो रामचन्द्रस्य वसतो गत ॥६२॥
    सोमतिलक सूरि द्वारा विचित "कुमारपाल देव चरितम्"

39. जैसलमेर भन्डार के ताड़ पत्रीय ग्रंथ भन्डार सूचिपत्र पृ ६१

40. राजपुताना म्युजियम रिपोर्ट अजमेर सन् १६३१ में वर्णित

धिकारी होगा। कालान्तर में कुमारपाल उसका उत्तराधिकारी हुआ। कुमारपाल प्रबन्ध आदि में इस प्रकार का वर्णन नही मिलता है। इसके विपरीत कुमारपाल का एक लम्बे समय तक वाहर रहना प्रतीत होता है। प्रस्तुत लेख में इसके बाद कुमारपाल द्वारा जांगलदेश और शाकम्भरी जीतनेका उल्लेख है। इन विजयों को करता हुआ वह चित्तौड़ आया। कुमारपाल ने सोमेश्वर को जो मधुसुदन का पुत्र था चित्तौड़ में नियुक्त किया। जिसने वराह का मंदिर बनाया और मंदिर की पूजा के निमित दूनाड़ा ग्राम दिया। तिथि अस्पष्ट है। संगवतः १२०७ के बाद ही होना चाहिए।

घाघसा का शिलालेख

चित्तौड़ के निकट स्थित घाससे की बावड़ी का शिलालेख महारावल तेजसिंह का एक महत्वपूर्ण शिलालेख है। यह अव उदयपुर संग्रहालय में है। इसे श्री परमेश्वर सोलंकी ने वरदा वर्ष ५ अङ्क ३ में प्रकाशित कराया था। इसमें महारावल पद्मसिंह, जैत्रसिंह और तेजसिंह का वर्णन है। शिलालेख में २८ पंक्तियां और ३३ श्लोक हैं। प्रथम ३ श्लोक में मंगलाचरण है। श्लोक ४ में पद्मसिंह का वर्णन है। श्लोक ५ से और ६ में जैत्रसिंह की वर्णन है।[41] इसके द्वारा मालवा गुजरात तुरुष्क और शाकम्भरी के शासकों को हराने का वर्णन है। इसके पुत्र तेजसिंह का वर्णन श्लोक ७ में है। इसके आगे डींडू वंश के श्रेष्ठि का वर्णन है। डींडू जाति संभवतः माहेश्वरी जाति हैं। इस जाति के गाल्हू माल्हू केशव बलभद्र रत्न सोढल आदि का वर्णन है। रत्ना ने बावड़ी बनवाई थी। श्लोक सं० २४ में एक महत्वपूर्ण सूचना दी गई है कि रत्ना ने चित्तौड़ में "कुंभेश्वर मन्दिर" में शिवलिंग स्थापित कराया। यह मन्दिर कौनसा है? सम्भवतः यह आज भग्न हो चुका है। दुर्ग के शिवालयों में इस नाम का कोई शिवालय विद्यमान नहीं है। प्रशस्तिकार चैत्रागच्छ के आचार्य रत्नप्रभ सूरि है जो अपने समय के एक

41. प्रोसिडिंग्ज आफ हिस्टोरिकल कांग्रेस १९५१ में श्री एम० एल० माथुर का लेख। चीरवा का लेख श्लोक श्लोक ६। ओझा उ० इ० पृ० १५६।

उल्लेखनीय आचार्य थे ।[42] जिनका वर्णन किया जा चुका है । प्रसिद्ध चीरवा की प्रशस्ति भी इनके द्वारा ही विरचित की गई है। घाघासा का शिलालेख वि० सं० १३२२ कार्तिक वदि १ रविवार का है। शिल्पिका का नाम केलिसिंह दिया गया है।

तेजसिंह के अन्य लेख

तेजसिंह के चित्तौड़ से प्राप्त लेखों में वि० सं० १३२३ जेठ वुदि ३० एवं १३२४ का शिलालेख विशेष उल्लेखनीय है। १३२३ के लेख में महामात्य समुधर का नाम अङ्कित है। यह समधर वही है जिसका उल्लेख श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र चूर्णि की प्रशस्ति में दिया गया है।[43] इस लेख में प्रशस्तिकार ने केवल राजा ही विरुद अङ्कित किया है। इससे प्रतीत होता है कि प्रशस्तिकार ने राजाओं के विशेष प्रयुक्त होने वाले विरुद इस लेख में प्रयुक्त नहीं किये गये हैं। दूसरा लेख जो वि० सं० १३२४ का है गम्भीरी नदी के ८वीं पुल पर लगरहा हैं। यह केवल २ पंक्तियों में ही खुदा हुआ है ! इस लेख को प्रारम्भ में कवि-राजा श्यामलदास ने प्रकाशित कराया था। इसका संशोधित शुद्ध पाठ श्री रतनचन्द्र जी अग्रवाल ने वरदा वर्ष ६ अङ्क १ में प्रकाशित कराया है। प्रस्तुत लेख में चैत्रागच्छ के रत्न प्रभ सूरि के उपदेश से कांगा नामक श्रेष्ठि द्वारा कुछ दान देने का उल्लेख है। यह तेजसिंह का अब तक ज्ञात लेखों में अन्तिम लेख है।[44]

वि. सं. १३३१ का रसिया की छत्री का लेख

यह शिलालेख चित्तौड़ में रसिया की छत्री पर लग रहा है। यह काले पत्थर की शिला पर खुदा हुआ है। मूल लेख २ शिलाओं पर था

---

42. चीरवा की प्रशस्ति श्लोक ४५ से ४७। वि० सं० १३२४ का चित्तौड़ का लेख पंक्ति २
43. १३०६ वि० में "तल्हण" मुख्य आमात्य था वि० सं० १३१६ के तामपत्र में "रामेश्वर" मन्त्री वर्णित हैं जिसे सीमंधर भी पढ़ सकते हैं। वि० सं० १३१६ से १३२३ वि० तक समुद्धर मुख्य अमात्य था।
44. उपरोक्त प्राप्त १६०

किन्तु एक शिला नष्ट हो गई हैं। पुरातत्व विभाग चित्तौड़ के संग्रहालय में रखे लेखों के टुकड़ों में एक चोकोर टुकड़ा भी संग्रहित है। संभवतः यह इसकी दूसरी शिला का अंश प्रतीत होता है। लेख का उपलब्ध अंश ६१ श्लोकों में है और पीछे कुछ गद्य भाग है। शुरू के ४ श्लोकों में शंकर एवं गणेश की स्तुति की गई है। ५वें श्लोक में गुहिल वंश की प्रशंसा की गई है। इसमें "गुहिलवंशमपारशाखं" कहा गया है। श्लोक ६ और ७ में मेवाड़ देश का सुन्दर वर्णन है। "व्योम श्री मुकुरैरिव प्रतिपदं स्फीतो जगत्यंगनासौन्दर्यनिकेतनं जनपदः श्री मेदपाटाभिधः वर्णन निसंदेह कवि का अपनी मातृभूमि के प्रति अनुराग [45] को प्रकट करता है। इसी कवि द्वारा ही विरचित आबू की प्रशस्ति के श्लोक ७ में मेदपाट वर्णन है वह इतना सुन्दर नहीं बन पड़ा है। इसके बाद श्लोक ८ और ९ में नागदा का उल्लेख है। श्लोक सं० १० से १२ मे बाप्पा रावल का उल्लेख है। इसमें हारीत राशि द्वारा वर प्राप्त करना आदि उल्लेखित है। श्लोक सं० १३ में गुहिल को बाप्पा का पुत्र बतला दिया है। यह गलत है। यह भ्रम इतना अधिक था कि कई प्रशस्तियों में इस प्रकार की गलतियां मिलती है।[46] गुहिल के बाद शील और काल भोज का उल्लेख है। इसके बाद श्लोक सं. २४ में मम्मट का वर्णन हैं। इस प्रकार क्रम में कई राजाओं के नाम छोड़ दिये हैं। प्रतीत होता है कि प्रशस्तिकार वेदशर्मा इतिहास का विद्वान् नहीं था। श्लोक सं० २५ में मम्मट द्वारा मालवे के राजा को हराना वर्णित है। श्लोक सं० ३० में उसके पुत्र का नाम सिंह दिया हुआ

---

45. तीर्थे मंदिरकंदरैरिव मनोल्लट्टयैः पुरैः स्वश्रियोलावण्यैरिव विस्तृतैः सितमणिस्वच्छैः सरोभिश्च यः। व्योम श्रीमुकुरैरिव प्रतिपदं स्फीतो जगत्यंगना सौंदर्यैक निकेतन जनपदः श्री मेदपाटाभिध ॥६॥

46. राणकपुर के वि०सं० १४९६ के लेख में जिसमें वंशावली अपेक्षाकृत सही है यह भूल विद्यमान है किन्तु ऊनवास के विसं० १०१६ के और एकलिंग जी के विसं० १०२८ के लेख में यह भूल नहीं है।

है। इसके वाद श्लोक सं॰ ३३ में महायक का उल्लेख है। इसके वाद श्लोक सं. ३६ में खुमाण का उल्लेख है। श्लोक सं ३६ में अल्लट का उल्लेख है। यह वर्णन श्लोक ४५ तक चलता है। ४५वां श्लोक लग-भग पढ़ा नहीं जाता है। श्लोक सं. ४६ में शक्ति कुमार का उल्लेख है। श्लोक सं. ४८ में इसकी तुलना अर्जुन कर्ण आदि से की गई है श्लोक सं. ४६ में अम्वा प्रसाद का उल्लेख है। इसकी तुलना अगस्त से की गई हैं जिसने शत्रु रुपी समुद्र को पीकर उन्हे नष्टकर दिया था। श्लोक सं ५० इसकी तुलना परशुराम, वृहस्पति कामदेवशिवि आदि से की गई है। श्लोक सं. ५२ में शुचिवर्मा का वर्णन किया गया है। श्लोक सं. ५६ में इसके उत्तराधिकारी नर वर्मा का उल्लेख है। इसके वाद का वर्णन दूसरी प्रशस्ति में होना वर्णित किया है। "अनन्तर वश वर्णनद्वितीयप्रशस्तौ वेदितव्यं" कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि इसके आगे एक शिला और थी जिसमें भी लगभग ६० श्लोक रहे होंगे। आबू की प्रशस्ति में भी इसी प्रकार समरसिंह तक का उल्लेख किया गया है। इस प्रशस्ति की आबू की प्रशस्ति से तुलना करने पर कई महत्वपूर्ण समानता मिलती है। फिर भी आवू की प्रशस्ति में कई वातें अधिक स्पष्टता से कही गई हैं। यथा वाप्पा रावल को विप्र-कुल का वतलाकर उसे आगे चलकर यह भी वतलाया है कि उसने ब्रह्मत्व से क्षत्रित्व ग्रहण किया। इनमें अधिकांशतः ऐतिहासिक तथ्यों को लिखने के स्थान पर केवल उपमायें और परम्परागत वर्णन ही प्रस्तुत किया गया है। वेदशर्मा प्रशस्तिकार निश्चित रूप अच्छा कवि रहा प्रतीत होता है। तुलना करते समय उसने कई वार पेड़ों से समानता की है और कई वार पौराणिक पुरूषों से। कुछ अच्छे रोचक चित्र भी प्रस्तुत किये है। श्लोक सं० ५४ में हारे हुए शत्रुओं की रानियों का जो वर्णन प्रस्तुत किया है वह वड़ा सुन्दर वन[47] पड़ा है। इनमेंराणियों का

47. पत्रै: पत्रावलीनां समजनि रचनाधातुभिः पादरागो धूलीभिः कंदराणां विपदमलयजालेपलक्ष्मीरुदारा ॥ गुंजाभिहरि वल्लीयदरिमृगदृशाइत्यरण्येपि भूषा सौन्दर्यं नैव नष्टं शबर सहचरी निर्विशेषं गतानां ॥५४॥ चित्तौड़ की प्रशस्ति।

स्वाभाविक श्रृंगार जंगल में प्राप्त पत्तो, धूल मोंरो की गुंजार आदि से करना वर्णित किया गया है। वेद शर्मा का परिचय आबू की प्रशस्ति के श्लोक सं० ६० में किया गया है। इसके पिता का नाम प्रियपट्ट था और नागर जाति का था। यह चित्रकूट का रहने वाला था।[48] समरसिंह ने आबू की प्रशस्ति की रचना इससे ही कराई थी अतएव प्रतीत होता है कि यह राजा का प्रिय पात्र था। इसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

वि० सं० १३३४ के दो शिलालेख

ये दोनों शिलालेख चित्तौड़ में बणवीर की दीवार में लग रहे हैं। ये किसी देवकुलिका के ऊपर थे जिन्हें अल्लाउद्दीन या बहादुरशाह के आक्रमण के समय गिरा दिया गया था और बणवीर ने अन्य पत्थरों के ढेर के साथ इन्हें भी दीवार में चुनवा दिया था। इन लेखों में शांति नाथ चैत्य में जिसे रतनसिंह श्रावक ने बनाया था समधा के पुत्र महणसिंह की भार्या साहिणी की पुत्री कुमारिला ,श्राविका ने पिता मह पूना और माता मह ठाड़ा के श्रेयार्थ देवकुलिकाये बनाई। खरतरगच्छ पट्टावली से यह वर्णन मिलता हैं जिसका विशद वर्णन अन्यत्र किया जा[49] चुका है।

वि० सं० १३३५ का लेख

विसं० १३३५ की एक शिला चित्तौड़ के महलों में गड़ी हुई मिली थी जिसे ओझा जी ने उदयपुर संग्रालह में लाकर के जमा कराई थी। यह छपने पर लगी हुई थी और बीच में जिन प्रतिमा उत्कीर्ण है। यह उदयपुर संग्रहालय में क्रमांक १४ पर अंकित है। प्रस्तुत लेख का वर्णन जैन धर्म के वर्णन में ऊपर किया जा चुका[50] हैं। इसमें तेजासिंह

---

48. "......प्रियपट्टुकतनयो वेदशर्माप्रशस्तोः। तेनैपापि व्यधायि स्फुटगुणविशदानागरज्ञातिभाजा विप्रेणाशेपविद्वज्जन हृदयहरा चित्रकूटस्यितेन ॥६०॥ आबू की प्रशस्ति।

49. उपरोक्त पृष्ठ १५६

50 उपरोक्त पृष्ठ १५६ एवं १६०

की राणी जयतल्ल देवी द्वारा श्याम पार्श्वनाथ का मंदिर एवं भर्तृपुरीयगच्छ के आचार्य प्रद्युम्न सूरि के लिये मठ के लिये भूमि दान एवं इसकी व्यवस्था के लिये कर देने की भी व्यवस्था की। यह कर सज्जनपुर, चित्तौड़ आहड और खोहर की मंडपिकाओं से देने को था। इस लेख से प्रकट होता है कि भर्तृपुरीय गच्छ के साधुओं का उस समय बडा प्रभाव था।

लेख ६ पंक्तियों का है। पंक्ति ५ में जो मठ[51] भूमि की सीमायें दी है वे उल्लेखनीय है। इसमें पूर्व और दक्षिण में साढल और सोमनाथ के मकान और पश्चिम में "चतुर्विंशति जिनालय राज्ञी वसहिका" है। यह मंदिर वहीं है जिसे जयतल देवी ने बनवाया था। पंक्ति संख्या ८ में कुछ साक्षियां वर्णित है। सबसे उल्लेखनीय एक लिंग मंदिर के मठाधीश शिवराशि है। इसमें "एक लिंग—शिव सेवन-तत्पर श्रीहारीतराशिवंशसंभूतमहेश्वरराशितच्छिष्यश्रीशिवराशि" वर्णित है। चीरवा के विसं० १३३० के लेख में इसी शिवराशि का[52] उल्लेख है। एक और उल्लेखनीय बात प्रथम पंक्ति में है यह यह है कि गुहिल वंशियों को क्षत्रिय कहा गया है। लगभग इसी काल के चित्तौड़ के ही एक अन्य लेख में उन्हें ब्राह्मण कहा गया है। अतएव यह लेख कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इसमें प्रथम पंक्ति में वर्णित सिंह" शब्द स्पष्ट नहीं हो सका है। संभवतः तेजसिंह के किसी पूर्वज के लिये प्रयुक्त हुआ हो।[53] भर्तृपुरीय गच्छ का एक अन्य लेख और मिला है जिसका वर्णन आगे किया जावेगा।

---

51. जरनल बंगाल ब्रांच रायल एशियाटिक सोसाइटी भाग ५५ (१) पृ० ४८। वरदा वर्ष ६ अंक १ पृ० ६२

52. पाशुपत तपस्वीपतिः श्री शिवराशिः राशि गुणराशिः। आराधितैक लिंगोधिष्ठिता त्रास्ति निष्ठावान् ॥४४॥ चीरवा का लेख।

53. इंडियन हिस्टोरिकल क्वाटरली भाग xxvi सं० ४ पृ० २७५ में सिंह को मेवाड़ के राजा सिंह से सम्बन्धित माना है।

वि० सं० १३४४ का सुरह लेख

प्रस्तुत लेख भी उदयपुर संग्रहालय में संग्रहित[54] है। इसमें ८ पंक्तियां है। लेख में "चित्रांग तडाग" शब्द अंकित है। यह "चित्रांग मोरी" जिसने चित्तौड़ दुर्ग को सामरिक महत्व का बनाया था से सम्बन्धित हैं। छठी पंक्ति में 'तलार" का वर्णन है जो स्थानीय अधिकारी था। इसी प्रकार ७वीं पंक्ति कायस्थ जाति के सांगा द्वारा कुछ दान देने का उल्लेख है। इसके आगे "पंच" शब्द विशेष आकर्षक है। इसका यह अर्थ लिया जा सकता है कि यह पंचकुल का सदस्य था।

वि०सं० १३५८ का शिलालेख

प्रस्तुत शिलालेख आज कल उदयपुर संग्रहालय में है और चित्तौड़ से ही प्राप्त हुआ था। इस शिला का दाहिनी तरफ का कुछ भाग खण्डित हो गया है। लेख में कुल मिलाकर १८ इन्च ऊंचा व १६ इन्च चौड़ा भाग घेरे हुए है। अक्षर घिस गये हैं।[55] लेख मे महारावल समरसिंह का उल्लेख है। उसके शासन काल में प्रतिहारवंशी महारावत पाता के पुत्र धारसिंह द्वारा "भोजस्वामीदेवजगती" में कुछ निर्माण कराने का उल्लेख है। यह मन्दिर समिद्धेश्वर मन्दिर है।

चित्तौड क्षेत्र से प्राप्त फारसी के लेख (हि.सं. ७०४ से ७२५)

चित्तौड़ से अल्लाउद्दीन खिलजी के अधिकार के पश्चात् कुछ फारसी के कई शिलालेख भी मिले हैं। सबसे पहला हिसं० ७०४ का है जो एक किसी नागरिक के मकान की दीवाल से प्राप्त किया गया था।[56] इसमें "ममरिज् आल्प खानी" का नाम है। हिसं ७०५ और ७०९ के लेखों का उल्लेख राजपुताना मुजियम रिपोर्ट अजमेर सन् १९२२ में किया गया है। हिसं० ७०९ के लेख में सुल्तान की स्तुति की गई है। इसमें उसे वुल मुज़फ्फर मुहम्मद सिकन्दर सानी को

54. वरदा वर्ष ९ अंक १ में श्री रत्नचंद्रजी अग्रवाल द्वारा सम्पादित।
55. उपरोक्त
56. इण्डियन आर्कियोलोजी ए रिव्यु सन् ५७-५८।

दुनियां की वादशाहत, उस समय का सूर्य ईश्वर की छाया और संसार का रक्षक कहकर आशीर्वाद दिया है कि जव तक कावा दुनियां के लिए किवला रहे तव तक उसका राज्य मनुष्य मात्र पर वना रहे। तीसरा एक खण्डित लेख है जिसमें अल्लाउद्दीन का नाम का अंश और उसकी उपाधि दी गई है एव चौथे लेख में जामा मस्जिद वनाने का उल्लेख है।[57]

इसके अतिरिक्त मलिक असदुद्दीन के समय के २ प्रसिद्ध लेख मिले हैं।[58] पहला लेख उदयपुर संग्रहालय में है। इसमें संवत का अन्श टूटा हुआ है। इसमें मालिक असदुद्दीन का नाम है। यह सुल्तान का नायव वारवर था। यद्यपि ऐतिहासिक ग्रन्थों और समसामयिक तवारिखों में इस सम्वन्ध में कुछ भी लिखा नहीं मिलता है किन्तु प्रस्तुत दोनों लेखों से उसकी चित्तौड़ में लगने की पुष्टि होती है। इस लेख में ३ पंक्तियों में ३ शेर खुदे हैं। परन्तु प्रारम्भ का चौथा हिस्सा टूट जाने के कारण पूरा अर्थ ठीक नहीं वैठता है। वचे हुए अंश का अर्थ इस प्रकार है:—"तुगलकशाह वादशाह सुलैमान के समान मुल्क का स्वामी ताज और तख्त का मालिक, दुनियां में प्रकाशित करने वाले सूर्य और ईश्वर की छाया के समान, वादशाहों में सवसे बड़ा और अपने वक्त का एक ही है।............वादशाह का फरमान उसकी राय से सुशोभित रहे। असदुद्दीन अर्सलां दाताओं का दाता तथा देश की रक्षा करने वाला है और उससे न्याय और इन्साफ की नींव दृढ़ है" श्री जेड० ए० देसाई० प्रस्तुत लेखों के आधार पर यह अर्थ लेते हैं कि चित्तौड़ पर दिल्ली क वादशाहों का सीधा अधिकार था एवं अल्लाउद्दीन का उसके पुत्र खिज्रखां को वापस वुलाकर मालदेव को

---

57. हि० सं० ७०५ वाले लेख को हि० सं० ७२५ का पढ़ा गया है।

58. एपिग्राफिआ इन्डिका—अरेवियन एण्ड परेसियन सप्लेमेंट वर्ष ५५-५६ पृ० ६८ इण्डियन आर्कियोलोजी—ए-रिव्यु वर्ष ५५-५६ पृ० ३२। ओझा उ० इ० पृ० १९८

दुर्ग देना असंगत प्रतीत होता है[59] किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि तुगलक बादशाहों के अधिकार करने के कुछ समय पूर्व तक चित्तौड़ पर मालदेव का ही अधिकार था एवं तुगलक शासकों ने इस महत्वपूर्ण दुर्ग को अपने सीधे अधिकार में रखने के लिए एवं स्थानीय राजपूतों से अत्यधिक दबाव के कारण मालदेव को मेड़ता में लगा दिया जहां से वि० सं० १३७४ की उसकी एक ग्रन्थ प्रशस्ति भी देखने को मिली है। कुछ समय पश्चात् वापस हमीर के निरन्तर आक्रमण करने के कारण मालदेव को वापस चित्तौड़ में स्थापित कर दिया प्रतीत होता है। इसकी पुष्टि करेड़ा जैन मन्दिर के एक लेख से होती हैं जिसमें वि० सं० १३९२ में चित्तौड़ पर मालदेव के वंशजों का अधिकार होना वर्णित है।[60]

यह एक वृहत शिला जो ४, फीट ३ इन्च और २ फीट १ इन्च है मे दूसरा लेख पांच खण्डों में खुदा हुआ है। ओझाजी ने इसे गलती से अल्लाउद्दीन से सम्बन्धित माना है किन्तु श्री जेड० ए० देसाई के अनुसार यह लेख मोहम्मद शाह तुगलक से सम्बन्धित है और हि.सं. ७२५ का है। इसमें उसके राजत्वकाल में यहां एक सराय असदुद्दीन ने बनाई थी। इसमें नगर का नाम "खिज्राबाद" दिया है जो चित्तौड़ का परिवर्तित नाम रहा था।

गंगरार और सैंगवा के दिगम्बर जैन लेख

ये लेख दिगम्बर जैन साधुओं की निषेधिकाओं के हैं। गंगरार में शिव मंदिर के स्तम्भों पर २ लेख खुदे हुये हैं। जिन्हें मैंने वीरवाणी जयपुर में सम्पादित करके प्रकाशित कराये हैं। ये दोनों लेख वि सं० १३७५ और १३७६ के हैं। सैंगवा ग्राम का लेख वि सं० १३८९ का है। इन लेखों के मूल पाठ आगे दिये जा रहे हैं। इनसे प्रकट होता है कि उस समय दिगम्बर जैन सम्प्रदाय चित्तौड़ के आसपास अच्छी स्थिति

---

59. एपिग्राफिया इण्डिका–अरेबियन परेसियनसप्लेमेंट वर्ष ५५–५६ पृ० ६७–६८

60. उपरोक्त पृ० ४३ से ४४

में था।[61]

वि. सं. १४८५ की समिद्धेश्वर की प्रशस्ति

मूल लेख समिद्धेश्वर के मंदिर में सभा मण्डप में काले पत्थर की एक शिला पर खुदा हुआ है। बीच में एक यंत्र बना हुआ जो पंक्ति सं० २१ से २६ तक है। लेख में कुल ५३ पंक्तियां[62] हैं। इस लेख में कुल ७५ श्लोक हैं। इसके अतिरिक्त ४ श्लोक प्रशस्तिकार आदि के सम्बन्ध में अलग से वर्णित किये गये हैं। प्रारम्भ के ४ श्लोकों में मंगलाचरण है। इनमें गणपति, पार्वती और अच्युत की स्तुति की गई है। श्लोक सं० ५ में गुहिल वंश का वर्णन किया गया है। कहा गया है कि इस वंश के शासक धर्म की स्थापना में एवं स्व कर्म में बड़े सिद्ध हस्त हैं। इसके बाद श्लोक सं० ७ में अरिसिंह का वर्णन आता है। इसके पुत्र हमीर का वर्णन श्लोक सं० १३ में किया गया है। इसकी तुलना अच्युत कामदेव ब्रह्मा और शंकर से की गई है। श्लोक सं० १५ में उसे कर्ण से भी अधिक दानी बतलाया है। परम्परागत वर्णन श्लोक सं० २३ तक दिया गया है। इसके पश्चात् श्लोक स० २४ में क्षेत्रसिंह का वर्णन किया गया है। इसके शासन काल में मेवाड़ में जो समृद्धि और शांति अल्लाउद्दीन के आक्रमण के कारण कुछ समय के लिये नष्ट होगई थी वापस प्राप्त हो गई थी। श्लोक सं ३० में इसी भाव का सुन्दर वर्णन किया है। श्लोक स० ३३ तक यह वर्णन चलता है। इसके पश्चात् श्लोक स० ३४ में महाराणा लाखा का वर्णन मिलता है। श्लोक सं० ३५ में राम आदि कई पौराणिक वीरों से उसकी तुलना की गई है। यह वर्णन श्लोक सं० ४३ तक चलता है। श्लोक सं० ४४ में मोकल का वर्णन आता है। श्लोक सं० ४६ में अतिशयोक्ति पूर्वक वर्णन प्रस्तुत किया गया है जिसमें मोकल को कई देश यहां तक चीन और काश्मीर तक के राजाओं को जीतने का उल्लेख किया है। श्लोक सं० ५१ में नागौर के सुल्तान फिरोज को हराने का

---

61. उपरोक्त पृ० १२३ एवं १५५|शोधपत्रिका वर्ष ८ अंक १ पृ० २३-२४ एवं १६ अंक ३-४

62. ए०इ० भाग २ पृ० ४०८। वी०वि० भाग १ का शेष संग्रह।

वर्णन[63] मिलता है। श्लोक सं० ५२ में मोकल द्वारा तुलादान देने का उल्लेख है। श्लोक सं० ५४ में इसका सुन्दर वर्णन है। श्लोक सं० ५६ में तुला की राशि को प्रयुक्त करना वर्णित है। श्लोक सं० ६१ में द्वारकाधीश के मंदिर बनाने का वर्णन मिलता है। श्लोक सं ६५ से चित्तौड़ का वर्णन हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रशस्तिकार के समक्ष वि० सं० १२०७ के शिलालेख का वर्णन रहा होगा।[64] उक्त शिलालेख के अनुरूप ही इसमें भी चित्तौड का वर्णन है।

प्रस्तुत प्रशस्ति में ऐतिहासिक तथ्य नहीं के बराबर हैं। इतनी बड़ी प्रशस्ति में हमीर, खेता, लाखा और मोकल का जो विस्तार में वर्णन किया है वह केवल अतिशयोक्ति पूर्वक है और परम्परागत शैली के अनुरूप ही प्रतीत होता है। इसमें इन महाराणाओं का अन्य राजाओं से जो सम्बन्ध रहे हैं उनका कोई उल्लेख नहीं है।

प्रशस्तिकार विष्णुभट्ट का पुत्र एकनाथ था। यह दशपुर जाति का[65] था। मंदिर का जीर्णोद्धार वीजल सूत्रधार के वंशज वीसल आदि ने किया था। जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।[66]

---

63. शृंगी ऋषि का लेख श्लोक सं० १४। कु० प्र० श्लोक सं० २२१। फारसी तवारीखों में मोकल के हारने का वर्णन है [बेले लोकल डाइनेस्टिज आफ गुजरात पृ० १४८ टि० ४ वीर विनोद में २ युद्ध माने हैं जिनमें से एक में मोकल की हार और एक में मोकल की जीत वर्णित है [वी० वि० भाग १ पृ. ३१४–१५] ओझा जी ने एक ही युद्ध माना है (उ० इ० पृ० २७३) महाराणा कुम्भा पृ० ५६ फुटनोट ४ एवं ३३८ का फुटनोट १८।
64. कुमारपाल के वि० सं० १२०७ के शिलालेख की पंक्ति सं० १३ से २० तक के वर्णन से इसकी तुलना करें तो शैली में काफी समानता दिखाई देती है।
65. 'श्रीमद्दशपुरज्ञातिभट्टविष्णोस्तदुभवः। नाम्नैक एक नाथ–" वर्णित है। उपरोक्त पृ० १२६)
66 सम्मेलन पत्रिका वर्ष ४४ अङ्क २–३ में श्री रतनचंद्र अग्रवाल का लेख। उपरोक्त पृ०.........

महाराणा मोकल का एक खंडित अप्रकाशित लेख

प्रस्तुत लेख चित्तौड़ से प्राप्त हुआ था जो अब उदयपुर संग्रहालय में हैं। यह किसी विस्तृत शिलाखंड का भाग रहा[67] होगा। इस समय ३६ पंक्तियां विद्यमान है। नीचे का बांयी तरफ का भाग टूटा हुआ है। बीच में भी घिसा हुआ है। पढ़ने योग्य अंश का वर्णन इस प्रकार है। इसमें श्लोक सं० २ में समिद्धेश्वर की स्तुति है। श्लोक सं० ७ में गुहिलवंशी किसी शासक की स्तुति है जिसे "गुहिलवंश सर्वस्व" कहा गया है। श्लोक सं० ३९ से हमीर का वर्णन शुरू होता है। ४३ वें श्लोक में उसके द्वारा बाहुबल से पृथ्वी को जीतना लिखा है। ४८ वें श्लोक में खेता का वर्णन है। श्लोक ५४ से लाखा का वर्णन शुरू होता है। इसमें श्लोक सं० ५७ में हाडाओं के साथ उसके संघर्ष का वर्णन है। श्लोक सं० ६१ में मोकल का वर्णन है। वर्णन के क्रम को देखते हुये इसे महाराणा कुम्भा के समय का भी मान सकते हैं। इसमें प्रारम्भ में मेवाड़ के कई प्राचीन तीर्थों का भी वर्णन आया है। ओझाजी की भी मान्यता थी कि इसमें ७० से भी अधिक श्लोक रहे होंगे। इसमें गुहिल को "सप्ताश्ववंशे" कहा गया है।

वि० सं० १४९५ की प्रशस्ति

इस प्रशस्ति का सम्पादन श्री देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर ने किया था। इसका प्रारम्भ श्री सर्वज्ञ की स्तुति से होता है। इसके पश्चात् सरस्वती की स्तुति की गई है। जैनों की परम्परा के अनुसार क्रमशः वृषभदेव, शांतिनाथ, नेमीनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर नामक पांच तीर्थङ्करों की स्तुतियां इसके बाद की गई हैं।[68] सातवें श्लोक में मेदपाट देश का उल्लेख किया गया है जहां ऊंचे-ऊंचे प्रासादों और कीर्तिस्तम्भ शोभित हो रहे थे। इसके पश्चात् वंश वर्णन शुरू होता है। इसमें हमीर से ही वंश परम्परा दी गई है। हमीर को तुरुष्कों

---

67. राजपूताना म्युजियम रिपोर्ट वर्ष १९२९
68. मेदपाट देश का ऐसा ही सुन्दर वर्णन कुंभलगढ़ प्रशस्ति के श्लोक ५८ से ६९ और शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार प्रबन्ध आदि में किया गया है।

को जीतने वाला कहा है। यह प्रसंग महत्वपूर्ण है। इसके पूर्व किसी भी प्रशस्ति में हमीर को तुरुष्कों को जीतने वाला वर्णित नहीं किया गया है [69] मोकल के सपादलक्ष विजय का उल्लेख किया गया है [70] जो वहां के सुल्तान फिरोज के साथ युद्धों का वर्णन है। कवित्वमय यह वर्णन उल्लेखनीय है यथा—"यो दुद्ध्ृर्षं सपादलक्षसुमुखी-नक्षस्तटेषुस्फुटायालिखन्न यनोदविम्बुमिपतः कीर्तिप्रशस्तां निजाम्" आदि २। श्लोक सं० १९ में कुंभा के लिये अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन दिया हुआ [71]। श्लोक सं २१ में चित्तौड़ का वर्णन है जिसे यहां "श्रीमेदपाटधरणीतरुणीललाटपट्टे स्फुटं मुकुटतामुपटीकते" शब्द दिया गया है।

इसके पश्चात् मन्दिर के निर्माता साधु गुणराज की वंशावली दी हुई है। चित्तौड़ में श्रेष्ठि वीसल रहता था इसका पौत्र आसपाल कर्णावती गया था और वहां व्यापार करता था। इसके चार पुत्र थे। संगम, गोडा, समरा और चाचा। चाचा ने अहमदावाद में जैन मन्दिर बनवाया था इसके दो पत्नियां थी लादी और मुक्तादे। लादी से तीन पुत्र हुए थे और मुक्तादे से चार। गुणराज मुक्तादे का पुत्र था। अन्य भाई अम्बक लीम्बक और जयता थे। इनकी पत्नियों के नाम क्रमशः गंगा, माणिक्यदे, हेमादे और जसमादेवी था। श्लोक ३८–३९ से पता चलता था कि गुणराज गुजरात के बादशाह की सभा में सदस्य था। इसने वि० १४५७ और १४६२ में शत्रुञ्जय और रेवंतक गिरि की यात्राएं की थी। अम्बक साधु हो गया था। श्लोक ४७ में वर्णित है कि सं० १४६८ में जब भीषण दुर्भिक्ष पड़ा उस समय इस परिवार ने असंख्य धन खर्च करके लोगों की बड़ी सहायता की थी। वि०सं० १४७७ में आचार्य सोमसुन्दर सूरि के नेतृत्व में शत्रुञ्जय की यात्रा के निमित एक संघ निकाला था। इसमें बादशाह से फरमान लिया। इस

69. ओझा–उ०इ० भाग १ पृ० २३४–२३५। महाराणा कुंभा पृ० ३३८

70. उपरोक्त पृ. २३५ का फुटनोट ६४

71. एकलिंग माहात्म्य का श्लोक सं० ८५ भी यही है।

संघ का सुन्दर वर्णन सोमसौभाग्य काव्य में भी दिया हुआ है। इसके ८वें सर्ग के श्लोक सं० १७ से ६२ में इसका वर्णन मिलता है। इसमें संघ यात्रा का रोचक वर्णन है। किस प्रकार रास्ते में आने वाले गांवों के श्रेष्ठि वर्ग वहां के स्थानीय शासक चाहे मुसलमान हो अथवा हिन्दू (पुरे पुरे श्रीमलिकाश्चराणकाः सोपायनाः संमुखमागताः) सब उस संघ का सत्कार करते थे[72]।

श्लोक ५६ में जिन सुन्दर सूरि को सूरि पद पर स्थापित करने के उत्सव का वर्णन है। श्लोक ६६ से ७२ में गुणराज के ५ पुत्रों के नामों का उल्लेख है १. गज २. महिराज ३. वाल्हा ४. कालु और ५. ईश्वर। वाल्हा को महाराणा मोकल वहुत सम्मान करता था और व्यवसाय हेतु वह चित्तौड़ में रहता था। कालु किसी उच्च राजकीय पद पर था। श्लोक ८६ में महाराणा मोकल की आज्ञा से चित्तौड़ में मन्दिर वनवाने का उल्लेख है। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा आचार्य सोम-सुन्दर सूरि ने की थी।[73] श्लोक सं० ६३–६५ में जैन कीर्तिस्तम्भ का उल्लेख हैं और इसे श्वेताम्बर श्रेष्ठि कुमार पाल द्वारा वनाने का उल्लेख है जो निश्चित रूप से गलत है। उक्त श्वेताम्बर श्रेष्ठि ने इसका संभवतः जीर्णोद्धार कराया होगा।

श्लोक १०२ में "लक्षस्य सूत्रद्रक्षस्य नन्दनो नारदः प्रशस्तिमिमाम् उत्कीर्णवान्" होने से निश्चित है कि इसको शिला पर उत्कीर्ण कराके लगाई गई थी। लक्ष सूत्रधार के दो पुत्र थे नारद और जइता[74]।

---

72. राणकपुर के लेख की पंक्ति ३२ से ३४ में इस यात्रा का वर्णन है इस प्रकार है—"श्री मदहम्मदसुरत्राणदत्तफुरमाण-साधुश्रीगुणराजसंघपतिसाहचर्य कृताश्चर्य कारिदेवालयाडम्वर-पुरः सरश्रीशत्रुञ्चयवितीर्थयात्रेण...."।
73. सोमसौभाग्य काव्य का ६वां सर्ग श्लोक ७१ से ७२। गुरुगुण रत्नाकर काव्य श्लोक ३६–६०। महाराणा कुंभा पृ० ३३६
74. "श्रीविश्वकर्माप्रसादात सकलवास्तुश स्त्रविशारदसूत्रधार· लाषासुतजइता श्रीकीर्तिस्तम्भकादित्तं—(मूल लेख से)

कीर्तिस्तम्भ के वि० सं० १५१५ चैत्रसुदि ७ के एक लेख में जइता के पिता का नाम भी लाखा दिया है। इस लेख को सुवर्ण अक्षरों से संवेगयति ने लिखा था। यह विद्वान देवकुलपाटका था और कई ग्रंथ प्रशस्तियों में इसका नाम मिलता है। प्रशस्ति के रचियता चारित्ररत्न-गणि नामक जैन साधु थे।

मुझे अप्रैल और मई १९६८ में कई दिनों तक चित्तौड़ में रहने का सौभाग्य मिला था। उस समय श्री फतहचंद महात्मा अधिकारी सतवीसदेवरी मंदिर की सहायता से इस शिलालेख का एक खंड मुझे वहां प्राप्त हुआ था। सबसे पहले श्रेष्ठि गुणराज, और चारित्ररत्नगणि शब्दों पर दृष्टि पड़ी। यह लेख कुंभा कालीन होने के कारण मेरा अध्ययन किया हुआ था। अतएव इसकी प्राप्ति से मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

लेख काले पत्थर पर खोदा हुआ है। इस शिलाखंड की मोटाई ४ अंगुल है कुल चोड़ाई २८ अंगुल है। समवतः शिला की चोड़ाई इससे दुगनी से अधिक रही होगी। इस खड की लम्बाई वांयी तरफ १७ अंगुल और दाहिनी तरफ १४ अंगुल है। अक्षरों की साइज ½ इंच है। उपलब्ध अंश में कुल १३ पक्तियां हैं। ऊपर की २ पंक्तियां अस्पष्ट है। शेष अंश स्पष्ट खुदा है। मुद्रित प्रशस्ति के क्रम से इस खंड के उत्कीर्ण लेख का क्रम भिन्न रहा है। पंक्ति १ का श्लोक मुद्रित पाठ में नहीं है। पक्ति २ का भाग श्लोक सं० ९१ का अंश है। पंक्ति ३ में दिया गया श्लोक मुद्रित प्रशस्ति का श्लोक ८९ है। इसमें इसे ९२ नम्बर दिया गया है। इस शिला में जो ९३वां श्लोक दिया है वह मुद्रित प्रशस्ति में नही है। इसके आगे "शोभा वंध्य...." आदि से शुरू होने वाला श्लोक मुद्रित प्रशस्ति का सं० ९२ नम्बर का है जबकि इस शिला खंड में इसे ९४ नम्बर दिया है। मुद्रित प्रशस्ति के श्लोक सं० ९३, एवं ९४ इस शिला में नहीं है। ये लेख जैन कीर्तिस्तम्भ से सम्बन्धित है। इस अंश को मैंने वरदा वर्ष ११ अंक २ में प्रकाशित कराया है।[75]

---

75. वर्दा वर्ष ११ अंक २ में प्रकाशित

वि० सं० १५०५ का भंडारी वेला का लेख

चित्तौड़ में शृंगार चंवरी के मन्दिर के स्तम्भ पर एक लघु लेख उत्कीर्ण है जिसमें भंडारी वेला द्वारा शांतिनाथ के उक्त मन्दिर के निर्माण का उल्लेख है। इस मन्दिर का उ लेख अलग से ऊपर किया जा चुका है। मैंने महाराणा कुम्भा पुस्तक में यह माना था कि शिला-लेख में भंडारी वेला के लिए लिखा है कि यह महाराणा कुम्भा के राज्य में रत्नों के भंडार का अधिकारी था।[76] किन्तु यह गलत प्रतीत होता है। वस्तुतः यहां मूल पाठ में "पुत्र रत्न" शब्द है जिसका अर्थ पुत्र से ही लेना चाहिये। इसके पिता का नाम कोला था। इसके पुत्रों के नाम मूंधराज, कुरपाल आदि थे। यह लेख महत्वपूर्ण है। इसमें प्रतिष्ठा करने वाले जिनसागर सूरि के शिष्य जिनसुन्दर सूरि का नाम है। इसमें जिनराज सूरि, जिनचंद्रन सूरि जिनसागर और जिनसुन्दर के नाम हैं। प० उदयशील ने संभवतः इस निर्माण कार्य कराने में मुख्यरूप से कार्य किया था।[77]

वि० सं० १५०५ के मूर्तियों के लेख

वि० सं० १५०५ के कुम्भश्याम के मन्दिर में कुछ मूर्तियों के लेख है। इनमें वि० सं० १५०५ माघसुदि १५ बुधवार को महाराणा कुम्भा द्वारा कुछ मूर्तियां स्थापित करना वर्णित है। इन मूर्तियों के नाम तुलसीमाधव, रामलक्ष्मण, कृष्णरुक्मिणी रोही दामोदर आदि हैं। जैसाकि ऊपर वर्णित किया जा चुका है यह मन्दिर मूलरूप से ९ वीं शताब्दी का है और इसके ऊपर का भाग ही महाराणा कुम्भा द्वारा

---

76. महाराणा कुम्भा पृ० ३४४।

77. "संवत् १५०५ वर्ष राणा श्रीलाखा पुत्रराणाश्रीमोकल नन्दनराणाश्रीकुम्भकर्णकोशव्यापारिणा साह कोल्हा पुत्र-रत्न भण्डारी श्री वेलाकेनभार्याविल्हणदेविजयमान भार्या रतनादे पुत्र भं० मूंधराज भ० कुरपालादि युतेन....." (मूल लेख से) पं० उदय शील का नाम नागदा के मन्दिरों में खुदा हुआ है। देलवाड़ा में लिखे कई ग्रन्थों की प्रशास्तियों में उनका नाम आता है।

निर्मित हुआ है।[78]

सूत्रधार जइता परिवार के लेख

सूत्रधार जइता परिवार के कई लेख कीर्तिस्तम्भ पर[79] खुदे हैं। कीर्तिस्तम्भ के अतिरिक्त महलों का कुछ भाग व कुम्भ स्वामी मन्दिर भी इसी परिवार ने बनाया था। इनका सबसे पहला लेख वि० सं० १४९६ फाल्गुण सुदि ५ का है। इसमें महाराणा कुम्भा के शासनकाल में सूत्रधार जइता और उसके पुत्र नापा, पुंजा द्वारा समिद्धेश्वर को प्रणाम करना लिखा है। वि० सं० १५०७ के एक लघुलेख में जो तीन पंक्तियों में दीवार पर अस्पष्ट सा खुदा है सूत्रधार जइता का ही उल्लेख है। वि० सं० १५१० के दो लेख ओर हैं। एक ज्येष्ठ सुदि १३ और दूसरा श्रावण सुदि ११ का। पहले लेख में केवल "सूत्रधार पामा" का ही उल्लेख है। दूसरे में सूत्रधार जइता के पुत्र नापा भूमी चूथी आदि का भी नाम है। वि० सं० १५१५ का पाँच पंक्तियों का लेख भी मिला है। इसमें जइता के पिता का नाम लापा दिया है। इसे "सकलवास्तुशास्त्रविशारद" कहा गया है। वि० सं० १४९५ के महावीर जैन मन्दिर की प्रशस्ति में सूत्रधार नारद को लाखा का पुत्र कहा गया है। जइता और नारद दोनों भाई रहे प्रतीत होते हैं। दो बिना तिथि वाले लेख भी मिले हैं। इनमें महाराणा मोकल के पुत्र कुम्भा के आश्रित सूत्रधार जइता आदि का उल्लेख है।

वि० सं० १५१४ का गोमुख का लेख

वि० सं० १५१४ का गोमुख में भर्त्तृपुरीय गच्छ का एक शिलालेख रक्खा हुआ है। इसमें ५ पंक्तियां हैं। प्रथम पंक्ति में संवत् ५१४ ही पढ़ा जाता है जो लिपि की दृष्टि से १५ वीं शताब्दी का होने के कारण वि० स० १५१४ का माना जा सकता है। लेख में भर्त्तृपुरीय

78. "स्वास्ति सवत् १५०५ वर्षे मार्गसिर सुदि १५ बुधदिने देव श्रीकृष्ण रुक्मिणीसहितप्रतिमां महाराजाधिराजश्रीकुम्भकर्णेन कारापितं...." (मूल लेख से)

78. महाराणा कुम्भा पृ० २४७।

गच्छ के आदिनाथ मन्दिर के दक्षिणाभिमुख में पादुका लगाई जाने का उल्लेख है। लेख में "श्री भर्त्तृपुरीय गच्छे श्री चूड़ामणि भर्त्तृपुर-महादुर्गे श्रीगुहिलपुत्र विहार" शब्द है। इस पंक्ति का अर्थ स्पष्ट नहीं हो सका है। कई विद्वान् इसे भरतपुर या भटेवर से सम्बन्धित मानते हैं। वि० सं० १३३५ के लेख में भी यही अंश अङ्कित है। उसमें उक्त "गुहिलपुत्र विहार" के अतिरिक्त श्यामपार्श्वनाथ वसही एवं भर्त्तृपुरीय गच्छीय चतुर्विंशति जिनालय आदि का वर्णन है। प्रस्तुत लेख में उक्त "गुहिलपुत्र विहार" का वर्णन ही होना चाहिये जो उस गच्छ का प्रधानस्थल रहा होगा जो भटेवर में ही होगा।

कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति

यह प्रशस्ति पहले कई शिलाओं पर खुदी हुई थी केवल अब दो ही विद्यमान हैं। पहली और अन्त के पूर्व की यहां विद्यमान हैं। पहली शिला में १ से २८ श्लोक विद्यमान हैं एवं एक अन्य शिला में १६२ से १८७ तक विद्यमान हैं [80]। वि० स० १७३५ में जब प्रशस्ति संग्रह बनाया गया था तब यहां अधिक शिलायें विद्यमान थी [81]। इनमें श्लोक एक से लेकर दो तक शिव और गणेश की स्तुति की गई है। बाप्पा के परिवार का वर्णन श्लोक तीन से शुरू होता है। श्लोक ४ से ८ में बाप्पा का वर्णन है जिसे शिव का भक्त और अत्यन्त बलशाली वर्णित किया है। इस परिवार में हमीर उत्पन्न हुआ। यह विषमघाटि पंचानन कहलाता था। [82]। इसने चेलावाट जीता। कुंभलगढ़ प्रशस्ति में भी ऐसा ही वर्णन है। दोनों मिलते हुये हैं। इस प्रकार श्लोक २० के बाद खेता का वर्णन आता है। खेता को अमीशाह को हराने वाला

---

80. कार्लेयल आ० स० रि० इं० भाग २३ प्लेट २०—२१ ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० ३१६। शारदा महाराणा कुम्भा पृ० १८२। महाराणा कुंभा पृ० ३५६
81. श्लो० १८७ के बाद "अनंतरवर्णनं [उत्तर] लघु पट्टिकायां अंकक्रमेण वेदितव्यं" वर्णित है।
82. महाराणा कुंभा पृ० ३५७ गीतगोविन्द की रसिक प्रियाटीका की प्रशस्ति में भी ऐसा ही वर्णन है।

वर्णित किया है और रणमल को हराया जिसने कई राजाओं को वन्दी बना लिया था। इसका वर्णन श्लोक २१ से २६ तक दिया गया है। कुंभलगढ़ प्रशस्ति में भी उसके लिये ऐसा ही वर्णन मिलता है। इसका मेद लोगों से संघर्ष होना वर्णित है। और गया तीर्थ को मुक्त कराना वर्णित है [83]। यह वर्णन श्लोक ३६ तक है। इसके बाद मोकल का वर्णन है।

महाराणा कुंभा का वर्णन अत्यन्त विस्तार से किया है। श्लोक सं० ३ में मांडव्यपुर से हनुमान की मूर्ति लाकर के स्थापित करना वर्णित है। यह मांडव्यपुर मंडोर के लिये प्रयुक्त है। इस मूर्ति की विधिवत् प्रतिष्ठा वि० सं० १५१५ में की गई थी जबकि यह मूर्ति वि० सं० १४९५ में ही वहां से ले आई गई प्रतीत होती है। इससे यही प्रकट होता है कि यह मूर्ति जिस समय दुर्ग बनना शुरू हुआ था तब लाकर के लगा दी थी। श्लोक सं० ५ में सपादलक्ष जीतने इसके बाद नराणा जीतने का वर्णन है। इन विजयों और कुंभा के संभावित मार्गों का विशद वर्णन महाराणा कुंभा के अध्याय तीन में मैंने अलग से कर दिया है। श्लोक स. ८ एवं ९ में वंसतपुर का वर्णन है। एकलिंगजी के मंदिर के पूर्व की ओर कुंभ मंडप बनाने का वर्णन श्लोक सं० १० में किया गया है। इसके बाद श्लोक ११-१४ तक आबू को विजित करने का वर्णन है। वहां तेजस्वी अश्वारोहियों का लगाना वर्णित किया है। इसी प्रकार श्लोक १४ में वर्णित है कि वहां लिये जाने वाले करों से मुक्त किया। श्लोक में "निर्जितारिकरतुण्टबन्धनात्तीर्थसंहतिमसावमोचयत्" शब्द उल्लेखनीय है। इसका अर्थ है दुर्ग जीतने पर कर क्षमा किये। ये कर वि० सं० १५०६ में क्षमा किये थे अतएव कुंभा की विजय इसके कुछ ही वर्ष पूर्व मानना चाहिये। इसलिए मैंने वि० सं० १५०० के आस-पास माना है। [84] श्लोक १५ में विष्णु की प्रति के निमित चार जलाशयों के वहां निर्माण का उल्लेख है। श्लोक सं० १६-१७ में

---

83. महाराणा कुंभा पृ० २१३ का फुटनोट ६। एवं पृ० ३५७ का फुटनोट ५७।

84. महाराणा कुंभा पृ. ८१

मालवा और गुजरात में सैनिक प्रयाण का उल्लेख है। इनका पहले उल्लेख किया जा चुका है। श्लोक १८ से २३ में जांगल प्रदेश को जीतने का उल्लेख है। इसका विस्तृत वर्णन महाराणा कुंभा के अध्याय तीन में पृ० ७७ पर किया जा चुका है। वुंखराद्रि और खंडेला को जीतने का उल्लेख किया जा चुका है। श्लोक सं० २६ से चित्तौड़ दुर्ग का वर्णन शुरू होता है। सौभाग्य से कुंभलगढ़ प्रशस्ति में भी कई श्लोक चित्तौड़ सम्बन्धि लिखे गये हैं। इसी प्रकार का वि०सं० १४९५ की प्रशस्ति में भी ऐसा ही उल्लेख है। यहां उसने विशाल सरोवर बनाये। यहां के कमलों की तुलना युवतियों के मुख कमल से कर साहित्यिक रूढिगत तुलना की है। कुंभस्वामी के मंदिर का अतिशयोक्ति युक्त वर्णन है। इसकी तुलना कैलाशपर्वत और सुमेरू पर्वत से की है। श्लोक सं० २९ में वर्णित है कि क्या यह कैलाश का प्रतिनिधि है अथवा भगवान शंकर का अट्टहास है अथवा श्वेतचांदनी का समूह है अथवा हिमालय का कर्णाभरण है आदि २। यह केवल अलंकारात्मक वर्णन है। श्लोक सं० २२ से २३ में कीर्तिस्तम्भ जलयन्त्र बावड़िया आदि बनाने का उल्लेख है। इसके बाद चित्तौड़ के मार्गों और द्वारों का वर्णन आता है। यह श्लोक ४२ तक चलता है। इसके बाद श्लोक १२४ तक की शिलायें नष्ट हो चुकी थी। इनका वर्णन नहीं आ सका। लेकिन इसमें भी इसी दुर्ग के अन्य महलों आदि का वर्णन रहता जो अधिक ठीक हो सकता था। कुंभलगढ़ प्रशस्तिकार ने कुंभलगढ़ में रहते हुये अपने निवासस्थान का विस्तृत वर्णन नहीं किया है जबकि इसने सविस्तार से चित्तौड़ का उल्लेख किया है। श्लोक सं. १२६ में कुंभलगढ़ निर्माण का उल्लेख है। यह वर्णन श्लोक सं. १३५ तक चलता है। इनमें कोट गोपुर आदि के निर्माण का उल्लेख है। श्लोक सं० १४६ में किसी शत्रु दुर्ग से गणेश की मूर्ति को लाकर यहां स्थापित करने का उल्लेख है।

इसके बाद कुंभा के व्यक्तिगत गुणों का वर्णन है। इसे लेखों में दानगुरु राजगुरु और शैलगुरु लिखा मिलता है। इसने पिता के वैर को लिया यह श्लोक १५० में वर्णित है। इसके द्वारा विरचित ग्रंथों

का उल्लेख मिलता है। चण्डीशतक और गीतगोविन्द की टीका संगीत-राज और नाटकादि का वर्णन है जिनका विस्तृत उल्लेख मैं पहले ही कर चुका हूं। इसने मालवा और गुजरात के राजाओं की सम्मलित सेनाओं को हराया। यह श्लोक सं १७९ में वर्णित है। श्लोक सं० १८० और १८१ में उसके परिवार का उल्लेख है। श्लोक १८२-१८३ में अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन है किन्तु श्लोक सं० १८३ का वह अंश आज भी विशेष उल्लेखनीय है कि "तावस्तिष्ठतु कुंभकर्णनृपतेः कीर्तिप्रशस्तिस्तथा नानाकारित कीर्तनानि सकला साम्राज्यलक्ष्मीरपि" इसके बाद कुछ तिथियां दी है ये कीर्तिस्तम्भ कुंभलगढ़ अचलगढ़ आदि र प्रतिष्ठा कराने की है जो महत्वपूर्ण है। चितौड़दुर्ग का जो स्वरूप आज विद्यमान है उसके लिये कुंभा को ही अधिक देन है।

प्रशस्ति के अन्त में महेशभट्ट का परिचय है जिसका मैंने परिचय साहित्य सर्जना में विस्तार से दे दिया है। यह प्रशस्ति अधूरी है अतएवं इसकी कोई तिथि ज्ञात नहीं है। इसे अधिकांश विद्वान वि सं. १५१७ की ही मानते हैं क्योंकि कुंभलगढ़ प्रशस्ति की तिथि यही थी।

शैली के हिसाब से यह प्रशस्ति उतनी व्यवस्थित नहीं है जितनी की कुंभलगढ़ की। इसमें वंश वर्णन और बीच-बीच में भौगोलिक वर्णन कम है। वस्तुत यह दो कवियों की कृति है इससे यह व्यवधान है।

कीर्तिस्तम्भों से सम्बन्धित शिलालेख

प्रस्तुत शिलाखड उदयपुर संग्रहालय में है और कीर्तिस्तम्भ के पास ही पड़ा हुआ मिला था। प्रस्तुत शिलाखड में १५ पक्तियां हैं और नीचे का बांयी ओर का कुछ भाग खंडित है। मूल शिलालेख में ९ श्लोक हैं। इसमें और भी श्लोक रहे होंगे। इसमें विभिन्न देवताओं के लिये बनाये जाने वाले स्तम्भों के मान का वर्णन है। इनमें इन्द्र के लिये जो स्तम्भ बनाया जावेगा वह ६५ हाथ का, ७८ हाथ का विष्णु का और इन दोनों के मध्य मान का ब्रह्मस्तम्भ होना चाहिये। यह वर्णन किसी शिल्प शास्त्री की सहायता से जिनमें संभवतः जैता या मंडन ही मुख्य रहा हो, महाराणा कुम्भा ने लिखा होगा। इन्होंने भी जय और अपराजित नामक पूर्व में हुये शिल्पशास्त्रियों की कृतियों की

सहायता ली ।

वि० सं० १५३८ पोष सुदि ७ एक अप्रकाशित शिलालेख

प्रस्तुत लेख रामपोल के सामने सभा गृह के स्तम्भ के ऊपरी भाग में है । इसमें १४ पंक्तियां हैं । लेख खरतरगच्छ का है । तीसरी और चौथी पंक्ति में शांतिनाथ मन्दिर का उल्लेख है । यह लेख संभवतः खरतरगच्छ ही से सम्बन्धित है । लेख में जिनहर्ष सूरि का उल्लेख है इन्हीं का एक अन्य मूर्ति का लेख वि० सं० १५३८ माघसुदि ५ का और देखने को मिला है । जिसमें भंडारी जाति के श्रेष्ठि परिवार द्वारा निर्मित मूर्ति की अंजन शलाका उक्त आचार्य द्वारा कराये जाने का उल्लेख है । जयकीर्ति महोपाध्याय का उल्लेख पंक्ति सं० ६ से ८ तक में किया गया हैं । इन्हीं आचार्य का उल्लेख चित्तौड़ के ही अन्य अप्रकाशित लेख में भी किया गया है । इनके अतिरिक्त अन्य कई साधुओं का उल्लेख किया गया है । मूल लेख आगे दिया जारहा है जिससे अवलोकन होगा कि उस समय कितने अधिक साधु वहां विद्यमान थे । इस प्रकार खरतर-गच्छ परम्परा में हुये कई साधुओं का वहां उल्लेख मिलता है ।

वि० सं० १५४३ का गोमुख का शिलालेख

प्रस्तुत लेख गोमुख के पास स्थित जैन मन्दिर के एक पत्थर पर खुदा है । इस पर कीर्तिधर अर्हत्मूर्ति सुकोशल ऋषि मूर्ति एवं मुनि की मूर्तियां भी खुदी हैं । प्राकृत में ५ गाथायें खुदी हुई हैं । इसमें सुकोशल ऋषि की स्तुति की गई है । लेख वि० सं० १५४३ मार्गशीर्ष वदि १३ का) इसमें सुकोशल ऋषि की प्रतिमा महाराणा रायमल के राज्य में स्थापित करने का उल्लेख है । इसकी प्रतिष्ठा खतरगच्छ के श्री जिनसमुद्र सूरि द्वारा की गई थी ।

वि० सं० १५५६ का अप्रकाशित लेख

खरतरगच्छ का एक अन्य लेख वि० सं० १५५६ का चित्तौड़ से और मिला है यह अब उदयपुर संग्रहालय में सं० २३ पर है । यह वृहद् शिलालेख मूलरूप से ३ शिलाओं पर[85] उत्कीर्ण था । इसमें से

85 राजपुताना म्यूजियम अजमेर रिपोर्ट वर्ष १९२७ ले० सं० ६

दो शिलायें तो नष्ट हो चुकी है। तीसरी शिला में श्लोक सं० ८३ से १२८ तक का वर्णन है। इसमें कुल पंक्तियां ३५ हैं। पहली पंक्ति टूटी हुई है। रायमल का वर्णन प्रस्तुत करते हुये "महाराजाधिराज समस्त रिपु गज घटासिंह राणा श्री रायमल विजयराज्ये....."। जय-कीर्ति उपाध्याय को जिनका वर्णन १५३८ के लेख में है, विवकरत्नसूरि का शिष्य वर्णित किया है। इनके अतिरिक्त और भी कई साधुओं का उल्लेख है। भण्डारी भोजा परिवार जिसका उल्लेख वि० सं० १५३८ के एक मूर्ति के अप्रकाशित लेख में है से ही यह लेख सम्बन्धित है। इसमें छीतर सूत्रधार का वर्णन है जो ईश्वर का पुत्र था।[80] यह मूल रूप से सतवीसदेवरी के सामने खेत में खरतरगच्छ के खन्डहर मन्दिर में रहा होगा जहां सभामण्डप वि० सं० १५५६ का लघु लेख आज भी लग रहा है।

जैन मूर्तियों के १५ वीं शताब्दी के लघु लेख

महाराणा मोकल कुम्भा और रायमल के समय की कई जैन मूर्तियां चित्तौड़ में देखने को मिली है। इन पर विभिन्न श्रेष्टियों के लेख लग रहे हैं। इनमें कुछ का वर्णन इस प्रकार है-सतवीसदेवरी देहरी सं० २१ में आदिनाथ प्रतिमा पर वि० सं० १४२९ का लेख है। सभा मण्डप में वि० सं० १४८४ का लेख शीतलनाथ की प्रतिमा पर है जिसमें आंचल गच्छ के जयकीर्ति नामक आचार्य द्वारा प्रतिष्ठा कराने का उल्लेख है। इसमें श्रेष्ठि सुहड़ा द्वारा अपने द्वारा मन्दिर बनाकर प्रतिष्ठित कराने का उल्लेख है। जयकीर्ति के शिष्य ऋषिवर्द्धन ने वि० सं० १५१२ में चित्तौड़ ने नल दमयन्ती रास लिखा था। उक्त मन्दिर की देहरी सं० १५ और २० में क्रमशः वि० स० १५११ और १५१२ के लेख हैं। शृंगार चंवरी में वि० सं० १५१२ और १५१३ के लेख हैं। इनमें "आलक" बनाने का उल्लेख है जिन्हें जिन सागर सूरि के शिष्य "जिनसुन्दर सूरि" ने प्रतिष्ठित किया था। सतवीसदेवरी की देहरी

---

80. सम्मेलन पत्रिका वर्ष ४४ अङ्क २-३ में श्री रतनचन्द्र अग्रवाल का लेख

सं० २६ में महावीर स्वामी की मूर्ति पर वि० सं० १५२६ का लेख है। वि० सं० १५३८ का लेख शांतिनाथ की मूर्ति पर है।

घोसुन्डी की बावड़ी का लेख (वि० सं० १५६१)

प्रस्तुन लेख में कुल २५ श्लोक हैं। संवत १५६१ की यह प्रशस्ति कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। लेख का प्रारम्भ[47] "ॐ नमो गणेशाई नंम" से किया गया है। प्रारम्भ के २ श्लोकों में मंगलाचरण है। तीसरे श्लोक में खुम्माण के वंशज कुम्भा के पुत्र धर्मात्मा रायमल का वर्णन है जिसने मालवे के सुल्तान को हरा दिया था। इसके बाद रायमल की पत्नि श्रृंगारदेवी का वर्णन है। यह मारवाड़ के शासक रणमल की पौत्री और जोधा की पुत्री थी। श्लोक सं० ४ में रणमल का वर्णन है और ५ से ७ में जोधा का वर्णन है। रणमल को "उद्धता-खिलविपक्षकटकामाशशास" कहा गया है। जोधा को पठानों और पारसियों को हराने और गया को कर से मुक्त करने का वर्णन है। श्लोक सं० ८ से १७ में श्रृंगार देवी का रायमल के साथ विवाह का उल्लेख है। श्लोक २० से २३ में श्रृंगारदेवी का बावड़ी खुदाने का वर्णन है।

प्रशस्ति का रचियता महेश्वर नामक कवि था जिसने कीर्त्तिस्तम्भ प्रशस्ति खड्वदा की प्रशस्ति दक्षिण द्वार की प्रशस्ति एवं जावर की प्रशस्ति की भी रचना की थी[48]

महाराणा सांगा का वि० सं० १५७४ का अप्रकाशित लेख

कुकडेश्वर के मंदिर की गणेश देवली के पास की देवली में वि० सं० १५७४ का महाराणा सांगा का लेख है। इसमें उस समय उसके प्रधान सोलकी कंचराम (?) एवं राजधर चंदेल के नाम अङ्कित है। यह लेख अप्रकाशित है। लेख का प्रारम्भ "ॐ नमो गणेशायनमः प्रसादातु" से किया है। यह लघुलेख है। चित्तौड़ से सांगा का यह पहला लेख मिला है इससे यह कहा जा सकता है कि उक्त मन्दिर में कुछ निर्माण कार्य हुआ था।

---

47. जरनल बंगाल ब्रांचरायल एशियाटिक सोसाइटी अङ्क ५५ पार्ट I में कविराजा श्यामलदास द्वारा सम्पादित।

48, उपरोक्त पृ० १२६

महाराणा वणवीर के २ अप्रकाशित लेख

महाराणा वणवीर के समय के दो लेख चित्तौड़ से मिले हैं जो अब तक अप्रकाशित हैं। एक लेख रामपोल पर लग रहा है जो वि. सं. १५९३ का है और दूसरा अन्नपूर्णा माताजी के मंदिर में लग रहा है। वि. सं. १५९३ के लेख में चारणों से दाण आदि क्षमा करने का उल्लेख है। यह कार्य चारण काल जी ने क्षमा कराया था। ऐसा प्रतीत होता है कि राजगद्दी पर बैठने के बाद वणवीर ने चारणों को प्रसन्न करने की कोशिश की थी। माताजी के मंदिर के बाहर के लेख में पाठ बहुत खंडित होने से अर्थ ठीक २ नहीं निकाला जा सकता है। प्रारम्भ के ४ श्लोकों में रायमल के पुत्रों का वर्णन है। इसके बाद विभिन्न महाराजाओं द्वारा दान देने का वर्णन है। कुंभा ने कुण्डाल ग्राम रायमल ने खेड़ी ग्राम सांगा ने चोगावड़ी रत्नसिंह ने पनोत्या और वणवीर ने ग्राम अरवड़ दान में दिया था। संवत का अंश संभवतः खंडित भाग में रह गया है।

महाराणा कर्णसिंह का वि. सं. १६७८ का शिलालेख

यह लेख रामपोल पर लग रहा है। इसमें उल्लेखित है कि बारहट लाखा को महाराणा ने मांडलगढ़, फुलश और मीणाय परगने के ३ ग्राम दान में दिये थे। यह दान पत्र पहले दे दिया था एवं दान को शाश्वत करने के लिये पुनः शिला पर खुदवा करके लगा दिया गया। लेखक का नाम पंचोली शंकरदास रामदास का नाम वर्णित है।[89]

रामपोल के अन्य अप्रकाशित लेख

रामपोल लगे लेखों में महाराणा हमीरसिंह II के समय के लेख महत्वपूर्ण हैं। ये लेख वि. सं. १८३२ एवं १८३३ के हैं। १८३२ वि. के एक लेख में वर्णित है कि उस समय गजधर सुन्दर के पुत्र रूपा को जिसने चित्तौड़ दुर्ग की मरम्मत एवं रामपोल के किवाड़ तैयार करने में अच्छी सेवा की। अतएव ग्राम मोराणा में भटवीरेश्वर के हिस्से की जमीन उसे भेंट में देदी गई।[90]

---

89. वी० वि० भाग २ के शेष संग्रह में प्रकाशित
90. "अणी ने गाम मोराणा माहे भट वीरेश्वर री पांतीरो जायगा तांबा पत्र करे दीवाणो है" (अप्रकाशित लेख)

१८३३ वि. के २ लेख महाराणा हमीरसिंह II के समय के हैं जिनमें रावत भीमसिंह ने महाराणा की तरफ से कई आज्ञायें प्रसारित की हैं। एक में किशोरदास देपुरा को सम्बोधित करके लिखा गया था। इसमें मेवाड़ के समस्त ब्राह्मण, चारण भाट भोजक, जोगी-सन्यासी भगत, खटदरसन (छन्याती ब्राह्मण) से दण्ड, विराड़ मपति सारी लागते आदि क्षमा[91] की गई। यह लेख श्रावण सुदि १५ का है। आगे लिखा गया कि कोई भी इनका पालन नहीं करेगा उसे भगवान एकलिंग जी को सोगन्द है। ठीक इसी प्रकार की दूसरी सुरह इसके पास ही खुदी है। यह भादवा वदि ३० सोमवार सं० १८३३ की है। इसमें उपरोक्त आज्ञा की पुनरावृत्ति ही नहीं की गई वल्कि कुछ नई और आज्ञा प्रसारित की गई। इसमें लोगों को तसल्ली देने के लिये यह भी स्पष्ट किया गया कि विना जांच किये किसी को भी दण्ड नहीं दिया जायगा। इसके अतिरिक्त २) ६० सैकड़ा भूराजस्व में से धर्मादा पेटे निकालकर उसके जेवर बनवाकर एकलिंग जी के मन्दिर में चढ़ाना आदि [92]। इस प्रकार की सुरह एक उदयपुर में और एक चित्तौड़ में लगवाई गई। यह लेख महत्वपूर्ण है। उस समय मेवाड़ में आन्तरिक कलह चल रहा था। अतएव जनता को इस राजाज्ञा से आश्वासन दिलाया कि बिना विधिवत् जांच किये किसी से एक भी रुपया जबरदस्ती नहीं लिया जायगा।

---

91. यह छूट चन्द्रग्रहण के समय दी थी। मूल लेख में "अप्रंच समसत मेवाड़ रा ब्राह्मणां चारणां भाटां, भोजक, जोगी सन्यासी मगत, खटदरसन है डेड विराड़ मपति सारी लागत रावत भीमसिंह जी रा दुवा थी छूट करे सुरे रोपावी संवत् १८३३ दूसरा श्रावण सुदि १५ भोमे रा चन्दर परव माहै" वर्णित है (अप्रकाशित लेख)

92. "देश में हे हांसल पेदासी राज माहे थी सेकड़ालार रुपया २) अखरे दोय धरम खाता लेखे काड़णा सो जुदावलो मेलावणा सो वरसदन में धरमखाता सव.य वदे जणारो गेहणो तीयार करावे श्री एकलिंग जी चढ़ावणो....." (अप्रकाशित लेख)

कामदारों आदि से भी कोई जबरदस्ती वसूली नहीं करने का आश्वासन दिया गया और चोरी आदि के मामलों में पूरी जांच कराने की भी व्यवस्था कराई गई।

रामपोल पर ही महाराणा भीमसिंह की एक लम्बी सुरह लगी है जिसका सारांश इस प्रकार है कि जो लोग चित्तौड़गढ़ पर तथा तलहटी में रह रहे हैं तथा नये आकर के बसे उन लोगों से ठीक राजस्व ही लिया जावेगा। फौज का घरा पड़ने पर लोग खाने पीने की खुद ही तैयारी करें और लेन-देन भी अपने आप तै करें।[93]

महाराणा स्वरूपसिंह के समय के लेख

आधुनिक लेखों में महाराणा स्वरूपसिंह के समय के ३ लेख हैं। (१) वि० सं० १९०२ का शराब छोड़ने की प्रसिद्ध प्रतिज्ञा जो एकलिंग जी के मन्दिर में भी लग रहा है। (२) वि० सं० १९०३ जेठ वदि ३ की राजाज्ञा में सार्दुलसिंह और रामसिंह के देशद्रोह पर दण्डित करने का उल्लेख है। (३) वि० सं० १९११ का है जो कीर्ति स्तम्भ के जीर्णोद्धार से सम्बन्धित है।

खंडित और बिना तिथि के कुछ अप्रकाशित लेख

लगभग १३ वीं शताब्दी के बाद के कई खण्डित और लघु लेख देखने को मिले हैं। इन लेखों में कुछ तो बहुत ही महत्वपूर्ण हैं इनका संक्षिप्त वर्णन:करना आवश्यक है—

सतबीसदेवरी के अधिकारी श्री फतहचन्द महात्मा ने मुझे एक मूर्ति की चरण चौकी का १३ वीं शताब्दी का लेख बतलाया था। पहली पंक्ति में "·····भद्र सा० नेमिभ्यां सह सौवर्णिका वड़ाजिताभ्यां राजा" दूसरी पंक्ति में "·····र राज श्री मेदपाट प्रभु प्रभृतिक्षिति पतिमानिनया श्री·····" और तीसरी पंक्ति में "पुण्यां पुर्व्व प्रतिष्ठितं श्री सीमंधरस्वामि युगधर स्वामी" पाठ पढ़ा जाता है। जैन सत्य प्रकाश वर्ष ८ अंक १ में इस लेख का उल्लेख है। इसका बड़ा टुकड़ा उस समय उपलब्ध था। इसमें चैत्रागच्छ के भुवनचंद्र सूरि का वर्णन है।

---

93. "गढ़ परे तथा तलेटी में कदमी तथा नवेसर आय वसे जणा तीरा थी वाजवी हांसल लेणो ·······(अप्रकाशित लेख)

दिगम्बर जैन कीर्त्तिस्तम्भ सम्बन्धी ३ लेखों के टुकड़े देखने को मिले हैं। इनमें तिथि लगी हुई नहीं है। एक में कैलाश शैल शिखर स्थित देवता की स्तुति दूसरे श्लोक में संभवतः अरिष्टनेमि की स्तुति है। इसके बाद पावापुरी सम्मेद शिखर आदि का उल्लेख है। कुल श्लोक १२ हैं। अन्त में "संघ जीजान्वित सदा" पाठ है। एक अन्य लेख में जिसका आगे का भाग खण्डित हो चुका है संघ पति जीजा सम्बन्धी सुन्दर वर्णन है। अन्त में "बघेर वाल जातीय सा० नाय सुतः जीजाकेन स्तम्भः कारापित" पाठ है। तीसरे शिला का पाठ बहुत खण्डित है। समरसिंह के समय का वि० सं० १३""का एक लघु लेख है जिसमें समरसिंह के राज्य में कुछ मूर्ति स्थापित करने का उल्लेख है। उसके मंत्री का नाम कर्मसिंह दिया हुआ है। यह लेख गोमुख के पास था।

श्रेष्ठि पुण्यसिंह सम्बन्धी एक विस्तृत लेख चित्तौड़ के जैन कीर्ति स्तम्भ के पास स्थित किसी मन्दिर में लग रहा था। यह संभवतः ३ या इससे अधिक शिलाओं पर खुदा हुआ था। एक शिला जिसमें श्लोक २१ से ४५ तक का भाग है जो गोसाईं जी के चबुतरे के पास से मिली थी। इसकी प्रतिलिपि वीर विनोद लिखते समय कराई गई थी। संभवतः यह चबुतरे पर अब भी लगी हुई है किन्तु अक्षर खोद दिये गये हैं। लेख कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। इसमें श्रेठि पुण्यसिंह का सविस्तार से उल्लेख किया गया है। जैन साधु विशाल कीर्ति और शुभ कीर्ति का सुन्दर वर्णन है। विशाल कीर्ति को साहित्य और दर्शन का विद्वान वर्णित किया है। इनके उत्तराधिकारी शुभ कीर्ति भी विद्वान् थे। इनकी प्रशंसा महाराजा हमीर ने भी की थी। श्लोक सं० ४४ में हमीर का उल्लेख है। श्लोक सं० ४५ में पुण्यसिंह द्वारा मानस्तम्भ की प्रतिष्ठा करने का उल्लेख है।[94]

अन्य लघु लेखों में जैन कीर्तिस्तम्भ में १६६४ वि० में हर्ष कीर्ति नामक किसी साधु और जयन्तसिंह के वहां आने का उल्लेख है।

---

94. तच्चरण कमलमधुपे मानस्तम्भप्रतिष्टयान्मानं प्रकटीं चकार भुवने धनिकः श्री पूर्णसिंहोत्र ॥४५॥ (अप्रकाशित लेख)

(ब) ग्रन्थ प्रशस्तियां

जैसा कि ऊपर उल्लेखित किया जा चुका है चित्तौड़ दीर्घकाल तक विद्या का केन्द्र स्थल रहा है। यहां प्रतिलिपि किये कई ग्रन्थ मिले हैं। जिनकी प्रशस्तियां भी मिली हैं जिन्से सम–सामयिक, सामाजिक और धार्मिक गति–विधियों का पता चलता है इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

चित्तौड़ में लिखी गई ग्रन्थ प्रशस्तियों में सबसे प्राचीन धूर्त्ताख्यान की प्रशस्ति है। यह हरिभद्र सूरि द्वारा चित्तौड़ में उक्त ग्रन्थ को पूरा करने से सम्बन्धित है। इसका ऊपर वर्णन किया जा चुका है। इसी प्रकार चैत्य वन्दन टीका की एक प्रशस्ति सिंघवी पाड़ा पाटन भण्डार में संग्रहित है। इसका लिपि काल वि० सं० ११८५ प्रथम आश्विन वदि ७ सोमवार है। इसमें भी हरिभद्र सूरि को "चित्रकूटाचलनिवासिनः" कहा[95] गया है। हरिषेण और डड्ढा की प्रशस्तियों का वर्णन साहित्य सर्जना में किया जा चुका है।

वि० सं० ११८६ की दो प्रशस्तियां

वि० सं० ११८६ की चित्तौड़ में लिखे २ ग्रन्थों की प्रशस्तियां मिली है। एक पाटन भण्डार में संग्रहित जिनदत्ताख्यान की है और जिन विजय जी ने प्रशस्ति संग्रह के प्रथम भाग में इसे वर्णित किया है। इसमें जिन दत्ताख्यान ग्रन्थ की मणिभद्र द्वारा प्रतिलिपी करने का उल्लेख है। दूसरा ग्रन्थ विपाक सूत्र है। यह जैसलमेर भण्डार में संग्रहित है। इसमें यति-पति जिनपति सूरि के शिष्यों द्वारा इसे पूर्ण करने का वर्णन है। यह प्राकृत भाषा का ग्रन्थ है। पत्रों की साइज २६।।।×२। है।[96]

वि० सं० १२९५ की प्रशस्ति

यह कर्म विपाक ग्रन्थ की है। यह चित्तौड़ के रहने वाले श्रेष्ठि

---

95. ए डिस्क्रिप्टीव केटलाग आफ मेन्यूस्क्रीप्ट इन जैन भण्डार्स एट पाटन पृ० ३४

96. प्रशस्ति संग्रह भाग १ पृ० व० २। जैसलमेर ताड़पत्रीय ग्रन्थ भण्डार सूची पृ० ८

राल्हा द्वारा मालवा स्थित नलकच्छपुरी में जयतुग्नि परमार के राज्य में पूर्ण कराया गया था। यह जिनेश्वर सूरि का शिष्य था। वह श्रेष्ठि परिवार उस वर्ष नलकपुरी गया था। ग्रन्थ की प्रशस्ति से प्रकट होता है कि उक्त सूरिश्वर के साथ यह श्रेष्ठि कई तीर्थों की यात्रा कर चुका था।[97] जैसलमेर भण्डार में संग्रहित "गणधर सार्द्ध शतक प्रकरण वृत्ति सह तृतीय खण्ड की एक प्रति की अन्त की प्रशस्ति में वि० सं० १२६५ में जिनेश्वर सूरि के धारा नलक आदि नगरों की यात्रा[98] का उल्लेख है। प्रशस्ति मे "समस्तजैनशास्त्राद्धारोक्रमेण" वर्णित है। इससे प्रतीत होता है कि उस श्रेष्ठि ने कई ग्रन्थ लिखवाये होंगे।

वि. सं. १३१४ की प्रशस्ति

आचार्य हेमचन्द्र द्वारा विरचित "अभिधान चिन्तामणि" नाम माला की प्रशस्ति सिघवीपाड़ा पाटन मंडार में है इसमें वर्णित है कि वि० सं० १३१४ में "संयमसिरि" नामक साध्वी ने उक्त ग्रन्थ की प्रतिलिपि की। चित्तौड़ महादुर्ग की निवासिनी सुमेरु सुन्दरी महत्तरा के उपदेश से तीड़ा देवी सुश्राविका ने ग्रहण किया।[99]

वि. सं. १३४३ की प्रशस्तियां

वि० सं० १३४३ की कई ग्रन्थों की प्रशस्तियां श्रेष्ठिधांधल परिवार की मिली है। इनमें चन्द्रदूताभिधान ग्रन्थ जैसलमेर मंडार[100] में है। पत्रों की लम्बाई १४×२।" है। इसमें धांधऊ के पुत्र भीम और छाहड़, और उसके पुत्र जगसिंह और खेतसिंह नामक चित्तौड़ के श्रावकों का उल्लेख है जिन्होंने मूल्य से इसे पुनः प्राप्त की। वड़ोदा के एक मंडार में

97. वरदा वर्ष ६ अङ्क ३ में मेरा लेख और उस पर वरदा वर्ष ६ अङ्क ४ में डा० दशरथ शर्मा की टिप्पणी

98. जैसलमेर ताड़पत्रीय ग्रन्थ भण्डार सूची पृ० १२२ इसमें "सं० १२६५ वर्षे श्रीमद्धारापुरीनलकच्छादिकृत विहार" उल्लेखनीय है।

99. डि० के० पाटन मंडार पृ० १४३

100. जैसलमेर ताड़पत्रीय सूची पृ० ११६

निघण्टुशेषः नामक पुस्तक संग्रहित है। यह ग्रन्थ वि. सं. १२८० में लिखा गया था। इसको वि० सं० १३४३ को उक्त परिवार द्वारा मूल्य से[101] खरीदी। श्री शाह ने इसमें धांधल को "चांचल" पढ़ा है और छाइड़ को साहड पढ़ा है जो गलत है। यह श्रेष्ठि सौवार्णिक जाति का था। इस परिवार के कई शिला लेख भी मिले हैं। वि० सं० १३४१ का एक लेख सादड़ी के जैन मन्दिर में लगा हुआ है।[102]

वि० सं० १३५२ की प्रशस्ति

सुश्राविका धांधी द्वारा प्रतिलिपि कराये दश वैकालिक पाक्षिक सूत्र की एक प्रति पाटन सिंघवी भण्डार में है। इसमें राज्यमन्त्री सीमन्धर का उल्लेख है। यह मेवाड़ के महारावल तेजसिंह के समय वि० सं० १३१६ से १३२४ के मध्य मुख्यामात्य रहा था। इस प्रशस्ति में इसके लिये 'श्री मेदपाट देश क्षितिराज प्राज्य राज्य धौरयः। सीमांधर इति मन्त्री श्री करणिक इह समस्ति पुरा" वर्णित किया है। इसकी पत्नि का नाम नौमलदे था। जिसकी छोटी वहिन धांधी थी जिसने दश वैकालिक सूत्र अपने गच्छ के समस्त साधुओं के पठनार्थ प्रतिलिपि कराया। इसके लिये "अगण्यसत्पुण्यकल्पलतिकाया" विरुद दिया गया है जो उल्लेखनीय है।[103]

महाराणा कुम्भा कालीन ग्रन्थों की प्रशस्तियां

महाराणा कुम्भा के समय लिखे गये कई ग्रन्थों की प्रशस्तियां देखने को मिली हैं इनका विस्तृत विवरण महाराणा कुम्भा पुस्तक के पृष्ठ सं० ३६० से ३६३ तक वर्णित किया है। इन ग्रन्थ प्रशस्तियों में गीत गोविन्द की प्रशस्ति, संगीतराज की प्रशस्ति, चंडीशतक की प्रशस्ति, सूड प्रबन्ध की प्रशस्ति आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गीत गोविन्द की रसिकप्रिया टीका कुम्भा की बड़ी प्रसिद्ध है। इसमें कर्तृ-प्रशंसा में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि टीकाकार का उद्देश्य जयदेव द्वारा श्रृंगार रसको स्पष्ट करना एवं जयदेव की अस्पष्ट ग्रन्थियों को

---

101. शाह प्रशस्ति संग्रह पृ० ६४
102. नाहर जैन लेख संग्रह भाग २ लेख सं० १४४६
103. जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह भाग १ पृ० ३३

सुलझाना रहा है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में छोटी २ प्रशस्तियां दी हुई हैं इनमें महाराणा कुम्भा का वर्णन हैं । इनमें गुर्जर और मालव सुल्तानों को हराने तथा गया तीर्थ को मुक्त कराने का उल्लेख है । इसी प्रकार एकलिंग प्रासाद के साथ २ सातवें सर्ग की समाप्ति का उल्लेख है । अन्त की प्रशस्ति बड़ी विस्तार से लिखी हुई है । इसमें कुम्भा के लिए कई विरुद प्रयुक्त किए गए हैं। कर्तृ प्रशंसा में भी इसी प्रकार कई श्लोकों में उल्लेखनीय वर्णन है । लक्षण परीक्षण अध्याय में कुम्भा के सम्बन्ध में बहुत ही विस्तार से लिखा गया है । चण्डीशतक की वृत्ति के अन्त में २८ श्लोकों की प्रशस्ति दी हुई है । इसमें भी परम्परागत वर्णन दिया हुआ है । सूड़ प्रवन्ध कामराज रतिसार ग्रन्थों की प्रशस्तियां श्री नाहटाजी ने प्रकाशित की हैं । सूड़ प्रबन्ध की प्रशस्ति के अन्त में "श्री कुम्भस्वामिप्रासाद सोदर प्रवन्ध राज श्री गीतगोविन्द.......नामा सूड क्रम सम्पूर्ण........" वर्णित है । स्मरण रहे कि कुम्भ स्वामी का यह मन्दिर वि० सं० १५०५ में पूर्ण हुआ था । गीत गोविन्द की मेवाड़ी टीका की प्रशस्ति भी वड़ी प्रसिद्ध है । इनके अतिरिक्त वि० सं० १५१० में लिखी नवत्तत्व चूरि की प्रशस्ति भी उल्लेखनीय है ।[104]

महाराणा रायमल के समय की ग्रन्थ प्रशस्तियां

चित्तौड़ में लिखे या प्रतिलिपि किये गये महाराणा रायमल के समय के कई ग्रन्थों की प्रशस्तियां देखने को मिली हैं । इनमें अधिकांश जैन ग्रन्थ हैं । अजैन ग्रन्थों में मण्डन के भाई नाथा की वास्तु मञ्जरी की प्रशस्ति और उसके पुत्र गोविन्द के ग्रन्थ कलानिधि उद्धार धोरणी द्वारदीपिका आदि की प्रशस्तियां उल्लेखयीय हैं । जैन ग्रन्थों में पाटन भण्डार में संग्रहित "उपाशंग दशानां चरित्र" की प्रति की प्रशस्ति उल्लेखनीय है । यह वि सं० १५१३ की है जिसमें रुद्र पालीय गच्छ के देव सुन्दर सूरि संतानीय—उपाध्याय श्री आनन्द सुन्दर के शिष्य विनयराज द्वारा उक्त ग्रन्थ की प्रतिलिपि करना वर्णित है ।[105] चित्तौड़

---

104. महाराणा कुम्भा पृ० ३५९ से ३६३

105. प्रशस्ति संग्रह पृ० ५४ से ५५

के अतिरिक्त भीलवाड़ा पुर और कुम्भलगढ़ में लिखे उसके समय में कई ग्रन्थों की प्रशस्तियां देखने को मिली है।

महाराणा सांगा के समय ग्रन्थ प्रशस्तियां

महराणा सांगा के समय चित्तौड़ क्षेत्र में लिखे कई ग्रन्थों की प्रशस्तियां देखने को मिली हैं। इनमें वि० सं० १५७३ की खंडन विभक्ति की प्रशस्ति, वि० सं० १५७४ की पार्श्व पुराण की प्रशस्ति विशेष उल्लेखनीय है। खंडन विभक्ति खरतर गच्छ के कमल संयमोपाध्याय ने प्रतिलिपि किया था। यह ग्रन्थ अब पाटण भण्डार में है। इस प्रशस्ति में खरतरगच्छ के कुछ आचार्यों का वर्णन है यथाजिनवर्द्धन सूरि, जिनचन्द्र सूरि जिनसागर सूरि, जिनसुन्दर सूरि, श्री जिनहर्ष सूरि जिनचन्द्र सूरि आदि का उल्लेख है। जिन सुन्दर के 'भोजमार्तंड" विशेषण लगाया है। प्रारम्भ में "श्री चित्रकूटोत्तमे श्री संग्रामराज्ञः विजयिनि सौराज्ये" वर्णित है।[106] दूसरा ग्रन्थ दिगम्बर जैन सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। इसे नरेन्द्रकीर्ति नामक आचार्य ने चित्तौड़ में बनाया था। इस में श्रेष्ठि साहमेघा परिवार का वर्णन है। प्रारम्भ में "वि०सं० १५७४ कार्तिक वुद्धि ३ चित्रकटे राणा श्री संग्राम राज्ये" वर्णित है।[107]

महाराणा वणवीर के समय की प्रशस्तियां

इसके समय के श्रेष्ठि सूरा द्वारा प्रतिलिपि कराये ग्रन्थों की प्रशस्तियां मिली है। इसने कई ग्रन्थ विभिन्न भण्डारों से खरीदकर चित्तौड़ में ज्ञान भण्डार स्थापित कराया था। कई ग्रन्थ इसने भी बेचे प्रतीत होते हैं। पाटण भण्डार में संग्रहित आवश्यक बृहद वृत्ति की वि सं. १५९२ की प्रशस्ति से प्रकट होता है कि इसने अहमदाबाद के निवासी जांगड गोत्र के श्रेष्ठि साह खीमां को "द्रव्येण" उक्त ग्रन्थ देने का उल्लेख मिलता है। पाटण के २ भिन्न २ भण्डारों में स्थानांगसूत्र और उपासक

106. उक्त पृ ८२

107. डा० कस्तुरचन्द कासलीवाल अध्यक्ष महावीर भवन (शोध विभाग) जयपुर के सौजन्य से

दशकानां सूत्र की प्रशस्तियां क्रमशः वि० सं० १५६७आषाढ़ सुदि १० और १५६७ फाल्गुन वुदी ८ की प्राप्त हुई है। इनमें "सूराकेन लिखापिता भन्डार सार्थे" वर्णित है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह प्रशस्ति महत्वपूर्ण है। इन दोनों में "चित्रकूटदुर्गे वनवीर राज्ज्ये" वर्णित है।[108]

इनके अतिरिक्त चाणस्मा के भंडार में संग्रहित "संग्रहणी वालाव-वोध' की प्रशस्ति उल्लेखनीय है। यह महाराणा उदयसिंह के राजत्वकाल में वि सं० १६१६ वर्षे ज्येष्ठ वदि ४ को लिखी गई है। इसमें भी स्पष्टतः "श्री चित्रकूट मध्ये" वर्णित है।

अन्य प्रशस्तियों में विक्रम की १६ वीं शताब्दी की गोमट्ट सर की प्रशस्ति उल्लेखनीय है जिस में मूलसंघ शारदा गच्छ बलात्कार गण कुन्दकुन्दान्वय और नन्दि आम्नाय के विद्वान् नेमिचंद्र द्वारा लालवर्णी के आग्रह से चित्तौड़ में जितदास शाह द्वारा निर्मित पार्श्व नाथ मंदिर में ठहर कर टीका लिखने का उल्लेख हैं यहां के श्रेष्ठि खण्डेलवाल साहु सांगा और साहु ने भी इस कार्य के लिये आग्रह किया था।

(स) चैत्य परिपाटियां

कुंभलगढ़ प्रशस्ति के श्लोक सं.७५ में यद्यपि चित्तौड़ में 'कुंभ स्वामी "सुरेशो निवसति वसतिस्तीर्थकृत्तीर्थभूमे;" वर्णित है। किन्तु इसे वैष्णव तीर्थ के स्थान पर जैन तीर्थ के रूप में अधिक जाना गया है। १२–१३ वीं शताब्दी में जब चन्द्रकुल 'खरतरगच्छ' के आचार्यों का यहां प्राधान्य था, तब से दीर्घकाल तक यह दुर्ग खरतरगच्छ का केन्द्रस्थल रहा था। 'चित्रकूट शिला पट्टिका' लगाने के भी वर्णन मिलते हैं। मांडू के श्रेष्ठि झांझण द्वारा तेरहवीं शताब्दी में चित्तौड़ में यात्रा करके चैत्य परिपाटी की भी रचना की थी। यह अब प्राप्य नहीं है। चित्तौड़ की ३ चैत्य परिपाटियां श्री नाहटा जी ने सम्पादित करके शोध पत्रिका में प्रकाशित कराई है।[109] पहली वि.स. १५७३ में

---

108. प्रशस्ति सग्रह पृ० ९६–९७

109. शोधपत्रिका वर्ष १३ अंक २। एवं वर्ष १८ अंक ४। जैन सत्य प्रकाश वर्ण अंक में।

लिखी गई थी। इसमें चित्तौड़ के ३२ मंदिरों का विस्तार से वर्णन है। इनमें मंदिरों में विद्यमान मूर्त्तियां और उनके निर्माताओं के सम्बन्ध में कुछ सामग्री भी दी गई हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

(१), श्रेयांसनाथ मंदिर ८० प्रतिमाओं सहित (२) ईश्वर शाह द्वारा निर्मित आदिनाथ मंदिर ५४ प्रतिमायें सहित (३) सोमनाथ चिन्तामणि पार्श्व ३५० प्रतिमाओं सहित (४) चंन्द्रप्रभ स्वामी का चोमुखा मंदिर (५) आदिनाथ मंदिर ३५ प्रतिमाओं सहित (६) पार्श्वनाथ मंदिर ३५ प्रतिमाओं सहित (७) सुमतिनाथ मंदिर १३ प्रतिमाओं सहित (८) वीर विहार (९) पार्श्वनाथ मंदिर (१०) सुपार्श्वनाथ मंदिर (११) जैन कीर्त्ति-स्तम्भ (१२) पार्श्वनाथ मंदिर ९०० प्रतिमाओं सहित (१३) अदबुद 'आदिनाथ' मंदिर(१४) चंद्रप्रभ 'मलधारगच्छीय' मंदिर (१५) सुमतिनाथ मंदिर 'सुराणा रामचंद्रकृत (१६) शान्तिनाथ 'खरतर वसही' (१७) पार्श्वनाथ ५१५ प्रतिमाओं और शत्रुञ्जय और गिरनार पट्टो सहित (१८) सुमतिनाथ 'बरहडिया धनराज का' (१९) शांतिनाथ डाग जिनदत्त का' (२०) शांति'लीलावसही'(२१) मुनिसुव्रत 'नागौरिका' २२) शीतल 'आंचलगच्छीय' (२३) मुनिसुव्रत 'नाणावालागच्छ' (२४ सोमंधर 'पल्लीवाल गच्छ' (२५) पार्श्वनाथ 'चत्रावाला गच्छ' (२६) सुमतिनाथ 'पूर्णिमा गच्छ' (२७) आदिनाथ चौमुखा '८७३ या ८७७ मूर्तियों सहित' इसमें भी शत्रुञ्जय गिरनार और अष्टा पद बने थे। (२८) मुनि सुव्रत 'गोमुख' (२९ शांतिनाथ 'चोमुखा वेला भंडारी कृत २२५ प्रतिमायें सहित इसमें शीतलनाथ आदिनाथ और पार्श्वनाथ की प्रतिमायें थी। (३०; 'अजित सरणा वसही' (३१) शांतिनाथ 'शा. डूंगरसी द्वारा निर्मित और (३२) संभवनाथ मंदिर। ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें जो प्रतिमाओं की संख्या दी है वह मडोवर के अलंकरण हेतु लगाई गई प्रतिमाओं सहित है।

२· दूसरी चैत्य परिपाटी वेले रचित है। नाहटा जी ने इसे वि० सं० १६०० के आसपास रचित माना है। इनमें से कई मन्दिर बहादुरशाह के आक्रमण के समय खण्डित हो गये थे। अतएव इसे वि०

सं० १५६० के पूर्व की कृति मानी जाना चाहिये। इसमें कुल ३६ पद्य हैं पद्य ६ से चित्तौड़ के मन्दिरों की नामावली है। वर्णन का क्रम पहली परिपाटी से भिन्न है। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रेले ने रामपोल से दक्षिण वर्ती भाग से मन्दिरों के दर्शन किये हों। इसमें सबसे पहले सीमधर स्वामी का वर्णन है जो पहली परिपाटी में सं० २४ पर है। इसके बाद मनि सुव्रत, 'नाणावाला गच्छ' शीतलनाथ 'आंचल गच्छ', मुनि सुव्रत 'नागौरिका', आदिनाथ 'मालवी' शृंगार चंवरी, अजित सरणावसही, शांतिनाथ 'डूंगरसी', सोम चिन्तामणि पार्श्वनाथ, सुमतिनाथ, आदिनाथ, संभवनाथ जैन कीर्त्तिस्तम्भ, वीरविहार सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ 'मल्लधार गच्छीय' अदबुद सुराणा श्रेष्ठिकृत, सुमतिनाथ लोलावसही, सुमतिनाथ आदि। इसमें भी मन्दिरों के नाम अधिकांश मिलते हैं।

३. तीसरी चैत्य परिपाटी बड़ौदा के ओरियन्टल रिचर्स इन्स्टीट्यूट में संग्रहित ७ पत्रों की एक प्रति है। इसे भी नाहटा जी ने प्रकाशित कराया है। इसमें अहमदाबाद से यात्रियों के एक संघ का चित्तौड़ जाकर के लौटने का वर्णन है। मार्ग के अनेक स्थानों के मन्दिरों का प्रसंगवश वर्णन है। इसमें छन्द सं० ३६ से ही अंश उपलब्ध है। इसमें ६५ से चित्तौड़ के मन्दिरों का क्रम शुरू होता है। यह क्रम ७६ वें पद तक चलता है। इसमें भी मन्दिरों का वर्णन प्रथम और द्वितीय से भिन्न है। इसमें सबसे पहले जैन कीर्तिस्तम्भ के दर्शन किये। इसके बाद आदिनाथ चोमुखा मालवी मन्दिर के समीप आये। वहां से शृंगार चंवरी सरणा वसही, शांतिनाथ 'डूंगरसी', अदबुद 'आदिनाथ', चन्द्रप्रभ 'मलधार गच्छीय' शीतलनाथ, मुनि सुव्रत 'नाणावाला गच्छ', सुपार्श्व 'संभवतः पार्श्वनाथ चैत्रावल गच्छ' शांतिनाथ' खरतर गच्छ' सुमतिनाथ, 'पूर्णिमा गच्छ', चन्द्रप्रभ '?' सुमतिनाथ बरहड़िया धनराज का' सीमंधर 'पल्लीवाल', सुमति '?' सम्भवनाथ आदि के दर्शन किये।

ऐसा प्रतीत होता है कि इनमें से अधिकांश मन्दिर जैन कीर्तिस्तम्भ गोमुख और शृंगार चंवरी के मध्य भाग में थे। "सतवीस देवरी" नामक मन्दिर के आसपास ज्यादा मन्दिर होने चाहिये।

४. चित्तौड़ की गजल--वि० सं० १७४६ में विरचित[110] की गई है। इसे कवि खेतल ने विरचित किया था। यह रचना बड़ी सुन्दर है। इसे मुनि कान्ति सागर जी ने प्रकाशित कराया है। इसमें चित्तौड़ का पूरा वर्णन १६ छन्दों में हैं। द्वारों का वर्णन करके कुकडेश्वर कुण्ड का और चामुण्डा मन्दिर का वर्णन मिलता है। इसके वाद आहड़ हिंगलू (रत्नसिंह) के महल का उल्लेख करता है। यहां से नीलकण्ठ मन्दिर वहां से गोमुख और सुकोशल मुनि के मन्दिर का वर्णन है। इसके वाद वापस सूरजपोल के पास भीम गोड़ी कुम्भश्याम सांगा जी का मन्दिर, दोनों कीर्ति स्तम्भ गोरावादल पद्मिनी महल आदि का वर्णन है।

(द) अन्य सामग्री

संस्कृत सामग्री---संस्कृत सामग्री में प्रवन्ध ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय है। इनमें चित्रकूटोत्पति प्रवन्ध, सिद्धसेन सूरि, हरिभद्र सूरि प्रबन्ध और कुमारपाल प्रवन्ध आदि मुख्य रूप से वर्णित किये जासकते हैं। चित्रकूटोत्पति प्रवन्ध का वर्णन प्रथम अध्याय में किया जा चुका है। सिद्धसेन सूरि प्रबन्ध के सम्वन्ध में भी ऊपर वर्णित किया जा चुका है। हरिभद्र सूरि के सम्वन्ध में कई वर्णन मिलते हैं। "चतुर्विंशति प्रवन्ध" के अनुसार "श्री चित्रकूटे हरिभद्रो विप्रश्चतुर्दशविद्या स्थानज्ञः" कह कर उनके कार्य का क्षेत्र चित्तौड ही[111] वर्णित किया है। इनके २ शिष्य हंस और परमहंस को बौद्धों ने मार दिया था। कहते हैं कि परमहंस को चित्तौड़ में ही मारा था। इसके पश्चात् उन्होंने अधिकांश ग्रन्थ भी यही विरचित किये थे। समराइच्च और धुर्ताख्यान इनमें प्रमुख हैं। कुमारपाल सम्वन्धी कई प्रवन्ध मिलते हैं। इनमें से मुख्य रूप से एक तो पूर्व जन्म के वृतान्त में मेवाड़ के ऊपरमाल क्षेत्र का जो चित्तौड़ के समीप स्थित है वर्णन आता[112] है। वोसरी के प्रसंग में भी चित्तौड़ का वर्णन आता है। जहां घूमते-घूमते वे लोग गये थे। इसके अतिरिक्त

---

110. हिन्दी पद्य संग्रह में प्रकाशित

111. १४४० प्रायश्चित्तपदेकृताः चित्रकूट टल्लहट्टिकास्थेन तैलवणिजा प्रतयःकारिताः। तत्प्रथमं याकिनीधर्मसूनुरिति हरिभद्रोग्रन्थेष्वतोऽभूत (प्रवन्धकोश पृ० ५२)।

112. पुरातन प्रवन्ध संग्रह पृ० ४४

सज्जन को चित्तौड़ तलहटी देने का भी उल्लेख[113] मिलता है। इन प्रबन्धों के अतिरिक्त कुछ अन्य संस्कृत ग्रन्थों में भी प्रसंगवश चित्तौड़ का सुन्दर वर्णन आता है। मध्यकालीन ग्रन्थों में शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार प्रबन्ध एक विशेष उल्लेखनीय रचना है जिसका भी ऊपर वर्णन किया जा चुका है।

संस्कृत प्रशस्तियों में ऊपर वर्णित प्रशस्तियों के अतिरिक्त महाराणा कुम्भा की कुम्भलगढ़ की प्रशस्ति में चित्तौड़ दुर्ग का सुन्दर वर्णन किया गया है। पहली शिला के श्लोक ४१ से ५७ में चित्तौड़ के समिद्धेश्वर, महालक्ष्मी कुंभस्वामी के मन्दिरों का वर्णन है। इसी प्रकार दूसरी शिला में श्लोक ७० से १०५ तक चित्तौड़ दुर्ग से सम्बन्धित हैं।[114] इसमें मन्दिरों का अच्छा वर्णन किया हुआ है। शत्रुञ्जय के वि सं० १५८७ के लेख में भी प्रसंगवश चित्तौड़ का वर्णन आया[115] है। इनके अतिरिक्त पश्चात् कालीन कई ग्रन्थों में और भी अच्छा वर्णन मिलता है।

हिन्दी और राजस्थानी के कई ग्रन्थों में भी वर्णन मिलता है। पद्मावत में यद्यपि परम्परागत वर्णन ही है फिर भी इसमें "बादशाह चढ़ाई खण्ड" और चित्तौड़गढ़ वर्णन खण्ड" में कुछ महत्वपूर्ण अंश है। यहां चित्तौड़ को हिन्दुओं का तीर्थ स्थल लिखा है। चित्तौड़गढ़ के वर्णन में यहां के ७ द्वारों और पद्मिनी के महल का उल्लेख है। पद्मिनी महल के आसपास तालाब होना इसमें भी वर्णित किया है। हेम रतन की गोरा बादल चौपाई लब्धोदय कृत पद्मिनी चरित आदि में भी प्रसंगवश इस नगर का वर्णन है। राजस्थानी में चित्तौड़ सम्बन्धी कई गीत हैं। यह वीरों का प्रेरणा स्थल रहा है। अतएव इससे सम्बन्धित गीत या तो यहां के वीरों से सम्बन्धित है, या यहां

113. उक्त पृ० ३८। प्रबन्ध चिन्तामणि पृ० १२६।

114. डा० गोपीनाथ शर्मा द्वारा बिहार रिसर्च सोसाइटी वर्ष १६५५ में सम्पादित।

115. ए० इ० भाग २ पृ० ४२–४३ श्लोक २ से ४।

के शाकों पर है। अथवा स्वतन्त्र रूप से चित्तौड़ की प्रशंसा पर ही लिखे गये हैं। जैन कवि ऋषभ दास ने भी चित्तौड़ के तीसरे शाके का सुन्दर चित्रण किया है।

इस प्रकार चित्तौड़ सम्बन्धी अध्ययन के लिए पर्याप्त प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध है।

परिशिष्ट

कुछ अप्रकाशित लेखों के मूल पाठ

गुसाईं जी के चबूतरे के पास की दिगम्बर जैन प्रशस्ति

सूनुस्तस्यतुदीनाको वाच्छी भार्या समन्वितः अथः करोति पूजायै पुरंदरसचीरुचं ।। २१ ।। नाटाख्यः सुनुरस्यासीन्नाटनाद्धर्म कर्मणि अयवान..........कर्मसुसद्धदा ।। २२ ।। विशालकच्छकेतुच्छ च्छाया छलध्वजव्रजैः निजप्रासादसौधाग्रनृत्यतु गकरैरिव ।। २३ ।। तत्रयः कारयामास......................मंदिरमिदिरसुंदरं रम्यकाम्यं सम्यक्त्व वेतसां ।। २४ ।। स्वःसोपानोपदेशं द्रढयतिचजिनः श्री पदोत्कंठितानां सोपानैर्मंडपोपि प्रकटयति ह..........विवाहः उच्चैः प्रासाद चंचत्कनक मयमहाकुंभशुंभदध्वजाग्रैराख्ढा नृत्यतीवप्रभुपदजयिनी मानसी सिद्धि रस्य ।। २५ ।। नागश्री संगतोदेन..........जडाग्नयः कलाकूटान्वयो-न्मायीयोवृषांकः कलौ युगे ।। २६ ।। हाल्लजिजुस्तथान्योहलऽसभिधः श्रीकुमारस्थिराख्यः पण्टः श्री रा...............पि विजयिनश्चक्रवर्ती श्रियस्त तेषां याजिजुनामाजनिजनिहननप्राणपोराणमार्ग प्रज ति श्रीत्रिवर्गप्रभुरभवदसो जैन.......... .... ।। २७ ।। यश्चाद्रप्रन-मुच्चकूटघटन श्रीचित्रकूटे नटत्कोत्रत्पल्लव ताल्वी जनमरुप्रध्वस्त-सूर्याश्रमे श्री चैत्यतलहट्टिकासमघटी श्रीसाद पीध्या...................वि जिनेश्वरस्य सदनं श्री खोहरे सत्पुरे ।। २८ ।। बूढा डोगरके न घा च सुमिरी जाने समारभ्यतःमास्तम्भमहादिमं... ....मिदनिर्वत्यं....... सत्य सय सुमंगलाय जयिने श्रीपूर्णसिंहायवैः गीर्णावोदयिनीश्रियं समगमद्धर्मानुरागोल्वणः ।। ० ।। पूण्यसिंहोपि धर्मधुराधवलवृहणः जितारिः पितृसद्भारदत्तस्कंधोजयत्यसौ ।। ३१ ।। किंचिदारोपित स्कंधोऽभ्यासयोगाद्दिनेदिनेविषमेऽविवलोभूयोः द्भवलः नव लोचन ।। ३२ ।। अन्वयागतसद्धर्मभारवोरेय विक्रमः अकिणां कष्ट स्कन्धः पुण्यसिंहोमहाद्भुतम् ।। ३३ ।। यत्पुण्यं निटले नानि भारती चक्रमण्डले यत्कीर्तिस्त्रिजगत्सौधे धर्म लक्ष्मीर्मन्लांबुजे ।। ३४ ।।

अपूर्वोयं धनीकश्चियद्यच्छन्नपिय इच्छया वद्धर्यत्य निशं स्व स्वं परं सत्पुण्यसंचयः ।। ३५ ।। उररीकृतनिर्वाहनिव सोम्यैत्र संपदः स्थिराश्रयपदं भेजुस्तेजो कृमित्तविग्रहाः ॥ ३६ ।। पुण्य सिहोजयत्येपनिनां जनकुञ्जरः यत्कीर्तिकामिनीनेत्रैकजलं भुवनांवरं ॥ ३७ ॥ किं मेरु; कनकप्रभः किमुहरिर्गीवाणवाणी प्रियः किं सोमः सकलं चकार श्युन्योदयात्पेयं धर्मधुरावराविजयते श्रीपूर्णसिंहः कलौ ।। ३८ ।। किं मेरुः किं मेरु किमुत सुरगुरुः किं हरिः किं मुरारिः किं रुद्रः किं समुद्रः किमुतच विलश्चंद्रिका चंद्रचंद्रः उन्नत्या स्वेष्ट त्या विमलतरधियासद्धि भूत्या विमत्या गोनीत्या रत्नमृत्यास्ऽकलतनुतयापूर्णसिंहः पृथिव्यां ।। ३९ ।। ध्येयस्तस्य विशालकीर्ति मुनपः सारस्वतश्रीलता कंदं द्रु दघनाय मानवघनः स्याद्वादविद्यापतिः वगत्या गर्वचो विलाम विलासद्दं भोलिदीर्यत्यस क्षौणीच्चत्स मयास्तपोनिधिरसा वासीद्धरत्री तलें ।। ४० कृत्तावर्काकार्क्कश्यं कुसित परवादि । द्विप मदंक्वनि; श्रीमप्रेमप्रचुररस निस्यंदि कविता उपन्यासप्राप्ते क्वच विहित वर्गव्य जनिता मनो गम्यं रम्यं श्रुतमिह यदीयं विलसितं ।। ४१ ।। योगानंगत्रिनेत्रस्त्रिभुवनरचनानूतनेऽपित्रिनेत्रोमीमांसावाग्निरोधप्रगटदिनकृत् सांख्यमत्तेभसिंहः उद्यद्बोद्धाहिदर्प्पस्फुरदुजगरुडः प्रौढ्याधीक शैलश्रेणी संपात संपाकलित वरवचोवर्णिनी वल्लभोयः ॥४२॥ तत्पुत्रैः शुभकीर्तिरूर्जित तपोनुष्ठान निष्ठापित श्री संसारविकार कारण गुणस्ते प्यन्मनो देवतः प्रारब्धाय पदप्रयाण करुसत्पंचाक्षरोच्च रण प्रत्यक्षीकृतनिर्भवे हिमरुक्षब्धत्समाप्यधिकः ।। ४३ ।। सिद्धांतोदधिवीचिवद्धनरब्ध द्रोवितं द्रोधुनात्रिख्यातोस्ति समप्रशुद्ध चरितः श्री धर्म्मव ......यतिः यत्कीर्तिः किल घोरवाद्धिनृपति श्रीनार सिंहाद्दिह स्वीकृत्य प्रकटीचकार सततं हम्मीरवीरोप्यसौ ।। ४४ ।। तच्चवरणकमलमधुपोमानस्तंभप्रतिष्ठयामान प्रकटी चकार भुवने धनिकः श्री पूर्णसिंहोत्र ।। ४५ ।।

जैन कीर्तिस्तम्भ सम्बन्धी लेख

..................तिमति परि.........णायितज्या ॥१॥ कैलाशशैल शिखरे परिनिर्वृत्ति ....सारे.... ....लिशिभावमुपथद्यवृपोमहा

..........................पातुरेव..

शीलैः नष्टाष्टकर्म समये तटरिष्टनेमिः संप्राप्तवान् क्षितिधरे वृह..........

....यत्रे ॥३॥ पादा पुरम्यछदिरुन्नत भूमि दे..........

....

मल्लाज्ञानार्क्क भूरि किरणैरदभास्य..............................कान् । स्थानं पुरं निरव धारित सौख्यनिष्टं सम्मेदपर्वततले समवापुरीशाः पश्चा॰
....स्यानिवाकसुतिमयैः कुसुमैः सुदृढ़ न्यादायमान सकरैरमितः किरन्तः..............................ये मया द्वतियुता भग..चाः सं प्रार्थितव धर्मि..
रिपुश्च सुवर्णभद्रः ॥८॥ श्वेणीमतिप्रवरकुण्डलमेवकेनवैभारपर्वत-तले......................सिद्धकूटे................... ....द्रिकेश विपूलाद्रिछलाह केचवि
.........तितानि जगति प्रथितान्यसूवच ॥१०॥ ईक्षोर्विकार रसपृक्त गु
...............लोके पिष्यधिक मधुरतामुपयाति यद्यत् तद्वस्तू पु..............
नाजित भया मुनयश्च शान्त दिश्य..............................समुपगति निर व द्य सौख्यं ॥१२॥ तेन सुचार्वं तज्जिनयरणां मुनिगिनां स्थानाति निवृतैः पांतु ॥संघ जीजन्वित सदा ।

जैन कीर्त्तिस्तम्भ सम्बन्धी लेख

खाति साथ न सुधा सं प्राव मं प्रोदयाः ॥ १ ॥ दुवार प्रतिपक्ष शाक्त विभवन्यरभाव भगोद्गत स्व व्यापार नारतंयदव्—
पदस्वाद्याकार रसानुरक्ति खचितं क्षोभ भ्रमावर्त्ततं चित्त क्षेत्र नियंत्रितं महदणुख्यात्यं कितं विघ्नित त्यागादि—
तत् कौटस्थ्यं प्रतिपद्यनंदथसदामूर्द्धि परा विश्राता ॥ ४ ॥ प्रत्येकार्पित सप्त भंग्युपहितैर्द्ध मरन्तंर्विधि—
नतद्रूपविद्रूपशश्वदने हसानदनवो भांवम्व सा कुर्वत नावान्निर्विमतः पराक्रत तृपोद्वैष्यान शेषा—
मचलस्तच्छप्रभंगेस्फुरन् दूरं स्वरैस संकरव्यतिकरंति तिर्यङ्...क्तेतोर्द्ध तां आकारैर्वियुतं युतं च—
स्व महसि स्वार्थप्रकाशात्मके मज्जन्तोनिरुपाक्ष मोघचिदचिन्मोक्षार्थितीर्थ क्षिपः कृत्वानाद्य—

स्थिति कृते स्वर्गापवर्गात्तयोय: प्राज्ञैरनुमीयते सुकृतिना जीजे न निर्मापित स्तम्भ: सै—

शुभा लोकैर्नकैस्यंते बघेरवालजातीय सा नायसुत: जीजा केन स्तम्भ: कारापित: शुभंभवतु ॥

चणवीर की दीवार में लगे ३ लेख

(१) स्वस्ति श्री सं० १३३४ वर्षे वैशाख सुदि ३ बु (बु) घ दिने श्रीवृ (बृ) हद गच्छे सा० प्रह्लादन पुत्र सा० रत्नसिह कारित श्री शांतिनाथ चैत्ये सा० समधा पुत्र सा० महण भार्या सोहिनी पुत्री कुमा

(२) रल श्राविकया मातामह-सा० ठाडा श्रेयसे देवकुल कारिता।

दूसरे लेख में "मातामह-सा० ठाडा" के स्थान पर "पितामह सा० पूना" शब्द है।

(१) ·······कोशवंश·······अ० मा० अणपमदे सा० सिधा सा० नाधुभ्यां भार्या सिंगारदे नारिंगदे पुत्र परिवार सहिताभ्यां श्री शांतिनाथ प्रासादे श्री देवकुलिका कारिता प्रतिष्ठिता खरतरगच्छे जिनचंद्रसूरि पट्टालंकारै श्री जिनसागरसूरिभि: ॥ श्री रस्तु ॥

गंगराल के सारणेश्वर के शिवालय में २ दिगम्बर जैन लेख

[१] ॐ सिद्धि····विक्रमस····

[२] क (?) ससत (संवत्) १३७५ वर्षे कात्तिक

[३] ····दि चतुर्दशी प्राते मूल संघे····

[४] श्री भीमसेन शिष्य····

[५] मि····भट्टारक श्री कुमार से····

[६] न देवस (स्व) शिष्य सामन्त सेना (न)

[७] यतिन्द्र सम भवतु: खाड़िल्ल

[८] ····सलषण

[१] ॐ सिद्धि सं० १३७६

[२] वर्षे श्री मूल संघे

[३] नंदि संघे भट्टारक श्री

[४] जय (की) त्ति देवानां

[५] चि (शि) ष्य व्यस्य माधवई (?)····

[६] ने न्निषेधिका श्री व····

]७] ई सावनिर्व्वाण सम

[८] ये प्रति (ष्ठि) ता····सर्व्व

[९] प्रणामं············

[१०] ···············

सैणवां ग्राम का दिगम्बर जैन लेख

[१] स्वस्थ (स्वस्ति) पंडिता चेर्य (चार्यः) श्री

[२] नरसेनदेवः सिष्य

[३] स्तस्य व (व) भूव विजयसे

[४] नवदेस्तस्य विनयो

[५] मूल्ललित सेनदेवः

[६] तस्य निषेधिक (के) यं पं०

[७] षेमं धरेण करापिता

[८] श्रेयोर्थं (श्रेयार्थं)। संवत् १३८९

[९] वर्षे ।। श्रीच्चं (चं) द्र प्रभालये

[१०] प्रतिष्ठिता····ष्ठापिता····। शुभंभवतु ।।

गोमुख के पास चरण चिन्हों पर

(१) संवत् ५१४ (१) वर्षे माग्र (र्ग) शुदि ३ श्रीमतृपुरीयगच्छे श्रीचूड़ामणिमर्तपुरमहादुर्गे श्रीगुहिलपुत्रवि—

(२) हार श्रीवड़ादेव—आदि जिनवामाङ्गे दक्षिणाभिमुखद्वार गुफा (म्फा) यामेक विंशति-देवी-नाम् चतुर्णाम्····पा

(३) लानाम् चतुर्णाम् विनायकानां च पादुका-घटित-सहकार सहिता च श्री देवी चित्तोदरि-मूर्ति (:) स्था (पिता ?)

(४) श्रीमतृगच्छीयमहाप्रभावकश्रीआम्रदेवसूरिभिः ।। अस्यां मूर्तौ सा० सोमा सु० स० हर पालेन मातृलोक

(५) श्रेयसेपुण्यो पाजना व्यधीयत ।।

राम पोल का लेख

[१] संवत् १५३८ वर्षे पौष सुदि ७ चं—
[२] न्द्र वासरे सोवर्या विजित स्वर्ग श्री
[३] चित्रकूट महादुर्गे··· षोडशतीर्थनाथ
[४] श्री शांतिनाथं श्रीखरतरगच्छे श्री
[५] पूज्यराज श्रीजिनहर्षसूरिविजय
[६] राज्ये सकल तार्किक चकरवत्ति
[७] कुलंविका कमलि विकलहंसाव
[८] तार श्री जयकोतिमहोपाध्यायानां
[९] विनेयाः श्री हर्षकुंजरोपाध्याय पं०
[१०] रत्नशेखर गणि पं० ज्ञानकुंजर गणि पं०
[११] हरिकुंजर गणि प० सत्यसुन्दरगणि पं०
]१२] संयन श्री गणीनी पं० चरित्रमाला गणिनी
[१३] सार परिवार साहायाः पर या भक्त्या प्रत्यहं
[१४] प्रणमति ।। शुभं भवतु । लिखि सत्यसुन्दर

गोमुख के पास शिलापर

।। श्री० ।। ॐ ह्रीं अर्हं नमः स्वाहा ।
तित्यगरे भगवंते जगजीव वियाणए तिलोय गुरु ।
जो उ करेइ पमाणं उवमाणं सुयधराणं ।। १ ।।
दट्ठुण अन्नतित्थयपराभवं भवमयाउ निव्विन्नो ।
नेगम अडसहस्सेण परिवुडो कत्तिउ सेट्ठी ।। २ ।।
पव्वइउ मुणिसुव्वयस्सेमिसगासगासंमि बारसंगविऊ ।
बार सूसम परियाउ सोहम्मे सुरवई जाउ ।। ३ ।।
मुग्गिलगिरिंमि सुक्कोसलेण वग्घीकउव सग्गेण ।
पत्ता परमं ठाणं कित्तियरेण वि वरं नाणं ।। ४ ।।
सुक्कोसलमुणिसुचरिय पवित्तसिहरम्मि मुग्गिलगिरिंमि ।
संपइ चित्तउडक्खे चिरतरवहु वे इ (?) ए थुणियो ।। १ ।।

तीर्थेशोऽर्हन् कीर्त्तिधरः सुकोशलमुनि स्तथा व्याघ्री ।
सर्वेऽपि संतु सुखदाः श्री खरतरपुण्यनंदिगणे ॥

मूर्तियों के नीचे लेख

॥ श्री ॥ संवत् १५४३ वर्षे शाके १४०८ प्र० मार्गशीर्ष वदि १३ तिथौ गुरुदिने । श्री चित्रकूट महादुर्गे । श्री रायमल्लराजेंद्रविजय राज्ये । सकल श्री संघे । सतीर्थ (?) श्री सुकोशलर्षि प्रतिमा कारिता प्रतिष्ठिता श्री खरतरगच्छे श्री जिन समुद्र सूरिभिः ॥

खरतरगच्छ का लेख

(उपलब्ध मूल पाठानुसार)

·······१.·· ॥८३॥ दीनाना

········३.········ ······················सरूपजेता—य चा ज प ण बृहस्पतिः शुभमतिर्न्यायेन ।

·······२.················तेजसि' (ह) सुधी ॥८६॥ धर्मसिंह सुताः (स) र्वे निष्कलंकाः कलौकिल । जयंतिजयस युक्ता । विरक्ता

·······४. लयत (ा) बलात । स्फीता कीर्—रगिणी जयति सा यस्या बुधेःपारगा । श्री मह (ध) र्मसुनसदा विजयते श्री जैत्रसिंहः कृती ॥८८॥ दक्षस्तो

·······५.········दान जलैर्वनीपक कर व्रातक्षिता वक्षतोप्यश्रांतं कृत वर्षणोविजयते यत्कीर्ति धराधरः ॥८९॥ सुवर्ण सहिता नित्यं प्रसन्ना चित्तरंजिका ॥ कृ

·······६.········सुरत्राणो नृणांमान्यो वर्त्ततेऽनिमंडले ॥९१॥ शत्रुसार्थ मदोन्मत्त तुंगमातंग केसरीनद्याछ्रो पेतसिंहोय चिरं भूलोक वल्लभः ॥९२ संको

······७.········प्रतापतिग्य द्युतिरेप नव्यः ॥९३॥करांबुजे यस्य करोतिवा संचलापि लक्ष्मीः स्थिरता (म) वाण्यानि मंत्रिते वास्य गुणैर-शेषैः सनेत्रसिंहोज ।

······८ ········प द्रुमांमतो बहु याचकेतुश्री नेत्रसिंहो भुविन नदीनु॥९५॥

ॐ श्री दुर्गालाल माथुर द्वारा प्राप्त

कीर्ति : कल्पलता यस्य विश्वमंडपाश्रिता ।। सच्छाया राजते नद्यात्सुरत्राण:सधर्म

.........९.........तपत्यध:९७।। मंत्रिणो मोकलेंद्रस्य त्रयपुत्रा जयंत्यमी ।। आद्य छाजूस्तथा बाजू रत्ना....रत्न सन्निभः ।।९८ तोलराज सुतोदक्षो मोहाह्योमान म

१०.........यानुदार सत्कर्ममिरुच्छ्रित श्रीः । श्री चाचराजो नगराज पुत्रो विराजते दीप्ति जितार्क पुत्रः ।। १०० ।। एवं समग्र परिवार चुतेन चैत्यं निमार्पित सकलश्रां

.........११.........नैकधाम्ना ।।१०१।। किंमेरुः किं हिमाद्रिः किमद्यपशु पतेरद्रिरेवाय विध्यो लोकामंदैक धाम प्रचुर सुर मृतं किं विमानं सुराणां विदूद्भिर्य–निरीक्ष्यक्ष

... .१२.........ति तीर्थाधिपस्य ।।१०२ यस्मिन चंद्रं ध्वननति विश-देसार रुपे मृंदगे गंधर्वेदेः स्वरजितपिकै गीय माने च गीते ।। उद्यत्तालानुग रणझषेन्नुपरा राव

.........१३. येन यस्य स्वर्गेकि सामाह्यतीति वृंदं । अत्रैत्य पश्य ध्वमहो सुरेंद्रा जिनेंद्रमीशंभुवनत्रयस्य ।। १०४ दृष्ट्वा श्रंगाग्र भाग सरल तरसटाटोपयुक्तांस

.........१४. रग्र जस्य त्वरितमपि महद्व्योम पारं पिया सोश्वित्तं खेदं नयतिक्षणमिव सतया यत्र मध्याह्न काले ।। १०५ भेरी भ्यंकार तारध्वनिकलपणवप्रध्वनद्दुंदभि

.........१५. लीभिः सुललित ललनां लास्य गीत प्रसंगैस्त्रै संध्य धूप दीपैर्जयति जिनपतेः शांतिनाथस्य चैत्यं ।। १०६ भ्रातस्वं किमिति प्रयासि चपलं विश्राम्यतावत्र भो

.........१६ हं जन्तनिजकं दंडोवदत्यु च्चकैरित्थं चेदरुणं प्रति प्रतिदिनं यस्यार्क चेतोहर ।।१०७।। श्री मत्खरतर गच्छः सिंधुर्जय-तीह भूतले भव्यः । नानाशास्त्र

.........१७. विमले साध्वावली भ्राजिते सूरि श्री जिन वर्द्धन : सभव-ज्ञानैक वैज्ञ निकः श्री श्वेतांबर मौ (लि) मंडन मणिर्योगींद्र चूड़ामणिः ससारांबुधि तारणं––

........१८. पंचेष्व युग्मे क्षण स्तुत पट्टे जिनचंद्र सूरि सुगुरु वचि यमाधी श्वरः । यत्पादद्वय सेवनादपि भुवि विख्यात कीर्तिध्रुवं सद्य : कोपि न कोविदो भजति

........१९. म् युगांवुजनिर्यतीशः । सौभाग्यभाग्यलहरीजलराशि रासीत्सूरिर्वर : नो स जिन सागर नाम (धे) यः ।। ११ स्पर्द्धां धत्ते जडौसौ प्रतिदिनमखिलैरात्म दी

........२०. भजेद्भेयोरुष्ट चेता विपुल जलनिराशुगांभीर्य लक्ष्मीं युक्तं पुत्रापराधे भवतिहिजन-स्थायि दडोत्र लोके ।। ११२ दुर्वादिमातंग कुलोत्तमांगवि

........२१. सुंदराह्वः ।। ११३ येषां तपश्ची चूकराभियोग-थामितप्तो मदनो वराकः। यथा सुराणां तटिनी जलांतर्लेमेनिर्वृत्ति न च नंदनेपि ।। ११४ तत्र

........२२. (र) सिको विभ्राजते सांप्रतं । यद्याख्यान रसनेपीय मधुरं-त्याकंठ मुत्कंठितैः पीयूष विशद जलाय विब्रुधोस्तैर्मन्यते नेकशः ।। ११५ खरतर

........२३. जलादोगमः । विविध विवुधीश श्रेणी किरीट विकटांशुभिः छुरितचरणसूरीशो सौ चिरचजिन हर्षराट ।। ११६ ।। द्राक्षा विलक्षाक्षपति

........२४. श्वरः श्री जिनचंद्रसूरि ।।११७।। अथ ।। महोव्याप्त महीलोकः भुमृछीर्ष मिलत्क्रमः विवेक रत्न सूरींद्र प्राग्वभौ भानुमानिव ।। ११८ स्फुटत् कुंद ।।

........२५. वपुषा । निजं कृत्वा सार्थे खुत सुत वधू निकरं नक्ष श्रेणी व्याजाद भजदनद्यं यस्य चरणं ।।११९।। प्राप्याचार्य पदं पूर्वं चक्रे भट्टारक द्वयी ।। श्री मद्विवे

........२६. (सू) रीणां शिष्याशास्त्रविशारदाः ।। श्रीमछ्रीसाधु हर्षाद्याजयं विजित मन्मथाः ।। १२१।। जयंतु भुवने सदा विमल शील चित्ताग्नि सन्निवास कमलोपमा विद्युत

........२७. यदाः सुगुरु साधु हर्षाह्वयाः । १२२।। उद्यत्पंडित मंडली

परिलस्यत कोटीर-हीरांशुभिः सॅस्पृष्टमल कोमलांहि युगला मोहद्रुमोछेदाकाः । दुर्व्वा

२८. (हृ) याः ॥ १२३ ॥ शिष्यः श्रीसाधुहर्षाणां विमलो विमलाशयः मंत्रिणो राजसिंहस्य प्रशस्ति कृत्वामिमां ॥ १२४ कवित्व मुक्ता फलहार वल्ली

........२९. साधोः ॥ १२५ यावन्मेरु महीधरः प्रतिदिनं विभ्राजते निश्चलो यादभुमलयं विभर्ति महसा श्रो पन्नगानां प्रभुः । यावच्छ्री जिन शासना विजयते या

........३०. शीले न राजछीलेन साधुना ॥ प्रशस्तिः शस्तवर्णाद्यां लिखेतेयं मनोरमा ॥ १२७ ॥ षटपंचतिथि वर्षेस्मिन्नावाद यासि सादरं । एकदश्यां

........३१. (भी) मसो कारितो महावीरप्रासादः ॥ योगिनीपु (रे) (पुण्य) पालाकारितः श्री अम्बिका प्रसादः मञ्जेरा मंदारा ग्रामे मं० चूंडा कारितो श्री शांति

.... ३२. नां प्रासादाः एतेषु प्रति वर्ष ध्वजारोप पुण्यं भव........॥ ॥संवत १५५६ वर्षे महाराजाधिराज समस्तरिपुगजघटा सिंह राणा श्री रायमल्ल विज

........३३. श्री विवेक रत्नसूरीणां शिष्याः श्री जय (कि) र्ति उपा (ध्याय) श्री रत्नलाभोपाध्याय श्री साधुहर्षोपाध्याय पं० देव समुद्र गणि पं० कुशल कुंजर ग

........३४. नि पं० राज शील मुनि पं० ज्ञान विधान मुनि पं० कनक निधान मनि प्रमुखाः श्रेयाः । श्री साधुहर्षोपाध्यानामुपदेशेन मं० श्री भोजा पुत्र मं

........३६. केस्मिन् श्री संघः सुरपादपः तीर्थेशोपिमति यस्य कुरुते पूर्व संसदि ॥ १ सू० ईसर पुत्र सू० छीतरेणोयं कोरिता ॥ मंगलं महा श्रीः ॥ ॥

श्री राम वल्लभ सोमानी कृत वीर भूमि चित्तौड़ देखकर मुझे हर्ष हुआ। यह श्रमपूर्ण शोध का फल है। प्रत्येक पक्ष पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। इससे राजस्थान के इतिहास के एक अंग की पूर्ति होगी। अतः यह ग्रन्थ उपादेय तथा अभिनन्दनीय है। लेखक का परिश्रम और पाण्डित्य श्लाघ्य है।

— डॉ० मथुरालाल शर्मा

९–१–६६